

भक्ति-सूत्र

नारद-वाणी; वहसा भाग; भक्ति-सूत्र के पहले ४२ सूत्रों पर भगवान् श्री रजनीश
के दस प्रवचन, प्रश्नोत्तर सहित; दिनांक ११ जनवरी से २० जनवरी, १९७६,
श्री रजनीश आश्रम, पूना

भगवान श्री रजनीश का नया हिन्दी साहित्य

एक थोकार सतनाम

जपुजी (नानक-वाणी) की पउडियो पर बीस बातोंएँ, प्रश्नोत्तर सहित
बिन धन परत कुहार

सत सहजीबाई के पदों पर दस प्रवचन, प्रश्नोत्तर सहित
अकथ कहानी प्रेम की

सत शेख फरीद के पदों पर दस प्रवचन, प्रश्नोत्तर सहित
दीया तले अंधेरा

झेन और सूफी बोध-कथाओं पर आधारित बीस व्याख्यान
कस्तूरी कुडल बसे

सत कबीर दास के पदों पर आधारित दस व्याख्यान
ताओ उपनिषद, भाग - ३

लाओत्से की ताओ तेह किंग के सूत्रों पर इक्कीस उद्बोधन
तस्वरसि

कान्तिबीज, पथ के प्रदीप, अन्तर्बोणा, धूंघट के पट खोल
पुस्तकों के सकलित पत्रों का वृहत् सकलन

मति-सुर

महावान श्री रजीनीश





राजनीति-सपादन
स्वामी चैतन्य द्वारा
आवरण-सज्जा
स्वामी आनन्द अहंत



राजनीश फाउंडेशन प्रकाशन, पूना

प्रकाशक
मा योग लक्ष्मी
सचिव - रजनीश फाउंडेशन,
१७ - कोरेगांव पार्क,
पूना - ४११००१ (महाराष्ट्र)

© कॉपीराइट
रजनीश फाउंडेशन, पूना

प्रथम सस्करण २१ मार्च, १९७६
प्रतियाँ ३०००
मूल्य ३० ०० रुपये

मुद्रक
मयद इस्हाक
मगम प्रेम निमिट्ट
१७ ब कोयस्ट
पूना ४११०२६

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रम	पृष्ठ
१ परम प्रेमरूपा है भक्ति	३
२ स्वय को मिटाने की कला है भक्ति	३३
३ बड़ी सवेदनशील है भक्ति	६५
४ सहजस्फूर्त अनुशासन है भक्ति	६९
५ कलाओ की कला है भक्ति	११६
६ प्रसादस्वरूपा है भक्ति	१४६
७ योग और भोग का सगीत है भक्ति	१७७
८ अनत के अँगन में नृत्य है भक्ति	२०१
९ हृदय का आन्दोलन है भक्ति	२२७
१० परम युक्ति है भक्ति	२५३

पहला प्रवचन

दिनांक ११ जनवरा १९७६, आ॒ रजनीश आश्रम, पूर्वा

अथातो भक्ति व्याख्यास्याम ॥ १ ॥
सा त्वस्मिन् परमप्रेमस्त्वा ॥ २ ॥
अमृतरपत्पा य ॥ ३ ॥
यद्वल्लभ्या पुमान् मिछ्दो भवति
अमृतो भवति तृप्तो भवति ॥ ४ ॥
यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाज्ञति न शोषति
न द्रेष्टि न रमते नोत्साही भवति ॥ ५ ॥
यज्ञात्वा यतो भवति स्तव्यो भवति
आत्मराष्ट्रो भवति ॥ ६ ॥

परम प्रेमरूपा है भक्ति

जी

वन है ऊर्जा - ऊर्जा का सागर ।

समय के किनारे पर अथक, अतहीन ऊर्जा को लहरे टकराती रहती हैं न कोई प्रारम्भ है, न कोई अत, बस मध्य है, बीच है । मनुष्य भी उसमें एक छोटी तरग है, एक छोटा बीज है - अनत सम्भावनाओं का ।

तरग की आकांक्षा स्वाभाविक है कि सागर हो जाए और बीज की आकांक्षा स्वाभाविक है कि वृक्ष हो जाए । बीज जब तक फूलों में खिले न, तब तक तृप्ति सम्भव नहीं है ।

मनुष्य का मना है परमात्मा होने की । उससे पहले पड़ाव बहुत है, मजिल नहीं है । रात्रि-विश्राम हो सकता है । राह में बहुत जगह मिल जाएँगी, लेकिन कहीं घर मत बना लेना । घर तो परमात्मा ही हो सकता है ।

परमात्मा का अर्थ है तुम जो हो सकते हो, उसकी पूर्णता ।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, कहीं आकाश में बैठा कोई रूप नहीं है, कोई नाम नहीं है । परमात्मा है तुम्हारी आत्मनिक सभावना - आखिरी सभावना, जिसके पार फिर और कोई होना नहीं है, जिसके आगे फिर कोई जाना नहीं है, जहाँ पहुँच कर तृप्ति हो जाती है, परितोष हो जाता है ।

प्रत्येक मनुष्य तब तक पीड़ित रहेगा । तब तक तुम चाहे कितना ही कमालो, कितना ही बैधव जुटा लो, कहीं कोई पीड़ा का कीड़ा तुम्हे भीतर काटता ही रहेगा, काई बैचीनी सालती ही रहेगी, कोई कॉटा चुभता ही रहेगा । लाख करो भूलाने के उपाय - बहुत तरह की शराबें हैं विस्मरण के लिए - लेकिन भूला न पाओगे । और अच्छा है कि भूला न पाओगे, क्योंकि काश, तुम भूलाने से सफल हो जाओ तो फिर बीज बीज ही रह जाएगा, फूल न बनेगा - और जब तक फूल न बने और जब तक मुक्त आकाश को गध फूल की न मिल जाए, तब तक परितृप्ति कैसी । जब तक तुम अपने परम शिखर को छू कर बिखर न जाओ, जब तक तुम्हारा विस्कोट न हो जाए अनत में, जब तक तुम्हारी मगा उसी सागर में बापस न लौट जाए जहाँ से आयी है, तब तक अगर तुम भूल गये तो आत्मप्राप्त

होगा, तब तक अगर तुमने अपने को भुलाने में सफलता पा ली तो उससे बड़ी और कोई विफलता नहीं हो सकती ।

अभागे हैं वे जिन्होंने समझ लिया कि सफल हो गये । धन्यभागी हैं वे, जो जानते हैं कि कुछ भी करो, असफलता हाथ लगती है । क्योंकि ये ही वे लोग हैं जो किसी-न-किसी दिन, कभी-न-कभी परमात्मा तक पहुँच जाएँगे ।

जहाँ सफलता मिली वही घर बन जाता है । जहाँ असफलता मिली वही से पैर आगे चलने को तत्पर हो जाते हैं ।

परमात्मा तक पहुँचे बिना कोई तृप्ति सभव नहीं है ।

कहा मैंने, जीवन ऊर्जा है ।

ऊर्जा के तीन रूप हैं । एक तो बीजरूप है कुछ भी प्रगट नहीं है । फिर वृक्षरूप है सब कुछ प्रगट हा गया है, लेकिन प्राण अप्रगट हैं । फिर फूलरूप हैं फिर प्राण भी प्रगट हुआ, फिर वह अनूठी अपूर्व गध भी आ गयी, पेंखुडियाँ खिल गयी और खुले आकाश के साथ मिलन हो गया, अनत के साथ एकता हो गयी ।

साधारणत बीज का अर्थ है कामना । वृक्ष का अर्थ है प्रेम । फूल का अर्थ है भक्ति ।

जब तक तुम बीज मे हो, तब तक कामवासना मे रहोगे । जब तुम वृक्ष बनोगे तब तुम्हारे जीवन में प्रेम का अवतरण होगा । और जब तुम फूल बनोगे, तब भक्ति ।

भक्ति परम शिखर है । वह आखिरी बात है ।

इसे हम थोड़ा ममज ले, तभी इन अनूठे सूत्रों मे प्रवेश हो सकेगा ।

तुम शरीर हो, तुम मन भी हो, तुम उसके पार भी कुछ हो, जिसका तुम्हे पता नहीं ।

शरीर तो बहुत स्थूल है । उसका पता चल जाता है । उसके लिए किसी बुद्धिमत्ता की ज़रूरत नहीं है । शरीर तो बजन रखता है । उसका बोध हो जाता है । उसके लिए किसी ध्यान की ज़रूरत नहीं है ।

मन की भी थोड़ी ज़लक तुम्हें मिल जाती है, क्योंकि मन स्थूल और सूक्ष्म के मध्य मे है — शरीर से भी जुड़ा है, आत्मा से भी । शरीर की तरफ से थोड़ी-सी खबरें मन की मिल जाती हैं, क्योंकि एक धागा शरीर के तट से जुड़ा है । लेकिन आत्मा की तुम्हे कोई खबर नहीं मिलती । आत्मा कोरा शब्द मालूम होता है । आत्मा शब्द मुनते से ही तुम्हारे भीनर कोई धूंधर नहीं बजते । आत्मा शब्द मुनते से ही बेचैनी-सी होती है । शब्द बेबूझ है । भाषाकोश का अर्थ तो पता है, जीवन के कोश का कुछ अर्थ पता नहीं ।

शरीर के साथ जुड़ी है कामवासना । कामवासना स्थूल है । शरीर शरीर

को माँगता है कामवासना का अर्थ । शरीर अपने से विपरीत शरीर को माँगता है, क्योंकि एक किनारा अधूरा है, दूसरे की चाह पैदा होती है । पुरुष स्त्री को माँगता है, स्त्री पुरुष को माँगती है, ताकि जीवन की सरिता बीच मे बह सके, दो किनारे जुड़ जाएँ । पुरुष अकेला है, स्त्री अकेली है ।

शरीर के तल पर शरीर की माँग है, शरीर से मिलन की आर्कांक्षा है । क्षण-भर को मिलन हो भी जाता है । क्षण-भर को शरीर शरीर मे डूब जाते हैं और खो भी जाते हैं – लेकिन बम क्षण-भर को । उससे पीड़ा मिटती नहीं, गहन हो जाती है । उस मिलन के बाद बड़ा गहरा विषाद हो जाता है, क्योंकि मिलन के बाद गहरा विषोह होता है । मिलता कुछ भी नहीं, ऐसा लगता है, उलटा खो गया ।

शरीर का मिलन क्षण-भर को ही हो सकता है । स्थूल एक-दूसरे मे विलीन नहीं हो सकते । स्थूल की सीमा है । स्थूल अपनी सीमा को छोड़ नहीं सकता, अन्यथा स्थूल न रह जाएगा ।

बर्फ के दो टुकडों को तुम मिलाने की कोशिश करो – मुश्किल होगी । लेकिन वे ही पिघल जाएँ, जल हो के, बिलकुल मिल जाने हैं । फिर कोई अडचन नहीं होती । सीमा खो गयी मिलन सुलभ हो गया ।

शरीर बर्फ की तरह है – जमा हुआ, ठोस । ऊर्जा वही है, पिघल जाए ता मन बनता है । मन जल की तरह है । सीमा तो है, लेकिन तरल सीमा है, ठोस नहीं । तुम मन को कैसा भी ढालो, ढल जाता है । शरीर को कैसा भी ढाला तो न ढलेगा । मन को कैसा भी ढाला, ढल जाएगा ।

हिन्दू के घर मे बच्चा पैदा हो, मुसलमान के घर मे रख दो, मुसलमान हो जाएगा । शरीर नहीं होगा, मन हो जाएगा । शरीर तो बाप की ही झलक देगा, माँ की झलक देगा । शरीर की खबर तो वही जुड़ी रहेगी जहाँ से शरीर आया है, लेकिन मन मुसलमान का हो जाएगा । बच्चे को याद भी न रहेगी कि वह कभी हिन्दू था । हिन्दू होने के पहले ही, मन इसके पहले कि ढलता, मुसलमान हो गया । मुसलमान बाद मे चाहे तो हिन्दू हो जाए, ईसाई हो जाए, आस्तिक नास्तिक हो जाए, नास्तिक आस्तिक हो जाए – मन मे कुछ अडचन नहीं है ।

मन तरल है । मन प्रतिपल बदलता रहता है । उसकी तरलता अनूठी है ।

कामवासना है शरीर जैसी और शरीर की ।

प्रेम है मन जैसा और मन का ।

प्रेम की माँग शरीर की माँग से ऊपर है । प्रेम कहता है दूसरे का मन मिल जाए । प्रेम करने वाला वेश्या के द्वार पर न जाएगा । यह बात ही बेहूदी मालूम पड़ेगी । यह बात ही सम्भव नहीं है । यह सोच भी बेहूदा मालूम पड़ेगा ।

लेकिन कामवासना से भरा व्यक्ति वेश्या के घर चला जाएगा शरीर की ही माँग है।

शरीर खरीदा जा सकता है, मन खरीदा नहीं जा सकता।

शरीर जड़ है। मन थोड़ा-थोड़ा चेतन है। इसलिए इतना नीचा नहीं उत्तरा जा सकता कि खरीद और बेच की जा सके।

मन प्रेम माँगता है कोई, जो अपना सर्वस्व देने को तैयार हो, बिना किसी शर्तें के। मन अपने को किसी को दे देना चाहता है, लुटा देना चाहता है। मन की माँग प्रेम की है।

जब दो मन मिलते हैं तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम प्रेम है। जब दो शरीर मिलते हैं तो जो रस पैदा होता है, उसका नाम काम है।

फिर मन के भी बाहर तुम्हारा अस्तित्व है — आत्मा का। आत्मा ऐसे है जैसे पानी भाप बन के आकाश मे उड़ गया। पानी ही है, लेकिन अब तरल सीमा भी न रही। अब कोई सीमा न रही, आकाश मे फैलना हो गया। अदृश्य हो जाती है भाप, थोड़ी दूर तक दिखायी पड़नी है, फिर खो जाती है।

आत्मा अदृश्य है — भाप जैसी।

आत्मा की तलाश किसकी है?

शरीर माँगता है शरीर को। मन माँगता है मन को। आत्मा माँगती है आत्मा को।

शरीर और शरीर के मिलन से जो रस पैदा होता है — क्षणभगुर — उसका नाम काम। मन और मन के मिलन से जो रस पैदा होता है — थोड़ा ज्यादा स्थायी, जीवन-भर चल सकता है। आकॉक्षा तो मन की होती है कि जीवन के पार भी चलेगा। प्रेमी कहते हैं, 'मोत हमार प्रेम को न तोड़ पाएगी।' अगर प्रेम जाना है, तो प्रेमी कहता है, 'कुछ हमें छुड़ा न पाएगा। शरीर मिट जाएगा तो भी हमारा प्रेम नष्ट न होगा।'

यह कामना ही है, लेकिन मन थोड़ा ज्यादा दूरगामी है। शरीर से उसकी सीमा थोड़ी बड़ी है।

फिर आत्मा है, शाश्वत की माँग है उसकी। उससे कम पर उसकी तृप्ति नहीं। क्षणभगुर को भी क्या चाहना। अँधेरी रात मे क्षण-भर को विजली चमकती है, फिर अँधेरा और अँधेरा हो जाता है। दुख ही बेहतर है। दुख की दुनिया में क्षण-भर को सुख का फूल खिलता है, दुख और दूभर हो जाता है, किर झेलना और मुश्किल हो जाता है।

आत्मा मन के प्रेम को भी नहीं माँगती, क्योंकि मन तरल है आज किसी से प्रेम किया, कल किसी और के प्रेम में पड़ सकता है। मन का कोई बहुत भरोसा नहीं है। जब प्रेम में होता है तो ऐसा ही कहता है, 'अब तेरे सिवाय किसी को

कभी प्रेम न कर सकूँगा । अब तेरे सिवाय मेरे लिए कोई और नहीं है । ' मगर ये मन की ही बातें हैं । मन का भरोसा कितना । आज कहता है, कल बदल जाए । अभी कहता है, अभी बदल जाए ।

मन पानी की तरह तरल है ।

आत्मा की माँग है शाश्वत की, चिरतन की, सनातन की । आत्मा की माँग है आत्मा की ।

आत्मा और आत्मा के मिलन पर जो रस पैदा होता है, उसका नाम भक्ति है ।

शरीर की सीमा है ठोस । मन की सीमा है तरल । आत्मा की कोई सीमा नहीं ।

काम क्षणभगुर है । प्रेम थोड़ा दूर तक जाता है, थोड़ा स्थायी हो सकता है । भक्ति शाश्वत है ।

काम में शरीर और शरीर का मिलन होता है – स्थूल का स्थूल से, मन में – सूक्ष्म का सूक्ष्म में, आत्मा में – निराकार का निराकार से । भक्ति निराकार के निराकार से मिलने का शास्त्र है ।

ऐसा समझो कि तुम अपने घर में बैठे हो द्वार-खिड़कियाँ बद करके, रोशनी नहीं आती सूरज की भीतर, हवा के झोके नहीं आने, फूलों की गध नहीं आती, पक्षियों के कलरव की आवाज नहीं आती – तुम अपने में बद बैठे हो ऐसा शरीर है, द्वार-दरवाजे सब बद ।

फिर तुमने द्वार-दरवाजे खोले, खिड़कियाँ खोली, हवा के नये झोकों ने प्रवेश किया, सूरज की किरणे आयी, पक्षियों के गीत गूँजने लगे, आकाश की झलक मिली ऐसा मन है । थोड़ा खुलता है । नेकिन बैठे तुम घर में ही हो ।

फिर भक्ति है कि तुम घर के बाहर निकल आये, खुले आकाश में खड़े हो गये अब सूरज आता नहीं, बरस रहा है, अब हवा कहीं से आती नहीं, तुम्हारे चारों तरफ आदोलित होती है, अब तुम पक्षियों के कलरव में एक हो गये ।

भक्ति-सूत्र पूरा शास्त्र है भक्ति का । एक-एक सूत्र को अति ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करना, और अति प्रेमपूर्वक भी, क्योंकि यह प्रेम का ही शास्त्र है । इसे तुम तर्क से न समझ पाओगे । स्वाद ही समझा पाएगा ।

' अथातो भक्ति व्याख्यास्याम । '

अब भक्ति की व्याख्या ।

क्यों 'अब' ? 'अथातो' ।

हो चुकी बात काम की बहुत । हो चुकी चर्चा प्रेम की बहुत । अथातो भक्ति । अब भक्ति की बात हो । जी लिये बहुत । देख लिये शरीर के भी खेल ।

देख लिये मन के भी जाल । गुजर चुके उन सब पड़ावों से । अब अवित की थोड़ी बात हो ।

‘अब । — अचानक शुरू होता है शास्त्र ।

सिर्फ़ भारत मे ऐसे शास्त्र हैं जो ‘अथातो’ से शुरू होते हैं, दुनिया की किसी भाषा मे ऐसे शास्त्र नहीं हैं । क्योंकि यह तो बड़ा अधूरा मालूम पड़ता है ।

कही ‘अब’ से कोई शास्त्र शुरू होता है । यह तो ऐसा लगता है जैसे इसके पहले कोई बात चल रही थी, कोई कथा आगे चल रही थी जो छूट गयी है, कोई बीच का अध्याय है, प्रारम्भ का नहीं ।

पश्चिम के व्याख्याकार जब पहली दफा ब्रह्मसूत्र से परिचित हुए — वह भी ऐसे ही शुरू होता है ‘अथातो ब्रह्म जिज्ञासा,’ अब ब्रह्म की जिज्ञासा — तो उन्होंने कहा कि इसके पहले कोई किताब थी जो खो गयी है । निश्चित ही, क्योंकि यह तो सभ्य से शुरुआत हा रही है ।

नहीं, कोई किताब खो नहीं गयी है, यह शुरुआत ही है । यह जीवन की किताब का आखिरी अध्याय है । शास्त्र शुरू ही हो रहा है, मगर जीवन की किताब का आखिरी अध्याय है । यह उनके लिए नहीं है जो अभी शरीर की वासना मे पढ़े हो । वे इसे न समझ पाएँगे । अभी दर है । अभी फल पकेगा । अभी उनके गिरने का समय नहीं आया । यह उनके लिए नहीं है जो अभी प्रेम की कविता मे डूबे हैं और उसको ही जिन्होंने आखिरी समझा है । उन दो का छोड़ने के लिए ‘अथातो’ ।

तो, शुरू मे ही शास्त्र कह देता है कि कौन है अधिकारी । यह अधिकारी की व्याख्या है ‘अथातो’ । यह कहता है कि अगर चुक गये हो कामवासना से, भर गया हो मन — तो, अन्यथा अभी थोड़ी देर और भटको, क्योंकि भटके बिना कोई अनुभव नहीं है । अगर अभी प्रेम मे रस आता हो तो क्षमा करो, अभी इस मंदिर मे प्रवेश न हो सकेगा । अभी तुम किसी और ही प्रतिमा के पुजारी हो, अभी परमात्मा की प्यास नहीं जरी । अभी तुम या तो बोज हो या वृक्ष हो अभी फूल होने का समय नहीं आया । और जब तक समय न आ जाए, तब तक कुछ भी तो नहीं होता । इसलिए व्यर्थ मेहनत नहीं करनी है ।

यह, जीवन की पाठशाला मे जिनका आखिरी अध्याय करीब आ गया, उनके लिए है । इसका यह मतलब नहीं है कि यह बूढ़ों के लिए है । जैसे पश्चिम के लागा ने गलत समझा — उन्होंने समझा कि यह आधी किताब है, आधी शायद खा गयी — वैसे पूरब के लोगों ने भी गलत समझा । उन्होंने समझा कि यह तो बूढ़ों के लिए है ।

| नहीं, प्रोढ़ों के लिए है, बूढ़ों के लिए नहीं है । प्रोढ़ कोई कभी भी हो सकता

है। एक छोटा बच्चा प्रौढ़ हो सकता है। प्रगाढ़ बद्धमत्ता चाहिए। और नहीं तो बूढ़े भी बचकाने रह जाते हैं। कोई बूढ़े होने से थोड़े ही पक जाता है। धूप में पक जाने से बाल कोई बृद्ध नहीं हो जाता। बृद्धे के मन में भी वही कामनाएँ चलती रहती हैं, वही वासनाएँ चलती रहती हैं। तो उसके लिए भी नहीं है यह शास्त्र।

फिर कभी-कभी कोई जवान भी भर-जवानी में जाग जाता है, अभी जबकि सोने के दिन थे तब जाग जाता है। कभी कोई छोटा बच्चा भी अचानक बीज में छलांग लेता है और फूल हो जाता है। कोई शकराचार्य छोटी उम्र में, बड़ी छोटी उम्र में। उम्र का कोई सवाल नहीं है, बोध का सवाल है।

‘अथातो’ अब भक्ति की व्याख्या करते हैं। व्याख्या करते हैं, परिभाषा नहीं। परिभाषा हा नहीं सकती। कुछ चीजें हैं जिनका वर्णन हो सकता है, व्याख्या हो सकती है, परिभाषा नहीं हो सकती। जैसे कि तुमने कोई स्वाद पाया और तुम किसी दूसरे को समझाने लगे जिसके जीवन में अभी वैसा स्वाद आया नहीं, लेकिन स्वाद को समझने की उत्सुकता आयी है, रस जगा है, जिज्ञासा बनी है – तुम क्या करोगे? तुम वर्णन करोगे, तुम्हें जो स्वाद मिला है उसका तुम वर्णन करागे, कैमा मिला! तुम कुछ प्रतीक चुनोगे, जिससे, जिससे तुम बात कर रहे हो, उसकी भाषा में कुछ सकत दिये जा सके, उसके अनुभव में तुम अपना अनुभव जोड़ने को कोशिश करोगे।

व्याख्या का अर्थ होता है तुम्हें जिन्हे अनुभव नहीं है, उनसे अपने अनुभव को जाड़ने की चेष्टा, जो तैयार तो है मंदिर में प्रवेश के, लेकिन अभी मंदिर में प्रवेश नहीं हुआ है, उन्हें मंदिर की खबर देनी है, मंदिर के भीतर क्या घट रहा है, मंदिर के भीतर कैसा अनुभव हुआ है, थोड़ा-सा स्वाद उनके लिए लाना है।

क्या करेंगे? परिभाषा करेंगे? व्याख्या करेंगे। परिभाषा नहीं हो सकती। परिभाषा तो उनके बीच हो सकती है जो दोनों ही जानने वाले हों। परिभाषा सक्षिप्त होती है। परिभाषा तो एक-दो वचना में, वाक्यों में पूरी हा जाती है। लेकिन व्याख्या थोड़ी लम्बी होती है। और व्याख्या से सिर्फ हम दृश्य देते हैं, जलक देते हैं। वह बिलकुल ठीक नहीं हाती व्याख्या, क्योंकि ठीक हो नहीं सकती, थोड़ी-थोड़ी ठीक होती है, थोड़ी-थोड़ी गलत होती है। क्योंकि ज्ञानी जब अज्ञानी से बात करता है तो अज्ञानी की भाषा में करता है। परिभाषा तो बिलकुल ठीक होती है, व्याख्या बिलकुल ठीक नहीं होती – हो नहीं सकती।

जब बुद्ध बोलेंगे उनसे जिनके जीवन में बुद्धत्व नहीं है, तो अगर बुद्ध अपनी ही भाषा का उपयोग करे तो परिभाषा होगी, अगर बुद्ध उनकी भाषा का उपयोग करे जिनसे बोल रहे हैं तो व्याख्या होगी। इसलिए सूत्र पहले ही कह देता है ‘अथातो भक्ति व्याख्या’। अब हम भक्ति की व्याख्या करते हैं।

‘वह ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।’

भक्ति की पहली व्याख्या का सूत्र वह ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है।

मैंने तुम्हें कहा, ऊर्जा का एक रूप है काम, ऊर्जा का दूसरा रूप है प्रेम, ऊर्जा का तीसरा रूप है भक्ति। भक्ति और काम के बीच में प्रेम है। प्रेम का एक हाथ काम से जुड़ा है, प्रेम का दूसरा हाथ भक्ति से जुड़ा है। अगर कामवासना की व्याख्या करनी हो तो भी प्रेम से ही करनी होगी। अगर भक्ति की व्याख्या करनी हो तो भी प्रेम सही करनी होगी। क्योंकि प्रेम सेतु है दोनों के बीच। प्रेम दोनों का मध्यबिन्दु है। प्रेम दोनों का सतुलन है।

जिसने भक्ति को जाना वह उनसे बोले जिन्होंने भक्ति को नहीं जाना, तो वह किस भाषा में बोने? प्रेम के अतिरिक्त और काई भाषा नहीं बचती। काम में तो बोला ही नहीं जा सकता, क्योंकि काम एक छोर है, भक्ति दूसरा छोर है। भक्ति तो काम के करीब-करीब विपरीत है। तो, अगर काम से कहना हो तो इतना ही कहा जा सकता है कि जो कामना नहीं है, वही भक्ति। लेकिन इससे कुछ हल न होगा, निषेध हो जाएगा।

हम पूछते हैं, ‘भक्ति क्या है?’ अगर काम से कहना हो तो हम इतना ही बता सकते हैं कि भक्ति क्या नहीं है। लेकिन पूछने वाला पूछ रहा है, ‘हम यह नहीं पूछ रहे हैं कि भक्ति क्या नहीं है। पत्थर नहीं है, वृक्ष नहीं है, पक्षी नहीं है – माना, भक्ति है क्या? तो कहाँ से शुरू करें?’

.. ‘परम प्रेमरूपा है।’

प्रेम से शुरुआत करनी पड़ेगी। लेकिन प्रेम में एक शर्त लगायी है परम प्रेमरूपा। परम प्रेमरूपा का अर्थ है ऋण काम। अगर सिफ़र प्रेमरूपा कहते तो फिर भक्ति में और प्रेम में कोई फर्क न रह जाता, फिर तो प्रेम ही भक्ति हो जाती। फिर तीसरे की कोई जरूरत न होती, काम और प्रेम, दो काफी थे विभाजन के लिए।

नहीं, प्रेम में थोड़ा-सा काम शेष रहता है। भक्ति में उतना भी काम शेष नहीं रह जाता।

अब हम इसे ऐसा समझें कि काम में थोड़ा-सा प्रेम है, इसलिए तो आदमी काम में उलझा रहता है। एक प्रतिशत होगा प्रेम, निन्नानवे प्रतिशत केवल कामना है, केवल वासना है, लेकिन वह एक प्रतिशत प्रेम काम को भी एक सुन्दर प्रतिमा बना देता है, काम को भी एक मालभिगमा दे देता है जो उसकी नहीं है, उधार है, काम की कुरुपता को ढाँक लेता है, और एक सौंदर्य का आवरण दे देता है, काम की व्यर्थता को ढाँक लेता है और सार्थकता की थोड़ी-सी झलक द देता है।

कामवासना में भी प्रेम का थोड़ा-सा अश है। और प्रेम में भी कामवासना

का थोड़ा-सा अश है । दोनों जुड़े हैं । इसलिए प्रेम भी पूरा प्रेम नहीं है; कुछ उसमें अभी भी विजातीय है । प्रेम में भी थोड़ी कामवासना है ।

इसे हम ऐसा समझें कि कामी कामवासना में पड़ता है, कामवासना में पड़ने के कारण थोड़े-से प्रेम का आविर्भाव हो जाता है । प्रेमी प्रेम में डूबता है, प्रेम में डूबने के कारण कामवासना आ जाती है । दोनों में बड़ा फर्क है, लेकिन तालमेल भी है । कामी काम के कारण प्रेम करने लगता है । प्रेमी प्रेम के कारण काम में उत्तरता है । दोनों में मौलिक अतर है । क्योंकि प्रेमी का काम बड़ा भयंकर और प्रीतिकर हो जाएगा । कामी का प्रेम भी गदा होगा । उसके प्रेम में भी बदबू होगी । लेकिन एक-दूसरे में घुले-मिले हैं ।

परम प्रेमरूपा है भक्ति । परम प्रेमरूपा का अर्थ हुआ प्रेम खालिस सोना बचा, चौदह कैरेट नहीं, अट्ठारह कैरेट नहीं, खालिस । उसमें एक भी कैरेट कामवासना का न रहा । शुद्ध प्रेम हो गया, तो भक्ति ।

क्याकि तुम प्रेम को शायद थोड़ा-सा जानते हो, इसलिए प्रेम के आधार पर भक्ति को समझाया जा रहा है । तुम प्रेम की थोड़ी-भी भाषा जानते हो, वह भी पूरी नहीं जानते, कहीं मपने में झलक मिली है, कहीं टटोलते-टटोलते हाथ पड़ गया है, कहीं से कोई थोड़ी पहचान आ गयी है, सायोगिक रही होगी, लेकिन तुम्हें थोड़ा-सा स्वाद है ।

जैसे कि पीतल है, और सोना तुमने नहीं देखा, तो हम पीतल से सोने को समझते हैं । कहते हैं ऐसा ही पीला, पर और शुद्ध, ज्योतिमंग, सूर्य की किरण जैसा चमकता हुआ । कुछ प्रतीक खोजते हैं । प्रतीक खोजना बर्णन है, व्याख्या है ।

‘वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है ।’

सूत्र के जो भी अनुवाद किये गये हैं हिन्दी में, उन सब में यही अनुवाद किया गया है वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है । पर सकृत में बात कुछ और है ।

‘सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा ।’ ईश्वर शब्द का प्रयोग नहीं किया है । ईश्वर शब्द नहीं है । ‘उसके प्रति’ । ‘त्वस्मिन्’ बड़ा फर्क है । जिन्होने भी हिन्दी में अनुवाद किये हैं, उन्होने बात को सकीर्ण कर दिया ।

‘उसके प्रति’ । ‘उसका’ नाम नहीं हो सकता । इशारा है । बड़ी दूर है वह । उसे ईश्वर कहने से बात हल न होगी । क्योंकि उसे ईश्वर कहने से ही हम उसकी परिभाषा कर देंगे ।

ईश्वर शब्द का अर्थ होता है, ऐश्वर्यवान, सारा ऐश्वर्य जिसका है, वह ईश्वर । यह हमारी परिभाषा है, क्योंकि हम ऐश्वर्य की भाषा में सोचने के आदी हो गये हैं । हमारे लिए ईश्वर ऐसा है जैसे सम्राट, सारे जगत का है, पर है सम्राट

ही । धन की भाषा में हम सोचने के आदी हो गये हैं, ऐश्वर्य की भाषा में सोचने के आदी हो गये हैं, तो ईश्वर कहते हैं ।

लेकिन धन से, और ईश्वर का क्या लेना-देना ? ऐश्वर्य से, और ईश्वर का क्या सम्बन्ध ? सत्राटो से उसकी कल्पना करनी ठीक नहीं । इसलिए सस्तु शब्द ठीक है त्वस्मिन् – 'उसके प्रति' । नाम मत दो उसे । नाम तुम दोगे, तुम्हारा नाम होगा, तुम्हारा मन प्रविष्ट हो जाएगा । सिफे इतना ही कहो 'उसके' । इशारा करो । अंगूली बता दो । शब्द मत दो ।

वह अनाम है, नाम मे मत धसीटो ।

वह अरूप है, रूप का आग्रह मत करो ।

वह निराकार है, तुम कोई आकार मत दो ।

'ईश्वर' देते ही आकार मिल जाता है । ईश्वर शब्द आते ही, तुम्हारे मन में आकार उठने शुरू हो जाते हैं ।

सोचो थोड़ा 'उसके प्रति' । - कोई आकार उठता है ? उसके प्रति । - तुम पूछोगे, 'किसके प्रति ? यह कौन है 'उस' ? किसकी बात कर रहे हैं ?'

'ईश्वर' कहते ही हल हो गया, तुम निर्णित हुए, तुमने कहा, समझ गये । जहाँ तुमने कहा, समझ गये, वही नासमझी है । तुम न समझो, वडी कृपा हांगी । तुम बहुत जल्दी समझ जाते हो, वही भूल हो जाती है ।

परमात्मा इतना आसान नहीं कि समझ मे आ जाए । वस्तुत उसे समझने के लिए सब समझ छोड़नी पड़ती है । उसे केवल वे ही समझ पाते हैं जो समझ का आग्रह भी छोड़ देते हैं ।

इसनिंग अच्छा होगा, हम भी कहें, 'उसके प्रति' । 'उसके' कहते ही बड़ा विराट का द्वार खुला है । फिर ये पश-पक्षी, पांधे, आकाश, सब सम्मिलित हो जाते हैं । परमात्मा कहते ही, ईश्वर कहते ही बात कुछ बिगड़ जाती है, भेद खड़ा हो जाता है, स्पष्टा और सृष्टि का भेद हो जाना है । फिर तुम सृष्टि की निदा में लग जाने हो और स्पष्टा की पूजा मे । और कहीं स्पष्टा और सृष्टि अलग नहीं हैं ।

स्पष्टा शब्द ठीक नहीं है, सृजन की ऊर्जा है । वही सृष्टि है, वही स्पष्टा है ।

'उसके प्रति' कहना विलकून ठीक है ।

'मा त्वस्मिन् परमप्रेमरूप' – उसके प्रति परम प्रेमरूप है । न नाम का पता है, न धार्म का पता है । इसका क्या अर्थ हुआ ? इसका अर्थ यह हुआ कि प्रेम तो नाम-धार्म के बिना नहीं हो सकता, भक्ति हो सकती है । प्रेम के लिए तो नाम-धार्म चाहिए ।

तुम अगर कहो कि मैं प्रेम मे पड़ गया हूँ, और कोई पूछे, 'किसके प्रति', तुम कहो, 'इसका कोई पता नहीं' – तो तुम पागल हो ।

प्रेम तो साकार के प्रति है, इसलिए नाम पता है। प्रेम का तो कोई एड्रेस है, पत्र लिखा जा सकता है। परमात्मा का कोई एड्रेस नहीं, पत्र लिखा नहीं जा सकता। परमात्मा के लिए तो बड़ा बावलापन चाहिए। निराकार के प्रति प्रेम। इसका अर्थ यह हुआ कि आजैकट, विषय तो खो गया, सजैकट, केवल तुम्हीं बचे।

जिन्होंने परमात्मा के प्रति प्रेम जाना, उन्होंने वस्तुत यही जाना कि वहाँ कोई भी नहीं है, बस प्रेम ही है। असल में परमात्मा के प्रति प्रेम कहना ठीक नहीं है, वहाँ 'प्रति' है ही नहीं। वहाँ सिर्फ़ प्रेम का निवेदन है, किसी के प्रति नहीं है, सिर्फ़ प्रेम का आविर्भाव है, शुद्ध प्रेम की ऊर्जा का उठान है, उत्थान है, उधर्वगमन है, किसी के प्रति नहीं है। पर कहना होगा तुम्हारी भाषा में।

इसलिए सूत्र कहता है 'वह उसके प्रति परम प्रेमरूपा है।' परम प्रेम तभी है जब प्रेमी की भी ज़रूरत न रह जाए। जब तक प्रेमी की ज़रूरत है, तब तक तुम्हारा प्रेम परम प्रेम नहीं है, निर्भर है। निर्भर है तो शुद्ध नहीं हो सकता। जिससे तुम प्रेम करोगे, वह तुम्हारे प्रेम को आच्छादित करेगा। जिससे तुम प्रेम करोगे, वह तुम्हारे प्रेम का रग देगा, जिसको तुम प्रेम करोगे वह तुम्हारे प्रेम को ढग देगा — परम नहीं हो सकता।

ऐसा समझो कि जब भी सोने का आभूषण बनाओगे, तो शुद्ध न रह जाएगा, कुछ-न-कुछ मिलाना पड़ेगा। क्योंकि शुद्ध सोना इतना नाजुक है, उसके आभूषण नहीं बनते। उसमे कुछ मिलाना ही पड़ेगा विजातीय — कुछ तांबा मिलाओ, कुछ और मिलाओ। वह अट्ठारह कैरेट रह जाएगा, बीस कैरेट होगा, बाईस कैरेट होगा; लेकिन शुद्ध नहीं हो सकता, चौबीस कैरेट नहीं हो सकता।

ऐसा समझो कि भक्ति के जब तुम आभूषण बनाते हो, तो प्रेम हो जाता है। और जब तुम प्रेम के आभूषणों को पिघला लेते हो और शुद्ध कर लेते हो, तब भक्ति हो जाती है। लेकिन जब तुम प्रेम के आभूषण पिघलाते हो तो प्रेमी भी पिघल जाता है। तुम जिसे प्रेम करते थे, वह बचता नहीं। तुम भी नहीं बचते, प्रेम ही बचता है। वे दोनों गये। वह द्वैत गया। और जब प्रेम ही बचता है, तब प्रेम शुद्ध है। न मैं न तू, दोनों खो गये।

जलालुद्दीन रूमी की बड़ी प्रसिद्ध कविता है, मुझे बड़ी प्यारी है। एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पे दस्तक देता है। भीतर से आवाज़ आती है, 'कौन है?' प्रेमी कहता है, 'मैं हूँ तेरा प्रेमी। पहचाना नहीं?' मेरी पगध्वनि विस्मृत हो गयी? मेरी आवाज़ पहचान से उत्तर गयी?' लेकिन भीतर से आवाज़ आयी, 'अभी तुम इस योग्य नहीं कि द्वार खुलें। अभी तुम अधिकारी नहीं।'

प्रेमी बड़ा हैरान हुआ। क्योंकि प्रेमी तो सदा सोचता है कि अधिकारी है ही। हर व्यक्ति की यही भूल है कि हर व्यक्ति जन्म से ही समझता है कि

वह प्रेम का अधिकारी है। इसलिए प्रेम को कोई सीखता ही नहीं, बिना सीखे ही प्रेम करने लगते हैं। और इसलिए फिर प्रेम में इतनी भूलें होती हैं और प्रेम में इतना उपद्रव होता है, और सारा जीवन बबाद हो जाता है।

प्रेम सभावना है, सत्य नहीं। प्रेम को प्रगटाना है, वह प्रगट नहीं है। प्रेम कोई मिली हुई सपदा नहीं है, खोजनी है, सूजन करना है उसका।

प्रेमी लौट गया, वर्षों भटकता रहा, प्रेम की खोज करता रहा, प्रेम का अर्थ समझने की चेष्टा करता रहा, ध्यान किया, प्रार्थना की — धीरे-धीरे प्रेम का आविर्भाव हुआ, वह लौटा। फिर उसने दस्तक दी। भीतर से आवाज आयी, 'कौन?' तो, जलालुद्दीन कहता है कि अब प्रेमी ने कहा 'तू ही है।' और द्वार खुल गये।

जलालुद्दीन से अगर मेरी कभी मुलाकात हो जाए — कभी-न-कभी हो सकती है, क्योंकि जो रहा है वह कही होगा, जो है वह मिटता नहीं — तो उससे मैं कहूँ कि कविता पूरी कर दो, यह अधूरी है। अभी भी द्वार खुलने नहीं चाहिए। क्योंकि जहाँ 'तू' है वहाँ 'मै' मिट नहीं सकता।

प्रेमी ने पहले कहा, 'मै'! अब उसने बदल लिया पहलू, लेकिन पहलू बदलने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। अब वह कहता है, 'तू'! लेकिन 'तू' का क्या अर्थ है अगर 'मै' मिट गया हो? किसको कहोगे 'तू'? किस प्रसग में कहोगे 'तू'?

'तू' का सारा अर्थ 'मै' में छिपा है। जब तक 'मै' हूँ, तभी तक 'तू' में अर्थ है। जब 'मै' ही न रहा तो 'तू' कौन?

जलालुद्दीन से मैं कहूँ कि इसे थोड़ा और आगे बढ़ा, एक दफा और लौटा इस प्रेमी को। जल्दी मत कर। कविता खत्म करने की इतनी जल्दी भी क्या है, और चार लाइन जोड़ी जा सकती हैं। जाने द वापस। प्रेयसी से कहलवा दे कि कुछ-कुछ तैयार हुआ, लेकिन पूरा नहीं। थोड़ा अधिकारी होने की क्षमता आयी, लेकिन अभी प्रारम्भ है। थोड़ा और भटक। थोड़ा और खोज। इतना पहुँचा है तो आगे भी पहुँच ही जाएगा। रास्ता ठीक है जिस पे चल पड़ा है, मजिल अभी नहीं आयी। आधी यात्रा हो गयी है — 'मै' खो गया, आधी और होनी चाहिए — तू भी खो जाए। फिर ला, कुछ वर्षों बाद। फिर लाने की दैसे जरूरत भी नहीं है। फिर तो प्रेयसी वही चली आएगी जहाँ प्रेमी है।

परम प्रेम तब है जब न प्रेमी रहा न प्रेयसी रही, जब दून्ह खो गया।

‘उसके प्रति परम प्रेमरूपा है .।’

और तब —

‘अभी मैखानए दीदार हर जरों में खुलता है

अगर इसान अपने आप से बेगाना हो जाए।’

और तब कण-कण मे उसकी मधुशाला का दरवाजा खुल जाता है । कण-कण मे ।

‘अभी मैंखानए दीदार हर जरे मे खुलता है ।’

कण-कण मे उसका मधु बिखर जाता है और कण-कण मे उसकी मधुशाला का द्वार खुल जाता है – ‘अगर इसान अपने आप से बेगाना हो जाए ।’ अगर आदमी अपने को भल जाए, तो परमात्मा को पाने से अड़चन कहाँ । अपने से बेगाना हो जाए । मैं को भूल जाए, मैं को छोड़ दे, मैं को न पकड़े रखे – तो उसकी मधुशाला कण-कण पे बिखर जाती है । फिर सभी जगह उसकी ही मस्ती है ।

न तुम हो, न वह है, मस्ती ही मस्ती है – वही परम प्रेमरूप है ।

‘अमृतस्वरूपा च ।’

बडे अद्भुत सूत्र हैं । छोटे, बीजरूप ।

‘और अमृतस्वरूपा है ।’

‘वह भक्ति परम प्रेमरूपा है और अमृतस्वरूपा है ।’ क्योंकि जिसने परम प्रेम जाना, फिर उसकी कोई मृत्यु नहीं । क्योंकि वह तो मर ही चुका, अब मरेगा कैसे ? मरना तो तभी तक शेष है जब तक तुम मिटे नहीं, मरे नहीं । मौत तो तभी तक डरायेगी जब तक तुम हो । जिसने अपने को खो दिया उसकी कैसी मौत ! उसने मौत पर विजय पा ली । वह अमृतस्वरूप को उपलब्ध हो गया ।

ध्यान रखना अहकार की ही मृत्यु होती है, तुम्हारी कभी नहीं होती, कभी हुई नहीं, हो नहीं सकती । तुम शाश्वत हो, सनातन हो, सदा थे, सदा रहोगे । अन्यथा कोई उपाय नहीं है । तुम चाहो भी अपने को मिटा लेना तो नहीं मिटा सकते । मौत होती ही नहीं । लेकिन तुमने एक अपना काल्पनिक आकार, रूप समझ रखा है । उस कल्पना की मौत होती है । तुमने अपनी एक अहकार की प्रतिमा बना रखी है । परमात्मा से जुदा तुमने अपने को ‘मैं’ कहने का भाव बना रखा है । वही मैं-भाव मरता है । चूँकि तुम उमसे बडे जुड़े हो, तुम्हे लगता है ‘मैं’ मरा ! ‘मैं’-भाव छूट जाये ‘अमृत-स्वरूपा च’ तब, तब जा मिलता है उसकी कोई मृत्यु नहीं है ।

‘यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति ।’

उस भक्ति को प्राप्त कर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है ।

‘सिद्ध हो जाता है ।’

सिद्ध का क्या अर्थ होता है ?

सिद्ध का अर्थ होता है जो होने को थे वही हो गये । जो बीज की तरह लाये थे वह खिल गया कुल की तरह । सिद्ध का अर्थ होता है ।

सिद्ध का अर्थ होता है अब और साधना करने को न रही, अब और कोई माध्य न रहा, अब सभी साधनों के पार आ गये ।

मिद्द का अर्थ होता है तुमने पा लिया अपने स्वभाव को, अपने स्वरूप को, पहुँच गये उस परम मदिर मे जिसकी तलाश थी, जन्मो-जन्मो अनत तक जिसे खोजा था, जिसके लिए भटके थे ।

स्वय को खोते ही व्यक्ति मिद्द हो जाता है । इसका अर्थ हूआ कि सारा भटकाव अहकार का है । तुम इसलिए नही भटकते कि कोई तुम्ह और भटका रहा है, तुम इसलिए भटकते हो कि तुम हो । जब तक तुम हो, भटकागे । तुम मिटे कि पहुँचे । मिटने में ही पहुँच जाना है । होने में ही भटकना है ।

‘अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है ।’

‘जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न द्वेष करता है, न आसक्त होता है और न उसे विषय-भोगो मे उत्साह होता है ।’

‘इन्तिहा वो थी कि जीने के लिए मरता था मैं

इन्तिहा ये है कि मरने की भी हसरत न रही ।’

ऐसे भी दिन ये जब जीने के लिए ऐसी आतुरता थी कि मरने को भी तैयार हो जाना था । और आखिरी बात—इन्तिहा यह है— और आखिरी बात यह है, पहुँच जाने की बात यह है कि मरने की भी हसरत न रही । जीने की तो बात छोड़ो, मरने की भी आकौशा नही उठनी ।

तुमने कभी ख्याल किया—तुम्हे मरने की आकौशा तभी उठती है जब तुम्हारी जीवन की आकौशा पूरी नही होती । जहाँ-जहाँ अडचन आती है जीवन की आकौशा मे, वही तुम कहते हो कि मर जाना बेहतर है । मरना तुम चाहते नही । जीना तुम चाहते हो अपनी शर्तों पर । शर्त कभी पूरी नही होती, तो मरने की तैयारी करने लगते हो ।

रुसी कहानी है कि एक लकड़हारा लौट रहा है गट्ठर ले कर सिर पर । जिदगी-भर लकड़ियाँ ढाता रहा है, यक गया है । सभी यक जाते हैं, और सभी लकड़ियाँ ढो रहे हैं । काटो जगल से, बेचो बाजार मे, फिर दूसरे दिन काटो जगल से, फिर बेचो बाजार मे । यक गया है । हड्डी-हड्डी जराजीर्ण हो गयी है । उस दिन तो वह बड़ा दुखी है कि इससे भी क्या सार है । ‘यही करता रहा, यही करता रहूँगा, और एक दिन मर जाऊँगा और मिट्टी मे गिर जाऊँगा ।’

तो उसने कहा, ‘ऐ मौत, सभी को आती है, एक मुझ ही को छोड देनी है । मुझे क्यो नही आती ? उठा ले मुझे ।’

ऐसे मौत साधारणत इननी जल्दी सुनती नही, पर कहानी है कि मौत ने

सुन लिया । मौत आ गयी । लकड़हारा गट्ठर को पटक के दुखी मन से बैठा था । मौत ने आ के कहा, 'मे आ गयी हूँ, बोलो क्या काम है ?'

देखा मौत को, हाथ-पैर कौप गये, प्राण कौप गये, साँस रुक गयी । उसने कहा, 'नहीं, कुछ काम नहीं, कोई और दिखायी नहीं पड़ा, गट्ठर उठवा के सिर पे रखवाना है । कृपा कर और गट्ठर उठा के सिर पे रख दे ।'

तुम जब भी मरने की बात करते हो तब गौर से देखना वहाँ जीने की आकांक्षा बड़ी गहरी है । इसलिए जो लोग आत्महत्या करते हैं, तुम चौकना मत, तुम यह मत सोचना कि इन लोगों ने आत्महत्या कर ली, बात क्या है । आदमी तो जीना चाहता है, ये मर कैसे गये । ये बहुत बुरी तरह जीना चाहते थे, बड़ी प्रगाढ़ता से जीना चाहते थे । इनकी शर्तें बड़ी थीं, जिदगी पूरी न कर पायी । ये जिदगी से नाराज हो गये । ये जिदगी को तो न मिटा पाये, ये जिदगी को मिटाने के लिए तत्पर हो गये थे – अपने को मिटा लिया । मगर इनकी आत्महत्या में जीवन की आकांक्षा है, जीवेषणा है ।

जब तुम जीवन की आकांक्षा छोड़ देते हो, तब तुम चकित हो जाओगे कि उमर के साथ-ही-माथ मृत्यु की आकांक्षा भी छूट जाती है । जिस व्यक्ति के जीवन को जीवेषण से छुटकारा मिल गया, जो अभी राजी है कि मौत आ जाए तो तैयार पाये जाएं यह भी नहीं कहता कि कल मुझे जीना है । – उसे तुम कभी आत्म-हत्या करना न पाआग, हालाँकि नम्हे लगेगा कि इसे तो आत्महत्या कर लेनी चाहिए । जब यह आदमी कहता है कि मुझे जीने का कोई सवाल नहीं है तो इसे आत्महत्या कर लेना चाहिए । लेकिन आत्महत्या तभी बीं जाती है जब जीने की बड़ी गहरी आकांक्षा होनी है । यह आत्महत्या भी क्यों करे ? मरने की भी हमरत न रही । उतनी आकांक्षा भी नहीं है अब ।

'न किसी वस्तु की इच्छा करता है ।' क्योंकि जिसने भवित का जान लिया, वस्तुग व्यर्थ हा गयी ।

तुम जब कभी प्रेम का जानते हो तब भी वस्तुग व्यर्थ हो जाती है ।

तुमने कभी ख्याल किया – प्रेमी एक-दूसरे का वस्तुआ को भेट देने लगते हैं । वह प्रेम का लक्षण है । क्यों ? अब वस्तुओं का मोह नहीं रह जाता । वस्तुग देने योग्य हो जाती है, पकड़ रखने यार्थ नहीं रह जाती ।

जिसे तुम प्रेम करते हो उमे तुम गब दे देना चाहते हो । इसलिए कजम प्रेम नहीं कर पाते । कृपण आदमी के जीवन मे कोई प्रेम नहीं हो सकता । क्योंकि कृपणता और प्रेम एक साथ नहीं हो सकते, एक ही घर मे उन दोनों का निवास नहीं हो सकता ।

तो, ध्यान रखता कृपण तो प्रेमी भी नहीं हो सकता, भवत हाना तो अमस्तव ।

है। लेकिन अक्सर तुम कृपणों को भक्त पाओगे। वह भक्ति झूठी है।

निजाम हैदराबाद भक्त आदमी थे। लेकिन मैंने सुना है कि वे दुनिया के सबसे बड़े सम्पत्तिशाली आदमी थे। इतनी बड़ी सम्पत्ति और किसी के पास नहीं। लेकिन कृपण तुम ऐसा आदमी न पाओगे। जो टोपी उन्होंने सिंहासन पर बैठते बक्त पहनी थी, वे चालीस साल उसको पहने रहे। उससे बास आती थी। वह इतनी गदी हो गयी थी। वे उसको धुलने नहीं देते थे, क्योंकि धुलने मे कही बिंगड़ न जाए, कही खराब न हो जाए। वे मरते दम तक उसी को पहने रहे। मेहमान सिगरेट अधजली छोड़ जाते तो ऐश-ट्रे से वे इकट्ठी कर लेते थे — खुद पीने के लिए। यह तुम भरासा न करोगे। और यह आदमी भक्त था। पाँच बार इबादत करता था भगवान को। यह असम्भव है। यह बिलकुल असम्भव है।

यह आदमी किसको धोखा दे रहा है? अभी तो इस आदमी के जीवन में प्रेम भी नहीं है। जली सिगरेट, झूठी सिगरेट इकट्ठी कर रहा है। जैसे ही मेहमान जाएं, जो पहला काम निजाम करते थे, वह यह कि जल्दी से सिगरेट संभाल के रख लेना, फिर फुर्सत से पिएंगे।

जहाँ भी तुम कृपण को पाओ, वहाँ तुम समझ लेना कि अगर वह भगवान की बातें कर रहा हो, प्रेम और भक्ति की बातें कर रहा हा, तो वे किसी गहरे धाव को छिपाने की तरकीबे हैं। कृपण कभी भक्त नहीं हो सकता। कृपण प्रेमी ही नहीं हो पाता। वह पहनी ही मीढ़ी नहीं चढ़ता, दूसरी पर तो पहुँचेगा कैसे?

जब तुम प्रेम करते हो, तत्क्षण तुम्हारी पकड़ वस्तुओं से उठ जाती है, तुम मेट कर सकते हो, दान दे सकते हो। और दे के तुम प्रसन्न होते हो, उदास नहीं। और जो तुमसे ले लेता है तुम उसके अनुगृहीत होते हो कि उसने हलका किया। ऐसा नहीं सोचते कि वह तुम्हारा अनुगृहीत होए, क्योंकि अगर उतना भी रह गया तो सोचा हुआ फिर तुम कृपण हो।

हिंदुस्तान मे रिवाज है कि ब्राह्मण घर आये तो पहले उसे भेट दो, दान दो, किर दक्षिणा भी दो। दक्षिणा का मतलब हाता है धन्यवाद कि तुमने मेट स्वीकार की। दक्षिणा बड़ा अद्भुत शब्द है। पहले दान दो, और चूंकि ब्राह्मण ने स्वीकार किया, वह इनकार भी कर सकता था, फिर दक्षिणा दो कि धन्यभाग कि 'तुमने स्वीकार किया।' तुम इनकार कर देते तो मेरा प्रेम अधूरा वापस लौट आता। 'तुमने द्वार दिया।'

इसलिए प्रेमी अनुगृहीत होता है दे कर। भक्त सब लुटा के अनुगृहीत होता है।

'किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता है, न द्वेष करता है।' क्योंकि जब इच्छा ही नहीं रही तो द्वेष कहाँ। द्वेष तो इच्छा की छाया है। जब तक तुम

इच्छा करते हो तब तक तुम द्वेष भी करोगे । क्योंकि जो वस्तु तुम चाहते हो, वह अगर किसी और के कब्जे में है तो तुम वया करोगे? तुम द्वेष करोगे । तुम ईर्ष्या करोगे । तुम जलोगे ।

'न आसक्त होता है' । क्योंकि जब इच्छा ही न रही ।

समझ लो इसको ठीक से । जिसके जीवन में वस्तुओं की इच्छा है, उसका अर्थ है कि उसने प्रेम को नहीं जाना - पहली बात । वह चूक गया । वस्तुएँ तो पढ़ी रह जाएँगी, प्रेम साथ जाता है । थोड़ा जाता है, भक्ति होती तो पूरा जाता । उनना जाता जितना प्रेम था । जितना खालिसे सोना था, साथ चला जाता, शेष विजानीय पड़ा रह जाता ।

अगर तुम प्रेम तक नहीं पहुंच पाएं तो उसका अर्थ केवल इनना है कि तुम जो भी इकट्ठा कर रहे हो, वह सब मौत छीन लेगी । इसलिए कृपण मौत से डरता है । जीना नहीं और मौत से डरता है । जीने की तैयारी करना है, जीता कभी नहीं । क्योंकि जीने में तो खर्च है । जीने में तो प्रेम लाना पड़ेगा । जीने में तो व्यक्तित्व प्रवेश कर जाएँगे, वस्तुओं की दुनिया समाप्त हो जाएगी । न, वह सिफ़ं जीने की तैयारी करता है । मकान बनाता है जिसमें कभी रहेगा, बन इकट्ठा करता है जिसका कभी भोगेगा, शादी करता है, पत्नी, जिसमें कभी प्रेम करेगा, फुर्सत से, बच्चे पैदा करता है कि कभी जब समय हांगा, सुविधा हांगी, तब एक बार आशीर्वाद बरसा देंगे । मगर वह दिन कभी आता नहीं । वह तैयारी ही करता है । एक दिन मौत उसे उठा लेती है । और जो भी उसने इकट्ठा किया था, वह सब पड़ा रह जाता है । इसका भय सताता है ।

इसलिए कृपण डरना रहता है और डर के कारण और भी कृपण हाता जाना है । मौत के खिलाफ़ इन्तजाम करता है ।

मौत के खिलाफ़ एक ही इन्तजाम है - और वह है प्रेम । मौत के खिलाफ़ दूसरा कोई इन्तजाम नहीं है, कोई सुरक्षा नहीं है । कोई बीमा-कपनी मौत के खिलाफ़ सुरक्षा नहीं दे सकती । सिफ़ं प्रेम ।

क्योंकि प्रेम के क्षण में तुम वस्तुओं से ऊपर उठते हो और व्यक्तित्व दृष्टि में आता है, व्यक्तियों का सासार शुरू होता है, वस्तुओं का समाप्त होता है । तब वस्तुएँ साधनरूप हो जाती हैं । तुम प्रेम के लिए उनका उपयोग करते हो, लेकिन वे तुम्हारा उपयोग नहीं कर पाती । जब तुम वस्तुओं की इच्छा करते हो तो जो वस्तुएँ तुम्हारे पास हैं, उनमें तुम्हारी आसक्ति होती है कोई छीन न ले । और जो तुम्हारे पास नहीं हैं, दूसरों के पास हैं, उनसे तुम्हारा द्वेष होता है, क्योंकि उनके पास हैं और तुम्हारे पास नहीं हैं । इच्छा के दो पहलू बन जाते हैं फिरः अपने पास जो है उसे पकड़ो, और दूसरे के पास जो है उसे छीनो । तब सारा जीवन

एक छीता-झपट, एक आपाधापी, एक दीड़-धूप हो जाती है, हाथ कुछ भी नहीं लगता। मरते बक्त हाथ खाली होते हैं।

‘न आमक्त होता है, न उम्हे विषय-भोगो मे उत्साह होता है।’

यह बहुत समझ लेने जैसा है। विषय-भोगो में तुम्हे उत्साह तभी तक है, जब तक तुम्हे परम भोग का स्वाद नहीं मिला। क्षुद्र को भोगता आदमी तभी तक है जब तक विराट के भाग का द्वार नहीं खुला। ककड़-पन्थर बीनते हो, क्योंकि हीरे-जवाहरानों का पता नहीं। कूड़ा-कर्फ इकट्ठा करते हो, क्योंकि सम्पत्ति की काई पहचान नहीं है।

यह लक्षण है भक्त का कि उमे विषय-भोगो मे कोई उन्साह नहीं होता। कामी को मिर्फ विषय-भाग मे उत्साह होता है, और कोई उत्साह नहीं होता। प्रेमी को विषय-भोग मे उत्साह नहीं होता, किन्तु और चौजा मे उत्साह होता है, अगर उनके सहारे काम भी चले तो ठीक।

जैसे समझो अगर तुम किसी व्यक्तिके प्रेम मे हो, तो तुम चाहोगे कि दोना बैठ क भी शात आकाश मे तारो का देखो। कामी नहीं चाहेगा यह। कामी कहेगा, ‘क्यों किन्तु समय बराबर करना? तारो मे क्या रखा है? एक दफा देख लिये मदा के लिए देख लिये।’ कामी का तो शरीर मे रम है, नारो मे नहीं, चाँद मे नहीं, पक्षियों के गीत मे नहीं। दो प्रेमी बैठ के मिनार सुन सकते हैं, या गीत गा सकते हैं, या दो प्रेमी बैठ के जान, मौत ध्यान हर सकते हैं, प्रार्थना कर सकते हैं। उम प्रार्थना के माध्यम स ही अगर काम भी जीवन मे आ जाए तो उन्ह काई विराध नहीं है। लेकिन शूल उन्होने प्रार्थना की थी। चाद को देखते-देखते वे करीब आ जाएँ और एक-दूसरे का हाथ हाथ मे ले ले तो उन्हे कुछ विराध नहीं है, लेकिन दखना उन्होने चाद को शुरू किया था।

प्रेमियों की आख एक-दूसरे प नहीं होती, एक साथ किसी और चौज पे होती न। कामियों की आंख एक दूसरे प होती है, जीर किसी चौज पे नहीं होती। प्रेमी कियो आग नीसरी चौज को दखते ह अपने से पार। प्रेम का कोई गतव्य है, काम का कोई गतव्य नहीं ह। काम अपने-आप मे समाप्त हो जाता है। प्रेम अपन स पार जाना है। जो पार ले जाए, जो अनिक्रमण कराये, जो तुम्हे तुमसे ऊपर देखन की सविधा द, वही प्रेम है।

ता, प्रेमी भी बैठ के मिनार सुनेगे, या कभी गीत गएंगे, या कभी नाचेगे, या कभी खुले आकाश के नीचे लेटेगे, या कभी सागर-नद पर धूमेंगे, कभी सागर क नाद का मूनेगे। लेकिन प्रेमी, कामी नहीं।

प्रेमो का कुछ लक्ष्य है जो दाना स पार है। लेकिन बार-बार उम लक्ष्य से वे अपने पे लौट आएंगे। भक्त कभी नहीं लौटता - गया भो गया। वह जब चाँद की

तरफ गया तो गया, गया, गया, फिर नहीं लौटता। भक्त पीछे लौटना नहीं जानता। कामी तो कही जाता ही नहीं, प्रेमी जाता है, लौट-लौट आता है, भक्त गया सो गया।

काम ऐसे है जैसे पिजरे में बद पक्षी, कही जाता नहीं, वही पिजरे में ही उछल कूद करता रहता है, वही हलन-चलन करता रहता है। बस पिजरा उसकी सीमा है।

प्रेम ऐसे है जैस कबूतर उड़ते हैं आकाश में, फिर अपने घर में बापस लौट आते हैं। पिजरो में बद नहीं है। न लौटे तो कोई उन्हें बुलाना नहीं है, कोई पड़कने नहीं जा सकता, अपने से लौट आते हैं। घर के ऊपर एक छत्ता लगा दिया होता है। उड़ते हैं दूर आकाश में, बड़ी दूर को यात्रा करते हैं, थकते हैं, लौट आते हैं बापम। प्रेमी ऐसे पक्षी हैं जो पिजरा में बद नहीं है, जाने हैं दूर अपने में पार, लौट-लौट आते हैं। भक्त ऐसा पक्षी है जो गया सो गया, उसका लौटने को काई घर नहीं है। उसका घर सदा आगे है – और आगे। वह जब तक परमात्मा तक ही न पहुँच जाए तब तक यात्रा जारी रहती है।

‘भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न देष्ट करता है, न आमकत होता है, और न उसे विषय-भोगों में उत्साह होता है।’

‘यज्ञान्वा मता भवनि, स्तव्धो भवनि, आत्मारामो भवनि।’

‘उस भक्ति का जान कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्नब्ध हो जाता है, और आत्माराम हो जाता है।’

उन्मत्त हो जाता है। पागल हो जाना है।

भक्ति आपूर्व उन्मत्तता है। आँखे मदा नशे से सरोबार रहती हैं। मन मदा एक जपूर्व वेहाशी में डूबा होता है। जीवन माधारण गति नहीं रह जाती, नृत्य हो जाता है। जीवन न गद्य खो जाता है, पद्य का जन्म होता है। किसी और ही आयाम में प्रवेश हो जाता है।

‘वह सिजदा वया, रहे एहसास जिसमें मिर उठाने का।

‘इवादत और वकदरे होश तौहीने इवादत है।’

भक्त वा भिर झुकता है ता फिर उठता नहीं। माधारण लोगों को तो पागल मालूम पड़ेगा। माधारण लोग तो सिर झुकाते ही नहीं, सिर दिखाते हैं कि सिर झुकाते हैं। दिखाते भर हैं। अहंकार तो अकड़ा खड़ा रहता है, शरीर ही कवायद करता है।

‘वह सिजदा क्या, रहे एहसास जिसमें सिर उठाने का।’

लेकिन भक्त ऐसे पागल है कि वे इसी को सिजदा कहते हैं, इसी को सिर झुकाना कहते हैं कि जब यह खयाल ही न रह जाए कि अब मिर उठाना भी है।

झुका दिया, उसको उठाना क्या ! मिटा दिया, उसे बापस सम्भालना क्या !

‘इबादत और बकदरे होश तौहीने इबादत है ।’

और होश क्या बचाना ! जब डूबे तो डूबे ! होणियारी से कहीं कोई डूबता है ? हिसाब रख के कहीं कोई प्रेम मे गया है ? गणित को तो छोड़ जाना पड़ता है पीछे । नर्क के तो पार जाना होता है । बुद्धि तो बेईमानी है, चालाकी है । बुद्धि तो कुशलता है, गणित है । प्रेम इस तरह के गणित को स्वीकार नहीं करता । फिर भक्ति की तो बात ही क्या ।

प्रेम मे भी गणित टूटने लगता है । प्रेम मे भी दा और दो चार नहीं होते सदा, कभी पाँच हा जाते हैं, कभी तीन ही रह जाते हैं । प्रेम में हिसाब-किताब की दुनिया डावांटील हो जाती है ।

भक्ति ता आखिरी शराब है, फिर उसके आगे और कोई नशा नहीं ।

‘वह मिजदा बया, रहे एहमाम जिसमे सिर उठाने का ।’

‘इबादत और बकदरे होश’ प्रार्थना और वह भी होश के साथ । – तो भले आदमी, प्रार्थना करने ही क्यों गये ? दुकान ही चलाते । वही तुम्हारी पात्रता थी । जब प्रार्थना करने गये तो फिर क्या होश, क्या हिसाब ?

‘इबादत और बकदरे होश तौहीने इबादत है ।’ फिर तो तुम प्रार्थना की बेइजती कर रह हो, तौहीन कर रह हो ।

सुना है मैने, एक फकीर दीवाना हो गया । घर के लाग समझे नहीं । मित्र, प्रियजन पहचाने नहीं । यह बीमारी न थी । यह, जो आदमियों की साधारण बीमारी है, उसमे मुक्त हो जाना था । लेकिन, साधारण बीमारी को हम स्वास्थ्य भगवन्ते हैं । उन्होंने वैद्य को बुला लिया । वैद्य ने उसकी नब्ज की जाँच की । ता कहने हैं, उस फकीर ने कहा

‘चारागर ! मस्त की दुनिया है जमाने से ज़ुदा ।

होश में आ कि जहाँ हम हैं वहाँ होश नहीं । । ।

‘होश में आ कि जहाँ हम हैं वहाँ हाश नहीं । । ।

कहा ‘वैद्य, मस्तों की दुनिया और ही दुनिया है । यह तू क्या कर रहा है ? होश में आ ! क्या नब्ज पकड़ रहा है ?’

मस्तों की एक और ही दुनिया है । दीवाने कुछ और ही आयाम मे जीते हैं । उसे हम समझे कि वह आयाम वया है ।

तुम कहाँ जीते हो ? तुम वहाँ जीते हो जहाँ गणित है, हिसाब है, साफ-मुथरी रेखाएँ हैं । तुम ऐसे जीते हो जैसे कोई बगीचा बना लेता है, साफ-मुथरा ! भक्त ऐसे जीता है जैसे कोई जगल में जीता है । कुछ साफ-मुथरा नहीं है, आदमी के हाथ की कोई छाप नहीं है, सिर्फ परमात्मा के हस्ताक्षर है । वह किसी नियम से

नहीं जीता । क्योंकि जिसने प्रेम को पा लिया उसके लिए कोई नियम लागू नहीं होते, ज्ञानरत नहीं रह जाती ।

सत अगस्तीन को कोई पूछता था कि मुझे एक ही नियम बता दो । बहुत नियमों की बात मुझसे भत करो, मैं नासमझ हूँ । बहुत आजाएं मुझे भत दो, क्योंकि मैं भूल ही जाऊँगा । तुम मुझे एक ही सार की बात बता दो । मैं शास्त्रों को नहीं जानता हूँ ।

आदमी बड़ा अनूठा था । क्योंकि अपने अज्ञान को स्वीकार करने से बड़ी घटना इस जगत में और नहीं । मैं अज्ञानी हूँ, उसने कहा, मुझे तुम साधारण-सा सूत्र दे दो, जो मैं पान लूँ, जो मुझे भूले न ।

तो, अगस्तीन ने बहुत सोचा । अगस्तीन बोलने में कुशल आदमी था, लेकिन इस आदमी के सामने उसका बोलना खो गया । उसने बहुत सोचा । उसने कहा, 'फिर तुम एक काम करो । प्रेम, बम इनना ही याद रखो, किर शेष सब अपने से हो जाएंगा ।'

तुम प्रेम करो – सब नियम पूरे हो जाते हैं । और तुम सब नियम पूरे करो और प्रेम को छाड़ दा, तो तुम सिर्फ धोखे में हो । बिना प्रेम के कोई नियम पूरा नहीं होता । बिना प्रेम के सारी नीति अनीति है और सारा आचरण सिर्फ दुराचरण को उत्पाने की व्यवस्था है ।

प्रेम के अतिरिक्त कोई आचरण नहीं । और जिसने प्रेम को पा लिया, उसके लिए आचरण के कोई नियम नहीं, कोई अनुशासन नहीं, उसने परम अनुशासन पा लिया ।

'उम भक्ति को जान कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है ।'

यह वर्णन है, यह व्याख्या है, परिभाषा नहीं । उस भक्ति के सम्बंध में कुछ खबरें दे रहे हैं ।

'उन्मत्त हो जाता है ।'

तुमने पागल को देखा है । पागल भी नियम छोड़ देता है, लोक-लाज छोड़ देता है, कुल-मर्यादा छोड़ देता है । पागल से हम आशा भी नहीं रखते । पागल और भक्त में थोड़ी-सी समानता है – थोड़ी-सी । अन्तर बड़ा है, थोड़ी-सी समानता है । पागल सामान्य जीवन से नीचे गिर जाता है, भक्त ऊपर उठ जाता है । दोनों सामान्य जीवन के पार हो जाते हैं – एक नीचे गिर के, दूसरा ऊपर उठ के । पार होने की समानता है ।

इसलिए यह सूत्र है कि ध्यान रखना भक्ति की पहचान उन्मत्तता है । हमने चैतन्य को नाचते देखा है । घर के लोग परेशान थे पागल हो गया । मीरा को हमने नाचते देखा है सड़को पर । घर के लोग, प्रियजन, परिवार के लोग – और

मीरा शाही खानदान से थी – बड़े दुखी थे । मार डालने की भी चेष्टा की, क्योंकि यह बदनामी का कारण थी । यह राजधाने की महिला और राजस्थान में, जहाँ धूंधट के बाहर आना ही मन्मव न था, रास्तों पे नाचने लगी लोक-लाज खो कर । मत्र मर्यादा, कुल-मर्यादा भूली । . पर मीरा पागल हो गयी है ।

कहते हैं, मीरा एक मंदिर मे गयी । उस मंदिर मे रिवाज था कि कोई स्त्री प्रवेश न कर सकेगी ।

बहुत-से मंदिर स्त्रियों के लिए बद रहे डरोंको ने बनाये होगे, कायरो ने नवाये होगे, व्यभिचारियों ने बनाये होगे ।

उस मंदिर का जो पुजारी था, वह बाल-बहाचारी था । और दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी । ख्याति उसकी यही थी कि स्त्रियों को वह देखता भी नहीं, मंदिर से बाहर निकलना नहीं । मीरा उम द्वार पे पहुँच गयी । कृष्ण का मंदिर था, वह नाचने लगी । वह भीतर प्रवेश करने लगी । उसे रोका गया । पुजारी घबड़ाया हुआ आया । उसने कहा कि सुनो, यहाँ स्त्रियों का प्रवेश नहीं है ।

मीरा ने गौर से उस पुजारी को देखा और उसने कहा, 'मैंने तो साचा था कि एक ही पुरुष है । तो दो हैं पुरुष ? तुम भी एक पुरुष हो ? मैंने तो कृष्ण को ही जाना कि एक पुरुष है, बाकी ता सब प्रकृति है । पुरुष तो एक ही है, बाकी तो सब गोपियाँ हैं । और कृष्ण के मंदिर मे इनने दिन रह के तुम क्या करते रहे ? अभी भी तुम पुरुष हो ? तुम्हे मेरी 'स्त्री' दिखायी पड़नी है, लेकिन मुझे तुम्हारा 'पुरुष' दिखायी नहीं पड़ता । रास्ता दो ।'

उस दिन जैसे किसी न नीद से जगाया उस पुजारी को । रास्ता दे दिया । आँखें आँमुओं से भर गयी, पश्चाताप से भर गयी । यह अब तक का समय व्यर्थ गंवाया । किसको रोक रहा था ?

अब मीरा क्या लोक-लाज रखे, उसे कोई पुरुष दिखायी न नहीं पड़ता । तो धूंधट मरक गया है, कपड़ों का हिसाब नहीं रहा है, रास्तों पे नाच रही है ।

भक्त उन्मत्त हो जाता है – होगा ही ।

ऐसा समझो कि छोटी प्यानी मे सागर समा जाए तो प्यानी पागल न होगी तो और क्या होगी ? बूँद मे सागर उतर आये तो बूँद कहाँ हिसाब रख पाएगी, और बूँदों की दुनिया के नियम कैसे बचेगे ? फिर तो सागर की उन्मत्ता होगी । फिर ना सागर की उन्मत्त लहरे होगी । फिर बूँद चीखे-चिल्लाये और कहे कि मेरे ता नियम और व्यवस्था थी, वह सब दूरी जा रही है । वह दूरेगी ही ।

जब भक्त के जीवन में परमात्मा उतरता है, जब भक्त जगह देता है, द्वार देता है, हटना है मार्ग मे और परमात्मा को उतरने देता है, तब एक आधी आती है, तब एक नूफान उठता है, फिर जो कभी जाता नहीं । फिर भक्त किसी

और ही जगत मे जीता है । फिर जीता नहीं अपनी तरफ से, परमात्मा ही उसमे जीता है ।

‘मुहब्बत मे गिरां पा हो न इतना खीफे-रहजन से ।
जो इस रस्ते में लुट जाएं बड़ी तकदीर वाले हैं ।’

लुटेरो मे घबड़ाओ मत प्रेम के मार्ग पर – लुटेरे सहयोगी हैं ।

‘जो इस रस्ते में लुट जाएं बड़ी तकदीर वाले हैं ।’

‘हम उसे देखा किये जब तक हमें गफलत रही ।

पड़ गया आँखों पे परदा होश आ जाने के बाद ।

‘हम उसे देखा किये जब तक हमें गफलत रही’ – जब तक हम बेहोश रहे, तब तक उसे देखा किये ।

‘पड़ गया आँखों पे परदा होश आ जाने के बाद –’ और जैसे ही होश आया, गणित की दुनिया वापस लौटी, आँखें पे परदा पड़ गया ।

उन्मत्तता पहला लक्षण है ।

‘भक्त स्तब्ध हो जाता है ।’ अवाक् ! ठिक जाता है । अब तक जो गति थी, सब रुक जाती है । अब तक जो जाना था, सब व्यर्थ हो जाता है । अब तक जिसको जीवन पहचाना था, तो वह अचानक मृत्यु जैसा हो जाता है । अब तक जो था, सब गिर जाता है, विश्वर जाता है, जैसे ताश के पत्तों का घर बनाया था, या जैसे कागज की नाव मे मागर के पार जाने की आकांक्षा संजोयी थी । सब ठिक जाता है, सब गिर जाता है । अवाक् ! श्वास भी जैसे रुक जाए । चुप हो जाता है । बोल खो जाता है । बोली बद हो जाती है । समय लगता है वापस बोली की दुनिया को लौटने में । वापस बोलने की योग्यता जुटाने मे समय लगता है ।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, सात दिन तक चुप बैठे रहे, सात दिन तक अवाक् ! सब ठहर गया, ठिक गया । देव घबड़ा गये । देवताओं मे परेशानी हो गयी कि कहीं बुद्ध चुप ही न रह जाएँ । जब भी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तभी यह सम्भावना है कि कहीं वह चुप ही न रह जाए, क्योंकि घटना इतनी बड़ी है । कहीं बोल सदा के लिए न खो जाए, कहीं स्तब्धता उसकी जीवन की व्यवस्था न बन जाए । तो कहते हैं, इहां और देवता बुद्ध के चरणों मे आये, प्रार्थना की कि आप बोलें । आप कुछ भी बोलें । और रुकना खतरनाक है ।

सदियों तक हम प्रनीक्षा करते हैं कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध हो तो खबर लाये उस लोक की । देवता भी तरसते हैं, आदमी ही नहीं ।

‘अल्लाह ! अल्लाह ! मजरे बर्के जमाल

देखती है आँख, लब खामोश है ।’

आँख तो देखती है, ओठ चुप हो जाते हैं। आँख तो पहचानती है, ओठ बोल नहीं सकते हैं।

‘है ऐसी ही बात जो चुप हैं
वर्ना क्या बात कहनी नहीं आती।’
स्तब्धता।
इसे थोड़ा समझें।

योगी मौन साधता है, भक्त को मौन आता है। योगी स्तब्ध होने की चेष्टा करता है, भक्त के ऊपर स्तब्धता बरसती है। योगी को जो चेष्टा से मिलता है, भक्त को निश्चेष्ट प्रसादरूप मिलता है। योगी जो उपाय कर-करके पाता है, भक्त सिर्फ़ प्रेम में अपने को खो के पा लेता है।

‘जिस भक्ति को जान कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध, शात हो जाता है, और आत्माराम हो जाता है।’

आत्माराम शब्द समझने जैसा है।

अब राम और आत्मा मेरे फासला नहीं रह जाता, इसलिए एक शब्द बनाया आत्माराम। अब यह कहना ठीक नहीं कि आत्मा है, अब यह कहना ठीक नहीं कि राम है, अब कुछ ऐसा है जिसमें दोनों हैं और दोनों अलग नहीं हैं, जुदा नहीं है – आत्माराम।

‘उनसे मिल कर मैं उन्हीं में खा गया
और जो कुछ है, वह आगे राज है।’
उसके आगे फिर कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर वह रहस्य की बात है, राज है।
‘वाक्या यह दोनों आलम मेरे रहेगा यादगार
जिदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद।’
दोनों लोकों मेरे यह बात याद रहेगी।

‘वाक्या यह दोनों आलम मेरे रहेगा यादगार
जिदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद।’
जिन्होंने भी पायी जिदगी, मर के ही पायी। जो मरने से डरते रहे, वे चूकते ही चले गये।

दो तरह की मौत हैं एक जो अपने से आती है और एक जो तुम स्वीकार कर लेते हो, जो तुम बुला लेते हो। मौत तो अपने से बहुत बार आयी है और तुम मरे हो, फिर-फिर पैदा हुए हो, जिस दिन तुम मौत को अपने हाथ से स्वीकार कर लोगे, स्वेच्छया, उसी दिन मृत्यु समाधि बन जाती है।

जीसस ने कहा है ‘बचाओगे अपने को, मिटा जाओगे। मिटा दो – बचाने का बस एक ही उपाय है।’

‘जिदगानी मैंने हासिल की है मर जाने के बाद ।’

जैसे ही तुम मिटे कि परमात्मा हुआ ।

मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि हम परमात्मा को कैसे खोजे । मैं कहता हूँ ‘तुम कृपा करके मत खोजना, नहीं तो परमात्मा बचता ही चला जाएगा । तुम जहाँ-जहाँ जाओगे, उसे न पाओगे । क्योंकि तुम्हारी मौजूदगी ही तुम्हारी आख पे परदा है । परमात्मा नहीं छिपा है । यह तो बात ही मत पूछो कि परमात्मा को कहाँ खोजे । इतना ही पूछो कि मेरी आख पे परदा क्या है कि जो है और दिखायी नहीं पड़ता है । तुम छुपे हो अपने ही परदे मे, अपनी ही आड मे । परमात्मा कही खो नहीं गया है । परमात्मा खो नहीं सकता ।

(एक छोटे स्कूल मे एक शिक्षक ने बच्चों से पूछा, ‘हाथी कहाँ पाये जाते हैं?’ एक छोटी लड़की ने खडे हो के कहा ‘हाथी, पहली बात, खोते ही नहीं । इतने बडे होते हैं, तो खोएँगे कहाँ? पाने का सवाल नहीं है।’

परमात्मा कैसे खो जाएगा? वही सब कुछ है । उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं । तुमने कैसे खोया है – यह पूछो । यह मन पूछो कि परमात्मा कैसे खो गया है ।

‘तजाहून से मेरे नामोनिशा के पूछने वाले

वही रहना हूँ मैं अब तक जहाँ ढूँढा नहीं तूने ।’

अपने भीतर भर हम नहीं ढूँढते । क्योंकि अपने भीतर ढूँढ़ने का एक ही उपाय है अहकार मर तो तुम अपने भीतर जाओ । अहकार द्वार पे खडा है, अटकाता है । वह तम्हे भीतर नहीं जाने देता । अहकार की पर्ति पिघले तो तुम अपने भीतर जाओ । ‘मैं’ मिटे तो तुम जानो कि तुम कौन हो ।

‘वही रहता हूँ मैं अब तक जहाँ ढूँढा नहीं तूने ।’

जैसे ही तुम छोड़ते हो ‘मैं’, छोड़ते हो ‘तू’, ‘मैं-तू’ का जाल और मैं-तू’ का भेद मिटता है – एक अभेद की रीशनी, एक अभेद का प्रकाश, जहाँ न कोई सीमा है, न जहाँ कोई अलग-अलग है, जहाँ एक का ही विस्तार है ।

हम लहरे हैं उस सागर की । थोड़ा भीतर झाँकें, सागर हमारे भीतर है । हर लहर के भीतर सागर है । लेकिन लहरें बडे अहकार पे चढ़ गयी हैं । उन्हें यह बात ही समझ मे नहीं आती कि अपने भीतर झाँकने से उसका पता चल सकता है, जिससे हम पैदा हुए हैं और जिसमे हम खो जाएँगे ।

भक्ति मृत्यु की कला है । भक्ति परमात्मा को खोजने की कला नहीं है, अपने को खोने की कला है । खोजने में तो अहकार बना ही रहता है, खोजने वाला बना रहता है । खोना है अपने को । और जिसने अपने को खोया उसने उसे पाया । अपने

मुझे फिर दोहराने दें । भक्ति परमात्मा को खोजने की कला नहीं, अपने को खोने की कला है । खोजने में तो अहकार बना ही रहता है, खोजने वाला बना रहता है । खोना है अपने को । और जिसने अपने को खोया उसने उसे पाया । अपने

भीतर ही नहीं किर, फिर सब तरफ वही मालूम पड़ता हे। किर हर पत्ती में उसी की हरियाली हे। हर हवा के ओके मे उसी की ताजगी हे। चाँदनारों मे वही तुम्हारी तरफ झाँकता हे। और तुम्हारे भीतर भी वही चाँदनारों की तरफ झाँकता हे।

एक बार परदा हट -

' सुबह फूटी तो जासमा पे तेरे

रगे रुहसार की फुहार गिरी ।

रात छायी तो रु-ए आलम पर

तेरी ज़ल्को की आबशार गिरी ।'

उसी की जुन्फे हैं रात, ढाँक लेती है गहरे अँधेरे मे तुम्ह। उसी का रग-रूप है। उसी की बहार ह। उसी के गीत है। उसी की हरियाली है। उसी का जन्म है, उसी की मृत्यु है। तुमने व्यर्थ ही अपने को बीच मे खड़ा कर लिया है।

अपने को बीच मे खड़ा करने के हारण परमात्मा खा गया है। और परमात्मा को तुम जब न जान लो, तब तक तुम अपनी ऊँचाई और अपनी गहराई से बचित रहोगे।

परमात्मा यानी तुम्हारी आखिरी ऊँचाई। परमात्मा यानी तुम्हारी आखिरी गहराई। जब तक तुम उसे न जान लो, तब तक तुम अपनी ही ऊँचाई और गहराई से बचित रहोगे।

उस मनुष्य से ज्यादा दर्शन और कोई भी नहीं जिस मनुष्य के जीवन से परमात्मा का भाव खा गया, जिसके जीवन मे परमात्मा की नरक उठने की आकँक्षा खो गयी है। जो आदमी होने से तृप्त हो गया, उम आदमा मे दर्शन और कोई भी नहीं।

नीत्से ने कहा है अभागे होगे व दिन जब आदमी की प्रत्यक्षा पर परमात्मा की तरफ जाने का तीर न चढ़ेगा।

पर वहुत-से ऐसे लोग हैं जिनकी प्रत्यक्षा पर परमात्मा की तरफ जाने वाला तीर कर्ता भी नहीं चढ़ना। तब वे छिछले रह जाते हैं। नब वे उयले रह जाते हैं। नब उन्ह पना नहीं चल पाता कि जा गहराई विलकुल उनक ही पैरा के नीचे छिपी थी, और सदा उपलब्ध थी, बस जग दूबने की बात था, और जो ऊँचाई सदा उनके ही सिर पर थी, आममा की तरह फैनी थी, जरा आँखे ऊपर उठाने की बात थी - वे भून ही जाते हैं।

आदमी ही हो जाने से तृप्त मन हा जाना। उससे बड़ा काई दुर्भाग्य नहीं है।

' ख्याल जिसमे है, पर तब जमाल का तेर

उस एक ख्याल की रफ़अत किसी को क्या मानूष !'

और जिसके हृदय मे तेरे सौदर्य का एक छोटा-सा ख्याल भी है, परमात्मा के अनन्त सौदर्य का योड़ा-सा ख्याल भी है ।

‘ ख्याल जिसमे है पर नब जमाल का तेरे

उस एक ख्याल की रक्फ़त किसी को क्या मालूम ।’

उस एक छोटे-से विचार की गहराई किसी को क्या मालूम ।

परमात्मा के ख्याल की गहराई और ऊँचाई – वही तुम्हारा विस्तार है, वही तुम्हारा विकास है ।

इस सदी की सबसे बड़ी नकलीफ़ यही है कि उसके साँदर्य का बोध खो गया है । और हम लाख उपाय करते हैं सिद्ध करने के कि वह नहीं है । और हमे पता नहीं कि जिनना हम सिद्ध कर लेते हैं कि वह नहीं है, उतना ही हम अपनों ही ऊँचाइयों और गहराइयों से वर्चित हुए जा रहे हैं ।

परमात्मा को भुलाने का अर्थ अपने को भूलाना है । परमात्मा को भूल जाने का अर्थ अपने को भटका लेना है । फिर दिशा खो जाती है । फिर तुम कहीं पहुँचते मालूम नहीं पढ़ते । फिर तुम कोत्ह के बैल हो जाते हो, चक्कर लगाते रहते हो ।

आँखें खोलो । योड़ा हृदय को अपने मे ऊपर जाने की सुविधा दो । काम को प्रेम बनाओ । प्रेम को भक्ति बनाने दो ।

परमात्मा से पहले तुप्त होना ही मत् ।

योड़ा होगी बहुत । विरह हागा बहुत । बहुत आमू पड़ेगे मार्ग मे । पर घबड़ाना मन । क्योंकि जा मिलने वाला है उसका कोई भी मूल्य नहीं है । हम कुछ भी कर, जिस दिन मिलेगा उस दिन हम जानेगे, जो हमने किया था वह ना-कुछ था ।

(तुम्हारे एक-एक आँसू पर हृजार-हजार फूल खिलेगे । और तुम्हारी एक-एक योड़ा हृजार-हजार मदिरों का द्वार बन जाएगी । घबड़ाना मन । जहाँ भक्तों के पेर पड़े, वहाँ काबा बन जाते हैं ।)

आज इनना ही ।

दूसरा प्रवचन

दिनांक १२ जनवरी, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पुना

स्थय को मिटाने की कला है भक्ति

पहला प्रश्न 'अथातो', 'अब' का मोड-बिन्दु तुम सामान्य सासारिक जनी के जीवन में कब आ पाना है? कृपा कर समझाएँ।

पहली बात कि सामान्य कोई भी नहीं है। यदि तुम सामान्य होने तो फिर 'अथातो' का बिन्दु कभी भी न आ पाता।

सामान्य कोई भी नहीं है, क्योंकि परमात्मा छिपा बैठा है। और परमात्मा से ज्यादा असामान्य क्या होगा?

असाधारण हो तुम। तुमने समझा होगा, ककड़-पत्थर हो। ककड़-पत्थर तुम नहीं हो। ककड़-पत्थर हैं ही नहीं अस्तित्व में। अस्तित्व केवल हीरों से बना है।

इसनिंवा पहली ता इस भ्राति को अपने मन में जगह मत देना कि तुम सामान्य हो। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि अहकार का आरोपित करना। मैं यह नहो कह रहा हूँ कि अपने को दूसरा में असामान्य समझना। मैं यह कह रहा हूँ कि असामान्य हाना जगत का स्वभाव है। तुम असामान्य हो, ऐसा नहीं, यहाँ सभी गुण असामान्य हैं। यहाँ सामान्य होने की सुविधा ही नहीं है।

और इस विराधाभास को ठीक में समझना क्योंकि तुमने अपने का सामान्य समझ रखा है, इसनि! तुम असामान्य होने की बड़ी चेष्टा करने हो - पन से, पद से, प्रतिष्ठा से।

अहकार की खोज ही यही है कि मान ना लिया है तुमने कि तुम सामान्य हो - और सामान्य होने में पीड़ा होनी है, चुभता है कॉटा मन राजी नहीं होता - तो तुम असामान्य होने का होग करने हो, जबकि मजा यह है कि तुम असामान्य हो, इसके छोंग की कोई भी ज़रूरत नहीं। इसलिंग जिन्होंने यह जान लिया कि असामान्य है, वे तो अहकार को छोड़ ही देने हैं तत्क्षण। अब ज़रूरत ही न रही।

ऐसा समझो कि हीरा है, और हीरे ने समझ रखा है कि ककड़-पत्थर है ककड़-पत्थर समझ रखा है, इसलिए अपने को सजाता है कि हीरा दिखायी पड़े। ककड़-पत्थर होने को कौन राजी! है तो हीरा अपने को ककड़-पत्थर मान के सजाता है, रग-रोगन करता है कि कोई जान न से कि मैं ककड़-पत्थर हूँ। लेकिन

जिस दिन यह पहचान पाएगा कि मैं होगा था ही, उसी दिन ककड़ होने की आति भी मिट जाएगी और स्वयं को सजाने की आकॉक्शा भी मिट जाएगी। वह ककड़-पत्थर की आति की ही छाया थी। उस दिन विनश्रना का जन्म होता है।

जिस दिन तुम जानते हो कि तुम असामान्य हो, उसी दिन असामान्य होने की दौड़ मिट जाती है, जिस दिन तुम जान लेने हो कि तुम असाधारण हो ... क्योंकि अन्यथा होने का उपाय नहीं।

परमात्मा के हस्ताक्षर हैं तुम पर ।

रोएँ-रोएँ पर उसका गीत निखा है ।

रोएँ-रोएँ पर उसके हाथों के चिह्न हैं ।

क्योंकि उसने ही तुम्हें बनाया है ।

वही तुम्हारी धड़तनी में है ।

वही तुम्हारी श्रास में है ।

सामान्य तुम नहीं हो। अगर गामान्य होते ना तुम का फिर काई उपाय नहीं। फिर 'अथातो' का बिन्दु कभी आएगा ही नहीं। अगर तुम सामान्य ही होते तो कैसे परमात्मा की ज्योति तुममें प्रज्वलित होगी? तब कैसे तुम जागीगे और कैसे तुम बुद्ध बनोगे? अमम्भव है फिर।

नहीं, तुम बन पाने हो बुद्ध, तुम जागते हो, तुम समाप्तिस्थ हो पाते हो — (क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है)। जब तुम नहीं जानते थे तब भी तुम वही थे। ज्ञानने-भर का फर्क पड़ना है, अस्तित्व तो सदा एकरम है। काई जान लेता है, कोई बिना जाने जिये जाता है। ज्ञान और अज्ञान का ही भेद है। अस्तित्व में जरा भी भेद नहीं है। तुममें और बुद्ध में रत्ती-भर भेद नहीं है, जड़ा तक अस्तित्व का सम्बद्ध है। लेकिन बुद्धने लौट के अपने को देख लिया, तुमने लौट के अपने को नहीं देखा। तुम भिखारी बने हो, बुद्ध सम्राट हो गये हैं।

जिसने अपने का लौट के देख लिया, वह सम्राट ना गया। सम्राट तो सभी थे कुछ को याद आ गयी, खबर आ गयी, सुरग मिल गया, कुछ को खबर ही न मिली, कुछ मिखारी ही बने हुए सम्राट बनने की चेष्टा में लगे रहे।

तुम जा बनने की चेष्टा कर रहे हो, वह तुम हो। यही तो सदेश है सारे धर्म का।

तुम जिसे खोज रहे हो उसे तुमने कभी खोया नहीं, केवल विस्मरण किया है।

इस पूरे अस्तित्व में मैंने अब तक कोई ऐसी चीज़ नहीं देखी जो सामान्य हो। धास का पना भी उसी के रगों से लबालब भरा है। ककड़-पत्थरों में भी वही सोया है। जागने वालों में वही जागता है, सोने वालों में वही सोता है। बुद्धिमानों में वही बुद्धिमान है, अज्ञानियों में वही अज्ञानी है।

इसलिए सामान्य होने का तो कोई उपाय नहीं है। जग गौर से किसी की भी आँखों में झाँकना, या दर्पण के सामने खड़े हो कर अपनी ही आँखों में झाँकना — और तुम पाओगे कि कोई और आँक रहा है तुम्हारे भीतर में।

तुम तुमसे ज्यादा हा। तुम तुम पर ही समात नहीं। तुम तो केवल मीमा हा तुम्हारा अस्तित्व की। अभी गहरे तुम गये ही नहीं, डुबकी लगायी ही नहीं।

इसलिए पहली बात — सामान्य मानने की भाक्ति में मत पड़ जाना। इसलिए तो उपनिषद कहते हैं ‘तत्त्वमसि श्वेतकेतुं’ तू वही है श्वेतकेतुं।

जिन्होने जाना, वे घोषणा करते हैं ‘अह व्रह्माभ्यम्’ मैं वही हूँ। मैं ब्रह्म हूँ।’

ये उद्धारणाएँ अहकार की नहीं हैं। ये उद्धारणाएँ स्वभाव की हैं। ऐसा है। ऐसा तथ्य है। इसे बुड़नाते का कोई उपाय नहीं है। इसे तुम कितना ही भुलाओ, एक-न-एक दिन तुम्हे लौट कर अपने घर आ ही जाना पड़ेगा।

तो, यह तो पहली बात — सामान्य मत मान लेना। क्याकि जो तुम मान लिये कि सामान्य हो तो खोज बद हो गयी। तुमने स्वीकार कर लिया कि तुम मात्र मनुष्य हो, कुछ और ज्यादा नहीं, तो और ज्यादा होने का द्वार बद हो गया, सभावना अवरुद्ध हो गयी।

गगोत्री पर गगा कितनी दीन हीन है। कितनी क्षीणकाय है। बस जगभी धार है। गोमुख से गिर जाती है। अगर गगोत्री पर ही अपने को मान ले दि बस यही हूँ, तो कभी की मन्त्र जाएगी, कभी भी खो जाएगी किन्तु भी रेगिस्तानों म। लेकिन गगोत्री पर जा छोटी-सी गगा है, बढ़ती जाती है, बढ़ी होती जाती है, सागर में मिलती है तो सागर हो जाती है।

तुम अभी गगोत्री पर हो सकते हो, लेकिन हो गगा ही। सागर अभी दूर हो तेमा तुम्हारी नामझी में दिखायी पड़ता है। और जब मैं तुमसे आँकता हूँ तो तुम्हारे भविष्य को भी तुम्हारे पीछे ही खड़ा हुआ पाना हूँ। जब मैं तुमसे झाँकता हूँ तो तुम्हारे बीज में मैं उन फूलों को खिलने हुए देखता हूँ जिनको तुम कभी खिलते हुए देखोगे।

मेरे लिए तुम परमात्मा हो, उमसे कम कोई भी नहीं। उमसे कम कोई हो ही नहीं सकता। इसलिए सामान्य की भाति में मत पड़ जाना।

द्वासरी बात

‘अथातो’ का बिन्दु, ‘अब’ का क्राति-बिन्दु, तभी आता है जब तुम जीवन के दुख और पीड़ा को सजग हो के भागने सकते हो।

अभी भी तुमने बहुत पीड़ा भोगी है, लेकिन सोये-सोये। पीड़ा तो भागी है,

लेकिन इस आशा में कि शायद सुख मिल जाएगा, शायद सुख आता ही होगा । आज दुखी हों, काई चिता नहीं । किसी तरह बिता लो आज को, बस जरा-सी समय की बात है, कल मब ठीक हो जाएगा । थोड़ी ही देर की पीड़ा है, कल सब ठीक हो जाएगा । ऐसी आशा में तुम जिये हो । उसी आशा में छिप के तुम्हारी पीड़ा का दर्शन तुम्हे नहीं हो पाया । तुमने उसे आट में छिपा रखा है ।

इन परदों को हटाओ ।

न कोई कल है, न कोई कल कभी आएगा – बस, आज है, अभी और यही । कल के लिए मत बैठ रहो ।

यह 'कल' आज को मुनाने की तरकीब है ।

फिर 'कल' के बहुत रूप है ।

धन इकट्ठा करनेवाला अभी तो जीवन को गेवाता है, साचना है 'कल जब धन इकट्ठा हो जाएगा नब भोग लूंगा मारे सुख ।'

यश की आकाशा में दौड़ने वाला सोचता है 'अभी कैसे ? अभी तो दाँव पर नगाना है सब । जब यश मिल जाएगा भोग लूंगा ।'

वह यश कभी नहीं मिनता । कोई भिकन्दर कभी जोत नहीं पाता । यश की दौड़ प्रधारी रह जाती है । जन कभी इतना नहीं हो पाता कि तुम्हारी गरीबी का मिटा दे । इतना हो ही नहीं पाता । ऐसा कमा हो ही नहीं सकता कि धन इतना हो जाए कि तुम्हारी गरीबी मिट जाए । क्योंकि गरीबी एक दृष्टिकाण है, धन से उमर मिटने का काई मत्राल नहीं, काई सम्बन्ध नहीं । जितना धन होगा, उतने हां तुम आगे की आकाशा, आशा में भर जाओगे ।

तुम्हारी आशा सदा छलांग लगती है – तुमसे आगे । वह हमेशा कल पर खड़ी रहती है । तुम यहा, तुम्हारी आशा सदा कर है । नाख होना है तो दम लाख मागती है । इस लाख होने हैं तो करोड़ मांगती है । करोड होने हैं तो दम करोड मांगती है । वह सदा तुमसे आगे छलांग लगा लेती है । तुम उसे कभी भी न पकड़ पाजोगे । उसे पकड़ने का काई उपाय नहीं । लेकिन तुम आज को गँवा दोगे । अभी नाया का तो कभी तुम पूरा न कर पाआगे, लेकिन आज को गँवा दोगे, जो कि अस्तिन्त्र का सार है ।

पीड़ा है तो पीड़ा को देखो । पीड़ा का भोगो, कल से झुठलाओ मन । समझाओ मत । कल के नाम की शामक दवाए ने के मो जाआ मत । आज जागो । पीड़ा है तो पीड़ा सही । भोगो उस । काँटा है तो चुभने दो । क्योंकि वही चुभन तुम्हे जगाएगी । उसी पीड़ा से तुम उठोगे । उसी पीड़ा में तुम देखोगे कि तुम्हारा जीवन कुछ गलत ढाँचे पे दौड़ता है । अब तक तुमने जो भी किया है, कहीं बुनियादी भूल हो गयी है । तुमने अब तक जो भी किया है, परमात्मा को छोड़ कर किया

है, बाद दे कर किया है।) अब तक तुमने जो भी किया है, उसमें परमात्मा की कोई जगह नहीं है।

कहते हैं, गैलिलिओ ने सृष्टि-शास्त्र पर एक किनाब लिखी, और अपने एक मित्र को दिखाने ले गया। मित्र आस्तिक था। उसने पूरी किनाब देख ली, उसमें ईश्वर का कहीं उल्लेख ही न था। सृष्टि-शास्त्र, और सूर्य का कोई उल्लेख न था। वैज्ञानिक करते हीं नहीं उल्लेख। उसकी कोई जरूरत नहीं मालूम होती।

मित्र ने पूछा, 'और मब ठीक है, व्यवस्थित है, तर्कबद्ध है, समझ में आता है, लेकिन जग खानी जगह मालूम पड़ती है। ईश्वर का कोई उल्लेख ही नहीं, एक बार भी नहीं। इनकार वरने के लिए भी नहीं कि कह देते कि ईश्वर नहीं है। इतना भी नहीं। ईश्वर के बिना सृष्टि थोड़ी अधूरी मालूम पड़ती है।'

गैलिलिओ ने कहा, 'नहीं, उसकी कोई जरूरत ही नहीं। क्योंकि उसके बिना ही में मब समझा दिया है। उस हाइपोथेसिस की, ईश्वर की परिकल्पना का मुझे कोई प्रयाजन नहीं है।' काई चीज़ पूछ नो मुझमें, अगर अनसमझायी रह गयी हो।'

गैलिलिओ ने जैसे सृष्टि शास्त्र की रचना की, ऐसे ही तुमने अपने जीवन को बनाया है, उसमें ईश्वर के लिए कोई जगह नहीं। उसी खानी जगह में पीड़ा का जन्म होता है। परमात्मा का जो मदिर है, आर खानी रहा तो वही से पीड़ा का आविर्भाव होता है।

इस योड़ा समझने की कोशिश करना।

पीड़ा नव नक रहेगा जब तक तुम्हारे जीवन में परमात्मा की ज्योति जलती नहीं। पीड़ा परमात्मा का अभाव है। जहाँ परमात्मा होना चाहिए और नहीं है, वही पीड़ा है।

तो, कर तुम्हारे जीवन में 'अशाना' की कानि आएगी? कब तुम नहोगे, 'अब भवित की खोज'?

तुम कहोगे तभी जब तुम पाओगे कि अब तक जीवन की जा सार-मन्दा समझी थी, वह सिवाय पीड़ा के निचोड़ के और कुछ भी नहीं। जिसे तुमने प्रेम जाना, वह प्रेम न था। जिसे तुमने धन जाना वह धन न था। जिसे तुमने 'स्वय' जाना वह 'स्वय' न था। तुम्हारा सारा आधार ही गलत है।

अहंकार को तुमने जाना 'स्वय'। वह तुम न थे। वह पहचान भात थी। बाहर के धन को तुमने जाना थन, वह थन न था। जो खा जाए वह धन है? मौत जिसे छीन ले वह धन है?

जानी तुम्हारी सम्पदा को विगदा कहने हैं, तुम्हारी भूम्पति को विपत्ति कहते हैं।

सम्पत्ति तो वही है जो मौत भी न छीन पाये। सम्पन्नि तो वही है जो कोई

भी न छीत पाये, जिसकी चोरी न हो सके, जिसे लुटेरे न ले सके । मौत जिसके सामने हार जाए वही सम्पत्ति है ।

तुमने सुना हागा मित्र तो वही है जो विपत्ति में काम आ जाए । वह सम्पत्ति की परिभाषा है । सम्पत्ति तो वही है जो विपत्ति में काम आ जाए । और मौत से बड़ी विपत्ति कहाँ है । वही कसीटी है । मौत के ढार से भी जो चली जाए, नाचनी हुई, वही सम्पत्ति है ।

जिसे तुमने धन समझा वह धन नहीं है, वह भीतर की निर्धनता को भूलाने का उपाय है ।

जिसे तुमने जहकार समझा वह तुम नहीं हो, वह अपने-आप को ढाँक लने की तरकीब है, रपने अज्ञान का झुठला नेने की तरकीब है ।

जिसका तुमने पद समझा वह तुम नहीं हो । जिसका तुमने पद समझा वह तुम्हे नृति न दगा तुम और जौर अनुप्त होने चों जागाग ।

पद तो कही है जहाँ विश्राम आ जाए । पद का अर्थ ही होता है जिस पे विश्राम आ जाए, जिस जगह बैठ के विश्राम आ जाए, राहन मिल, जिस जगह बैठ पर यात्रा समाप्त हो जाए, पैरों को चरने की अव और जहरन न रह जाए ।

जहाँ पद अनावश्यक हो जाएँ वही जगह पद है, वही पहुँच गये अब कोई ज़रूरत नहीं रहा जाने की ।

लेकिन ऐमा काद पद तुमने बाहर जाना है जहाँ पहुँच के जाने की यात्रा समाप्त हो जाएँ बाहर ऐसा कोई भी पद नहीं है । सारे समार को जीतने वाले सम्राट भी आकॉशा में वैसे ही विह्वन होते हैं जैसे मटक के किनारे पड़ा हुआ भिखारी । जरा भी मेद नहीं है ।

मैंने सुना है, जापान का एक सम्राट गत को घोड़े पर सवार हो कर अपनी राजधानी में चक्कर लगाना था रोज़ । अनेक बार उसने एक फकीर को देखा, अनेक बार । रात क किसी भी पट्टर में वह गया, उसने उसे सदा जागते हुए देखा, वृक्ष क नीचे कभी खड़ा, कभी बैठा, लेकिन सदा जागा हुआ ।

सम्राट की उन्मुक्ता बढ़ी कि वह मोता बगों नहीं । पूछा एक दिन, न रुक सका । पूछा कि उन्मुक्ता है, उन्चेत तो नहीं, क्योंकि तुम्हारा काम है, तुम जागो-सोओ मेरा बधा रेना-देना, लेकिन रोज़ यहाँ से निकलता हूँ तो मन मे जिज्ञासा धनी हानी चली गयी है क्यों जागते हो ?

तो उस फकीर ने कहा, 'कुछ सम्भाल रहा हूँ । कुछ मिन गया है, उसकी रक्षा कर रहा हूँ ।'

सम्राट ने चारों तरफ देखा फकीर के, वहा तो कुछ भी नहीं है, एक भिक्षा-पात्र पड़ा है टूटा-फूटा, कुछ चीथड़े कपड़े पड़े हैं । फकीर हँसने लगा, उसने कहा,

‘ वही मत देखो, मेरे भीतर देखो । जो मिला है वह भीतर है, वह खो न जाए । जागने में ही उसकी रक्षा है । सोने में उसका खो जाना है । मूर्च्छा में फिर भूल जाऊंगा । होश रखना है । ’

सम्राट ने कहा, ‘ मुझे तो कुछ दिखायी नहीं पड़ता । ’

सम्राट की अपनी भाषा है, जो बाहर है, वही उसकी भाषा है । फकीर की अपनी भाषा है, जो भीतर है, वही उसका जगत है । वे अलग यात्रा पर हैं ।

सम्राट ने कहा, ‘ तो किसी सम्पत्ति की रक्षा कर रह हौं ? तो फिर मुझमें और तुमसे फर्क क्या है ? ’

फकीर ने कहा, ‘ फर्क ज्यादा नहीं है, योड़ा ही है – फिर भी है । फर्क इतना है कि तुम बाहर से अमीर हो, मैं बाहर से गरीब हूँ, मैं भीतर से अमीर हूँ, तुम भीतर से गरीब हो । फर्क इतना ही है । मैं भी गरीब हूँ, मैं भी अमीर हूँ, तुम भी गरीब हो, तुम भी अमीर हो – इसलिए ज्यादा फर्क नहीं कह सकता, लेकिन तुम बाहर से अमीर हो, मैं भीतर से अमीर हूँ । मौत बताएगी । मौत ही कृसौटी होगी । ’

अगर तुम जीवन में झाँको अपने और बचते न रहो अपने से जैसा मैं देखता हूँ, तुम बचते हो, तुम तरकीबे निकालते हो किसी तरह अपने से बचने की, किसी तरह अपने से मुलाकात न हो जाए । हजार ढग करते हो कभी शराब पीते हो, कभी सिनेमा जाते हो, कभी भजन-कीर्तन भी करते हो – मगर अपने को मुलाने को । कहीं भी डूब जाओ, किसी तरह अपनी याद न आये । इसलिए तुम्हारा भजन-कीर्तन भी झूठा है, वह भी शराब है । भजन-कीर्तन तो नभी सच है, जब वह अपने को याद लाने का आधार बने, जगाये तुम्हे सुलाये न ।

जिस दिन तुम जीवन की पीड़ा को देखोगे, आँख भर के साक्षात् करोगे अपना – और दुख ही दुख पाओगे ।

मेरे पास लाग आते हैं, वे कहते हैं कि ‘ नरक है ? ’ मैं उनमें कहता हूँ, ‘ हृद हो गयी । वही रहते हों । मुझमें पूछने आते हो ? ’

वे सोचते हैं कि नरक कहीं पृथ्वी के नीचे पाताल में दबा है । किन्तु पागलों ने सोचा होगा । किन्हीं नासमझों ने कहीं होगी यह बात तुमसे ।

नर्क तो जीवन को अँधेरे में जीने का ढग है । वह तो एक दृष्टिकोण है । वह तो एक शैली है । स्थान से उसका कुछ लेना-देना नहीं है ।

स्वर्ग भी जीवन की एक शैली है । वह तुम पे निर्भर है । जाग कर जियो तो जहाँ हो वहाँ स्वर्ग । सीधे-सीधे जियो तो जहाँ हो, वहाँ नरक ।

नीद से पैदा होना है नरक ।

जरा विचारो, देखो – और तुम पाओगे, सब तरफ तुम नरक से घिरे हो ।

और नरक की जरूरत है क्या ? इतना नरक काफी नहीं कि तुम और नरक की कल्पनाएँ करते हो पाताल में ?

जिस दिन तुम्हे जीवन का नरक दिखायी पड़ेगा, उसी दिन 'अथातो' का बिन्दु आ गया, उसी दिन तुम कहोगे, 'अब बस हुआ, अब रुकना है', पैर ठिक जाएँगे ।

जैसे ही तुम ठिकते हो इस मसार की दौड़ में, वैसे ही क्राति घटित हो जाती है एक नया आकाश, जिसका कहीं छोर नहीं, जिसका कहीं प्रारम्भ और अत नहीं, तुम्हे उपलब्ध हो जाता है ।

अभी तुम जीते हो बड़ी सकीर्ण गली में रोज़ सकरी होती जाती है, रोज़ सकरी होती जाती है, रोज़-रोज़ तुम बैंधने जाते हों, रोज़-रोज़ जजीरे जकड़ती जाती है ।

तुम्हारा जीवन ऐसा है जैसे तुम अपना ही कारागृह निर्मित करने में लगे हो । चाहे तुम कारागृह को घर कहो, मंदिर कहो, तुम्हारे नाम से कोई धोखे में आने वाला नहीं है । बीमारियों को तुम अच्छे सुन्दर नाम दे दो, इसमें बीमारियों का दग्ध जाता नहीं ।

जाग कर पहचानो, देखो ।

जिस दिन तुम्हे पीड़ा दिख जाएगी, वही पैर ठिक जाएँगे – लौट पड़ोगे तुम !

वहूं जो लौटना है, उसको महावीर ने प्रतिक्रमण कहा अपनी तरफ आना ! उसको पतजलि ने प्रत्याहार कहा अपनी तरफ आना ! उसको जीसस ने कनवसंन कहा है क्राति, रूपान्तरण ।

अभी तुम्हारे जीवन का ढग कामवासना है, जब तुम ठिक जाओगे, तब तुम्हारे जीवन का ढग प्रेम होगा, जब तुम लौट पड़ोगे, तब भक्ति । अभी जहाँ जा रहे हो वहाँ काम की खोज है, वासना की खोज है ।

कामना ही मसार है ।

मसार तुम्हें कहीं बाहर नहीं है । मंदिर, मम्जिद में छिप के तुम मसार से न बच सकोगे, हिमालय की गफाओं में बैठ के भी तुम मसार से न बच सकोगे – क्योंकि मसार तुम्हारी कामना में है ! वहाँ भी बैठ के तुम कामना ही करोगे ।

लोग परमात्मा के सामने बैठ के भी माँगे चले जाते हैं । माँग रुकती ही नहीं । मंदिर में खड़े हैं, लेकिन राम के उन्मुख नहीं होते । मूर्ति होगी सामने, लेकिन वहाँ भी माँगे चले जाते हैं ।

एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि 'अब मुझे भरोसा आ गया । लड़के को नौकरी न मिलती थी । परमात्मा से प्रार्थना की और तीन सप्ताह का

ममय दे दिया कि अगर तीन सप्ताह में मिल गयी तो सदा के लिए भरोसा हो जाएगा, अगर न मिली तो बात खत्म, किर तुम नहीं हो ।' और उस आदमी ने कहा, 'मिल गयी । अब तो रोज़ पूजा करता हूँ, प्रार्थना भी करता हूँ । इसलिए आपके पास आया हूँ ।'

मैंने कहा, 'सयोग से मिल गयी होगी । क्योंकि परमात्मा तुम्हारी धर्मकी से डर जाए कि तीन सप्ताह बस, तुम्हारा अल्टीमेटम ।-तो तुम पागल हुए हो ।' और यह बड़ा खतरनाक विश्वास है जो तुमने पैदा किया है, यह किसी भी दिन टूटेगा ।'

मैंने कहा, 'एक बार और काशिश करो ।'

उसने कहा, 'क्या मतलब ?'

मैंने कहा, 'एकाध और काशिश करो । तुम्हारी पत्नी बीमार रहती है । जब कुजी ही मिल गयी तो पत्नी को भी ठीक कर लो ।'

उसने कहा, 'ठीक कहा आपने ।'

कल ही वह गया । दे आया अल्टीमेटम फिर । तीन सप्ताह बाद आया, बहुत उदास था । उसने कहा, 'खराब कर दिया आपने सब । कुछ फायदा नहीं हुआ, तबीयत और खगव ही गयी । भरोसा डगमगा गया मेरा ।'

तुम्हारा भरोसा भी तुम्हारो माँग पर ही खड़ा है । परमात्मा कुछ दे तो परमात्मा है । परमात्मा तुम्हारा अनुसरण करे तो परमात्मा है । तुम जो माँगो, पूरा कर नो परमात्मा है । परमात्मा नुम्हारी सेवा में रत रहे तो परमात्मा है । परमात्मा मालिक नहीं है, मालिक तुम हो । और अगर उसे तुम्हारी पूजा-प्रार्थना चाहनी हो तो बदले में सेवा करता रह तुम्हारी ।

तुम्हारी प्रार्थना भी झूठी है, वह भी कामना है, वहाँ भी ससार ही है ।

जब तक तुम बाहर कुछ माँग रहे हो, जब तक तुम माँचते हो बाहर कुछ मिन जाएगा, जिससे तृप्त होगी, जिससे मन चैन से भर जाएगा, राहत की माँस आएंगी, आनंद के क्षण उठेंगे - अगर बाहर तुम ऐसा माँगते चले जा रहे हो, तो अभी तुम नरक से बाहर नहीं जा सकते ।

बाहर जाना नरक में जाना है । बाहर जाती हुई चेतना नरक के बाहर नहीं जा सकती ।

ठिकता है कोई देख कर जीवन की व्यथना, जीवन का असार, निष्फलता हाथ में सिवाय पीड़ा के और कोई सम्भव नहीं, हृदय में भिवाय औसुओ के और कुछ दिखायी नहीं पड़ता, जीवन बिलकुल अधकारपूर्ण है, नाव डूबी, अब डूबी तब डूबी जैसी हालत है - ऐसे क्षण में जब कोई ठिक जाता है, उस ठिकने के क्षण में प्रेम का अविर्भाव होता है, कामना गयी । अब तुम माँगते नहीं, अब तुम देने को उत्सुक हो जाते हो ।

प्रेम देता है, काम माँगता है। जब तक माँग है तब तक समझना, काम, जब देना शुरू हो जाए तब प्रेम।

क्योंकि तुम माँगते इसलिए हो कि माँगने से बढ़ेगी सम्पत्ति और सुख आयेगा। ठिठका हुआ व्यक्ति देना शुरू करता है 'माँग के देख लिया, सुख न आया, दुख आया, अब जग उलटा करके देख ले।' देना शुरू करता है और पाता है कि सुख के हल्के झोके आने लगे, बजने लगी बीणा, कहीं दूर यद्यपि, बहुत दूर यद्यपि - पर बजने लगी, स्वर मुनायी पड़ने लगे कोई नया लोक शुरू हुआ।

यह तो ठिठके हुए आदमी की बात है। वह देने लगता है, बाँटने लगता है - और जैसे-जैसे बॉटना है, वैसे वैसे स्वर साफ होते हैं और तब चौक के उसे पता चलना है 'ये स्वर मेरे ही मीनर से आते हैं। अब तक मीना था सुगंध बाहर है, यह मेरे मीनर से आती है। कस्तूरी कुटन वर्मी। यह मेरे ही नाफे में बसी है।' तब लोटना शुरू होता है। 'अथाना।' आ गया बिन्दु 'अब।' और तभी तुम नारद के इन भविन-मूत्रा को समझ पाओगे। इसके पहले, जो बाहर जा रहा है, उसके लिए ये नहीं है। जो निठका है उसके लिए भी ये नहीं हैं। जा लौट पटा है उसके लिए ये हैं। यह पह री बात है।

दूसरी बात

जब तक तुम सोचते हो ति तुम ही अपने सुख को ले आओगे, नब तक 'अथातो' का बिन्दु नहीं आता। तुम न ला पायाग अपने सुख को, तुम ही ता सारा दुख ले आये हो। यह तुम्हारे ही उपक्रम का फल है। यह तुम्हारे ही श्रम की निष्पत्ति है। पुरानी भाषा मे कह तो कहते हैं, यह तुम्हारे ही कर्मों का फल है। यह पुरानी भाषा है, बात यही है। यह तुमन ही किया है। यह जो दुख तुम्हे धेरे है, यह तुमने ही आपत्ति दिया था। ये मेहमान विन बुलाये नहीं आ गये हैं, तुमने निमत्रण भेजे थे। तुमने बड़ा आप्रह किया था कि जाओ। यद्यपि तुमने कुछ और सोचन कर बुलाया था। तुम्हार नमझने मे भूल थी। बुलाये थे मित्र, जा गये हैं शत्रु। बुलाया था सुख, आ गया ह दुख। आप्रह किया था फूलो के लिए, आ गये हैं काँटे - क्योंकि काँटे दूर न फूल जैसे दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि शत्रु दूर मे मित्र जैसे दिखायी पड़ते हैं।

एक छोटा बच्चा अपने साथिया के साथ यात्रा पर गया था। वहाँ से उसने पत्र लिखा अपनी माँ को कि 'पहले दिन सब अपरिचित थे, मैं किसी को जानता न था। दूसरे दिन, सभी मित्र हो गये, क्योंकि पहचान हो गयी। तीसरे दिन सभी शत्रु हो गये।'

यह तीन दिन की कथा पूरी जिदगी की कथा है। पहले दिन जब तुम देखते हो और खोल कर काँई परिचित नहीं, अनजान जगत है, अपरिचित लोगो से

चिरा हुआ है मब, अजनबी और अजनबी । किर सभी मित्र मालूम होते हैं । फिर शत्रुता शुरू हो जाती है । दूर से जो मित्र मालूम पड़ता है, जैसे-जैसे पास आते हैं वैसे-वैसे शत्रुता शुरू हो जाती है । दूर के ढोन हैं बड़े सुहावने, पास आने पर बिलकुल व्यर्थ हो जाते हैं ।

तुमने ही निमत्रण दिये थे, हा सकता है किंतु पिछले जन्मो मे दिये हो, अब तुम बिलकूल भूल ही गय होओ, लेकिन तुमने ही बुलाया था । जो तुम्हारे पास आ गया है वह तुम्हारा हृत्य है । और तुम्हारे हृत्य मे यह दुख बढ़ता जाएगा, पर्न-दर-पर्न तुम्हारे चारो तरफ इकट्ठा होता जाएगा । यह तुम्हारे गले को घोट रहा है ।

तुम्हारे दुख होता है । जब तुम ठिठकोगे, नव तुम अचानक पाओगे 'करने की काई त्रस्तगत ही नही । मब अनकिये, तुम्हारे बिन किये हा रहा है ।

प्रेम के क्षण मे जीवन स्व स्फुर मालूम होना है सब अपने-आप हो रहा है । पैदा होना, जवान होना, बूढ़े हा जाना, जन्म मान मब अपने-आप हो रहा है ।

लेकिन जब तुम नौटोगे, भक्ति का आयाम शुरू होगा, तब तुम पाओगे कि अपने-आप नही हो रहा है । तुम करने वाले नही हो, अपने-आप भी नही हो रहा है । जीवन के राष्ट्र-रोग मे छिपा है कोई प्रयाजन । जीवन के कण-कण मे छिपी है कोई नियति, कहो छिपा है कोई परमात्मा । उससे हो रहा है ।

कामवासना मे लगा आदमी अपने पे भरासा करता है । प्रेम मे खडे आदमी का अपने पे भरोसा डगमगा जाता है । भक्ति मे जाते व्यक्ति का भरोसा अपने से बिलकुल ही शून्य हा जाता है, परमात्मा पर हो जाता है ।

सुना है मैने जोश की बड़ी प्रभिद्ध वित्तयाँ हैं

'खुदा का सीप दा ए 'जोश 'पुस्तारा गुनाहो का

चलोगे अपने सर पे रख के यह बारे गरा कब तक । '

— यह भारी बोझ अपने सिर पे रख कर कब तक चलोगे ? दे दा परमात्मा को । तुम नाहक ही परेशान हो ।

मैने मुना है, एक आदमी को, उसकी पचहत्तरवी वर्ष-गाँठ थी, तो मित्रो ने कहा, 'कुछ नया अनुभव तुम्हारे लिए ? तो ऐसी कोई चीज तुमने जीवन मे न की हो ? ' उसने कहा, 'हवाई जहाज मे कभी नही बैठा । ' तो उन्होने कहा, 'चलो । ' उसे हवाई जहाज मे बिठला के आधा घटा शहर का चक्कर लगवाया । आखे घटे बाद जब वह उतरा, तो जो पायलट उसे उडा रहा था, उसने पूछा, 'आप प्रसन्न तो हैं ? परेशान तो नही हुए ? क्योंकि पहली ही उडान थी । ' उसने कहा, 'नही, परेशान तो नही हुआ, पर डर के कारण मैने अपना पूरा बजन जहाज

पे नहीं रखा । डर के मारे अपना पूरा वजन जहाज पे नहीं रखा कि कही वजन के कारण कोई उपद्रव न हो जाए ।'

अब हवाई जहाज मे तुम बैठो, वजन पूरा रखो या न रखो, वजन पूरा हवाई जहाज पर है ।

सुना है मैंने, एक समाट अपने रथ से लौटता था, जगन म महल की तरफ, एक गरीब आदमी को उसने राह पर बड़ा बोझ ढोते हुए देखा । दया आ गयी । कहा, 'आ, बैठ जा तू भी रथ मे । कहाँ तुम्हे उतरना है, छोड देगे ।' वह बैठ तो गया रथ मे, लेकिन पोटली उसने मिर की सिर प ही रखी रही । समाट ने कहा, 'पोटली तीव्रे क्यों नहीं रख देता ?' उसने कहा, 'इतरी ही आपकी कृपा क्या कम है कि मुझे विठा दिया । जब पोटली का वजन भी आप पर छोड़' नहीं नहीं, वह मुझसे न होगा ।'

लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम रथ मे बैठ क पाई तीव्रे नीचे रखो रथ पर या भिर पे रखो, वजन तो रथ पर ही है ।

जो जरा-से लौटते हैं अपनी नगफ, उनको पता चलना नि हम नाहक ही परेशान थे, करनेवाला कर रहा था, जो होने वाला था हा रहा था, हम व्यथ ही बीच मे उछल-कूद कर रहे थे ।

तब तुम ममझना कि अब तुम्हारी भक्ति की शुश्राव हुई ।

भक्ति की शुश्राव का अर्थ है कि न मैं करने वाला हूँ, न मैं कर सकता हूँ — मैं हूँ ही नहीं, वही न । और तब तुम्हारे मन म उमक प्रति जनन्य प्रेम का जन्म होता है ।

तुम्हारा सारा गाझ वही ढो रहा है ।

और तब तो भक्त ऐसी धड़ी मे आ जाता है कि वह जानता है कि भक्ति मी करने का सवाल नहीं, प्रार्थना भी मेर किये न होगी । वही प्रार्थना करेगा, मुझसे तो हीगी । अब तो उमकी नरक जाना मुझसे न होगा, वही चलेगा मेरे पैरो से तो ही पहुँच पाऊगा ।

'उठना नहीं है अब ता कदम मथ गरीब का

मजिन का रुद दा, दीड के ले मुझका गह मे ।'

धीरे धीरे उमे अपना जमहाय अवस्था वा बाज होता है कि म नो कुछ भी नहीं हूँ । अब ता मुझ गरीब का पैर भी नहीं उठना । वही उठाये तो उठता है । और अब भय भी क्या, डर भी क्या । अगर उमे पहुँचाना ही है तो मजिन खुद ही आ के बीच राह मे मुझे ले लेंगी ।

इसलिए भक्त किनारे का नहीं मांगता । वह तो कहता है, 'तू अगर मैंक्षम्भार मे भी डुबा दे तो वही किनारा है ।' उसने अपना सारा गाझ उसी को दे दिया ।

कृष्ण ने गीता में अर्जुन को बस इतनी ही बात समझायी है कि तू मारा बोझ परमात्मा पे छोड़ द। तू आराम से बैठ हवाई जटाज में, नाहक अपने बाज को मत उठाये रख। रथ मे बैठ ही गया है, मिर भी पोटनी भी नीचे रख द। निमित्त-मात्र हो जा।

दूसरा प्रश्न कल का एक सूत्र या कि भक्ति उसके प्रति प्रेमरूपा है। कृपया समझाएँ कि भक्ति की याता और सद्गुरु के बीच कैसा सम्बन्ध है।

गुरु का अर्थ है सोये हुओ मे जागा हुआ व्यक्ति, अधो मे आँख बाला। बस इतना ही। तुम्हें जो स्मरण नहीं आ रहा है, उसे स्मरण आ गया है। तुम जिसे पीठ की तरफ छिपाये हो, वह उसके आमने-सामने खड़ा हो गया है। उसने अपनी आँखों मे ज्ञान लिया, उसने अपने हृदय मे टटोल लिया — और उसने परमात्मा को छिपे वहाँ पाया है।

गुरु का अर्थ है जो भिट गया और अब केवल परमात्मा है वहाँ।

परमात्मा तुम्हार लिए बड़ी दूर का शट्ट है। अनत फासना मालूम होता है। तुम्हारी नीद मे और परमात्मा मे अनत फासना मालूम होता है। होगा हो, क्योंकि परमात्मा जागे हुआ चेतन्य का अनुभव है। इमलिए ना तुम मानत हो तो भी मान नहीं पाते। कहत हो, मानते हो, फिर भी मीनर मदेह खड़ा रहता है। लाख दबाते हो, छिपते हो, मगर तुम जानते हो कि कही ना सदेह ह 'परमात्मा हा मवता है।'

मैने सुना है कि एक आदमी की कार बिगड़ गयी थी। चाक एक बाहर आ गया था। और वह बड़ी गालियाँ बरु रहा था ओध मे था। और गालिया तुम्हे मीखनी हा तो ड्राइवरो से मीखो, और कोई उतना कुशल नहीं। अकला था। बीच जगल मे गाड़ी बिगड़ गयी है और वह गालियाँ दे रहा है, दिल भर के गालियाँ दे रहा है। एक दूसरी कार आ के रुकी। एक पादरी, एक ईसाई पुरोहित उसमे था, वह उत्तरा। उसने देखा कि इन्होंने गालिया बक रहा है — और गालियाँ माधारण नहीं, परमात्मा तक को दे रहा है। तो उसने कहा, 'रुक भाई, यह उचित नहीं है। परमात्मा पे भरोसा कर। सब हो जाता है।'

उस आदमी ने कहा, 'कैसे सब हो जाता है? क्या यह चाक लग जाएगा जा के?'

पादरी थोड़ा डरा, पर अब लौट भी नहीं सकता था अपनी बात मे, तो उसने कहा, 'क्यों नहीं लग जाएगा? भरोसा हा तो सब हो जाता है।'

तो उसने कहा, 'तुम ही प्रार्थना करो।'

अब पादरी और भी मुश्किल मे पड़ा, क्योंकि वह भी जानता है कि 'परमात्मा है कहाँ? इतना सोचा था कि बात आगे बढ़ जाएगी। अब यह

आदमी मामने खड़ा है और अब पीछे लौटना भी कायरता मालूम होनी है। 'उसने सोचा कि एक कोशिश करने में क्या हर्ज़ है, यहा कोई और है भी नहीं इस जगत में देखने वाला, पराय भी होगी तो बस इस एक आदमी के सामने। तो उसने प्रार्थना की — और हेरानी की बात चाक उचका और गाड़ी में स्थग गया। तो उम पादरी ने श्राव्य खोनी, उम चाक का उचकने दखा तो वह चिल्लाया, 'हे भगवान्, क्या तुम मच में हो ?'

जिदगी-भर वह लोगों का परमात्मा के सम्पर्क में समझा रहा था, और भरोसा नहीं है। प्रवा है व्यवमाय है। ता काई पूजा वा व्यवमाय करता है, कोई परमात्मा का व्यवमाय करता है। भरोसा किसी को नहीं है।

आस्तिक से आस्तिक, जिसका नुम कहते हैं, वह भी भीनर सदेह को लिये बैठा है। इसलिए आस्तिक उरता है कि नास्तिक की बात कही जान में न पड़ जाए। असली आस्तिक क्या ? शास्त्रों में लिखा है 'नास्तिकों को बात मन मुनना।' ये शास्त्र आस्तिकों ने त निखे होंगे — प्र उन्होंने निखे होंगे जिनके हृदय में सदेह का कीड़ा अभी भी है। अन्य उर बया है ? अगर तुम्हारा भीतर आस्था परिपूर्ण है, आगर तुम्हारा गदह सच में ही समाप्त हो गया है जल गया है, तो नास्तिक की बात मुनने में मर्य क्या है ? जल्लर मुनना। शायद तुम्हारे जीवन मौन श्रवण को अनुभव करके नास्तिक की जीवन में कोई फर्क हा जाए। तुम्हारे जीवन में तो कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं, शायद तुम्हारे ईश्वर की अनन्य आस्था नास्तिक को भी मकामङ्ग हो जाए। आ जाने दना पास।

नेकिन आस्तिक उरत है, मर्यभीत हानि है। उर अपने ही मन्देह का है, काई और तुम्ह उरा नहीं सकता।

तुम मरभीत हो, उर हुए हो। तुम्ह पता है कि अगर बाहर में काई सदेह की बान करे तो तुम्हारे भीतर का सदेह, जो सा गया है, जग जाएगा, छिपा है, प्रगट हो जाएगा, बाहर का सदेह तुम्हारे भीतर के मदह़ को पुकार द देगा प्रतिसवेना शुरू हो जाएगी, तुम भीतर कैपन लगोगे।

परमात्मा दूर है बहुत तुम्हारे लिए, नीद में बड़ा दूर है। वस्तुत दूर नहीं है, तुम्हारी नीद का ही फासला है। परमात्मा के लिए तुम दूर नहीं हो, तुम्हारे लिए परमात्मा दूर है — इसे व्यान रखना।

जैसे तुम सोये हो, सूरज निकल जाया, सूरज की किरणे तुम्हारे ऊपर बरस रही है, लेकिन तुम सोये हो। सूरज के लिए तुम दूर नहीं हो, तुम्हारे ऊपर बरस रहा है, तुम्हारे रोगँ-रोगँ को जगान की चेष्टा कर रहा है, लेकिन तुम गहरी नीद में हो, तुम्हारे लिए सूरज तो बहुत दूर है, पता ही नहीं कि ह भी या नहीं। तुम तो गहन अधकार में खोये हो।

ऐसी घडियों में जब परमात्मा बहुत दूर मालूम पड़ता है, सद्गुरु उपर्योगी हो सकता है क्योंकि सद्गुरु तुम जैसा है, तुम्हारे पास है, मनुष्य जैसा मनुष्य है, हड्डी-माँस-मज्जा का है – और फिर भी तुमसे कुछ ज्यादा है, और फिर भी तुमने जो नहीं जाना उसने जाना है, तुम जो कल हाओरे उसकी वह खबर है। वह तुम्हारा भविष्य है। वह तुम्हारी सम्भावनाओं का द्वार है।

परमात्मा बहुत दूर है, गुरु बहुत पास है। इसलिए परमात्मा के पास गुरु के बिना शायद ही कभी कोई पहुंच पाना है। गुरु ऐसा ज्ञारोखा है जिससे दूर के आकाश को तुम देख पाओगे। ज्ञारोखा पास है।

कमरे में तुम बैठे हो, तुमसे मैं आकाश की बातें करूँ और आकाश के अनन्त मीदर्य की चर्चा करूँ – व्यर्थ है। तुमसे सूरज की किण्णों की कहानी कहूँ – व्यर्थ है। तुमसे फनों की वार्ता करूँ – व्यर्थ है। लेकिन एक ज्ञारोखा खोल दूँ, एक खिड़की खोल दूँ जा बद थो – तुम अपनी ही जगह हा तुमसे कोई फर्क नहीं हुआ, तुम उठे भी नहीं जगह में, वम तुम अपनो ही कोच पर आराम कर रहे हो, तुमने कुछ भी फर्क न किया – लेकिन एक ज्ञारोखा खुल गया दर का आकाश अब उतना दूर नहीं। एक कोना आकाश का दिखायी पड़ने लगा – जोर कोने को जिसने पकड़ लिया वह पूरे को पकड़ ही लेगा। आड़ी फूलों की गंध भी भीतर आने लगी। योड़ी-सी किरणे भी आ गयीं और नाचने लगीं फूल पर। तुम वही के वही बैठे हो, तुमसे कोई फर्क नहीं हुआ, लेकिन एक ज्ञारोखा तुम्हारे पास खुल गया।

गुरु एक ज्ञारोखा है। तुम वही हो, लेकिन गुरु के पास होते ही उस ज्ञारोखे में तुम बड़े आकाश को, विराट आकाश को झाँक पाओगे।

गुरु जैसे बूँद है, लेकिन बूँद का म्बाव तो वही है जा मागर का है बैमा ही नमकीन।

बुद्ध कहा करने थे कि बूँद चख लो एक मागर की, तुमने भारा मागर चख लिया।

गुरु एक बूँद है, लेकिन गेमी बूँद जिसने पहचान लिया अपने भीतर छिपे सागर को। तुम भी बूँद हो, लेकिन ऐसी बूँद जिसे अपने छिपे सागर की कोई खबर नहीं। बूँद और बूँद की योड़ी बात हो सकती है। ऐसे तो गुरु और शिष्य के बीच भी वार्ता बहुत मुश्किल है, तो खोजी और परमात्मा के बीच तो वार्ता असम्भव है।

गुरु पर रुकना नहीं है, गुरु में गुज़र जाना है। गुरु तो द्वार है, उससे तो पार हो जाना है। इसलिए सद्गुरु और गुरु में यही फर्क है।

सद्गुरु का अर्थ है जो तुम्हे परमात्मा की तरफ ले जाए, इतना ही नहीं जो तुम्हे तुमसे मुक्त करे और जो तुम्हे अपने से भी मुक्त करे।

वही गुरु सद्गुरु है जो तुम्हे अपने में भी मुक्त हाना मिखायें, नहीं तो अद्वीर

मेरे गुरु पकड़ जाएंगा। कहीं ऐसा न हो कि कोच से तो तुम उठ जाओ और खिड़की के चौखटे को पकड़ लो। तब तुम चूक गये। तो जो तुम्हे अपने को पकड़ने की चेष्टा मेरे लगा हो उससे सावधान रहना।

गुरु पहने तुमसे तुम्हारा समार, तुम्हारे गलत दृष्टिकोण छीन लेगा। और जब वे छिन गये, तो आग्निरी चीज़ जो वह छीनेगा, वह स्वयं को तुमसे छीन लेगा, ताकि तुम खुले आकाश मेरे प्रवेश पा जाओ।

और असली सवाल झुकने की कला सीखने का है। गुरु के पास तुम झुकने की कला सीख लाओ। जिन दिन तुम्हे झुकना आ गया, वह सब आ गया। असली सवाल मिटने की कला सीखने का है। गुरु के पास तुम मिटना सीख लाओ। जिस दिन मिटना आ गया, सब आ गया।

‘कुछ जज्बए मादिक हो, कुछ इखनासा-इरादन

इससे हमे क्या बहस वह बुन है कि खुदा है।’

‘कुछ जज्बए सादिक हो’ – कुछ सत्य भावना हो, कुछ प्रेम का आविभाव हो, ‘कुछ इखनासा-इरादत – कुछ हमारे डगदो मे, हमारी भावनाओ मे, प्रेम के जरूर का अकुरण हो, ‘इससे हमे क्या बहस, वह बुन है कि खुदा है’ – वह पत्थर की मूर्ति हो कि परमात्मा हो, इससे क्या बहस। – थोड़ा प्रेम करना आ जाए, थोड़ा स्वाद लग जाए अनत का, थोड़ी भावना की पवित्रता आ जाए, थोड़ी झुकने की कला समझ मे आ जाए।

बहस नामभक्ति करते है। समझदार समय का उपयोग कर नेते है और जीवन की कोई गहराई सीख लेते है।

यही फक्क है विद्यार्थी और शिष्य में।

विद्यार्थी बहस मे उत्सुक है, शिष्य जीवन को बदलने मे। विद्यार्थी कुछ ज्ञान की सूचनाएँ इकट्ठी करने चला आया है, शिष्य अस्तित्व को बदलने आया है। विद्यार्थी दाँव पर कुछ भी नहीं लगाता। विद्यार्थी तो सिर्फ़ स्मृति का निखार कर रहा है। शिष्य जीवन को दाँव पर लगाता है, मब कुछ खोना हो तो भी तैयारी दिखलाना है। क्योंकि जब तक तुम सब खोने को तैयार न हो जाओ तब तक तुम सब को पाने के मालिक न हो सकोगे। जिसने सब खोया उसने सब पाया।

तो, गुरु के पास तो बारहखड़ी सीखनी है, अल्फाबेट। परमात्मा का गीत तो अभी कठिन पड़ेगा। तुम्हें अभी बारहखड़ी ही नहीं आती। गुरु के पास अब स सीख लेना है – अब स परमात्मा का। जब तुम सीख गये, तुम चले अपनी यात्रा पर।

पक्षी के बच्चे पैदा होते है, अण्डो से बाहर आते है। तुमने कभी देखा होगा

झाड़ा में लटके धोसलो के किनारों पर बैठे, डरते हैं, आकाश को देखते हैं आकाश बड़ा है । अभी तक अण्डे में रहे थे, बड़ी छोटी दुनिया थी, बड़ी सुरक्षित थी, ऊँचा थी । माँ गरमी देती रहती थी । अब दुनिया बड़ी ठड़ी मालूम पड़ती है । वह ऊँचाता माँ की गयी । किनारे पर बैठते हैं वे, माँ उड़ती है । वह उड़ान उनके भीतर भी किसी सोयी हुई, प्रसुप्त आकॉक्शा को जन्म देती है । वे भी उड़ना चाहते हैं – कौन नहीं उड़ना चाहता । क्योंकि उड़ने में मुक्ति है, स्वातंत्र्य है । लेकिन डगमगाते हैं, डरते हैं । बैठे हैं धोसले के किनारे । उन्हें अपने पखों का पता नहीं । हो भी कैसे सकता है ? पखों का पता तो तभी चलता है जब तुम उड़ो । उड़ने के पहले पखों का पता चल नहीं सकता । उड़ने के बिना कैसे तुम जानोगे कि तुम्हारे पास भी पख हैं ? पैर पता चलते हैं जब तुम चलते हो । आँख पता चलती है जब तुम देखते हो । कान पता चलते हैं जब तुम सुनते हो । पख पता चलते हैं जब तुम उड़ते हो ।

अभी पक्षी उड़ा नहीं, अभी अण्डे से बाहर आया है । अभी उसे कैसे पता हो सकता है कि मरे पास भी पख है । अभी वह डरता है । क्या करता है ? क्या चाहता है ? चाहता है उड़ना । कॉशिश भी करता है, लेकिन पकड़े हैं जोर से धोसले को कि कही इस विराट शून्य में खो न जाए ।

माँ क्या करनी है ? एक धक्का देनी है । घबड़ाता है पक्षी, घबड़ाहट में पख खुल जाते हैं । घबड़ा के लौट आना है बापम एक चक्कर मार के, लेकिन अब उस पता हो गया पख उसके पास है, थोड़ी देर होगी चाहे, कला सीखने में योड़ा समय लगेगा – लेकिन पख है ! एक बड़ा भरोमा आया । एक हिम्मत जगी । एक आत्मविश्वास का जन्म हुआ ‘तो यह आकाश भी अपना है !’ दो पखों के सहारे पूरा आकाश अपना हो जाता है । बस, दो छोटे पखों के सहारे सारे आकाश की मालिकियत मिल गयी । फिर थोड़ी-थोड़ी दूर जाने के प्रयोग करता है – और दूर, और दूर, बड़े वर्तुल बनाता है – और एक दिन फिर दूर आकाश की यात्रा पर निकल जाता है । अब माँ को धक्का देने की जरूरत नहीं पड़ती ।

गुरु तुम्हे एक धक्का देगा धोसले के बाहर । इससे ज्यादा कुछ भी नहीं । यह तुम भी कर सकते थे । जब तुम कर लोगे तब तुम पाऊंगे ‘अरे, यह तो मैं भी कर सकता था ।’ लेकिन यह तुम पाऊंगे तब जब तुम कर लोगे । इसके पहले, इसके पहले कैसे तुम जानों कि पख हैं ? गुरु तुम्हे दिखा देगा तब तुम्हे लगेगा ‘अरे, यह तो बिना गुरु के भी हो सकता था ।’

कृष्णमूर्ति के साथ यही हुआ धक्का दिया ऐनीबीसेट ने, लीडबीटर ने, उनके गुरुओं ने – पख खुले । कृष्णमूर्ति को समझ आयी कि ‘यह तो मुझसे ही हो सकता था । पख मेरे, पख खुले तो मेरे धक्के के बिना भी अगर मैं जरा-सी मेहनत

कर लेता तो हो जाता ।' तब से चालीस-पच्चास वर्ष बीत गये, वे दूसरों को यहीं सिखा रहे हैं कि हिम्मत करो, कूद जाओ, पख तुम्हारे हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं । लेकिन कोई कूदता हुआ मालूम नहीं पड़ता । बात बिलकुल ठीक कहते हैं । बात में जरा भी गलती नहीं है । भूल-चूक कोई खोज नहीं सकता इसमें ।

लेकिन कोई चाहिए जो तुम्हे धक्का दे दे । और जब गुरु धक्का देगा तो बहुत बुरा लगेगा । तो पहले गुरु तुम्हें पास बूलाएगा, प्रेम देगा, ताकि तुम आ जाओ और निकट, और निकट, और निकट, फिर एक दिन धक्का देगा । तुम चौकोंगे बहुत ऐसा प्रेमी आदमी ऐसा दुष्ट कैसे हो गया । लेकिन जरूरी है कि धक्का दे न भी तुम्हारे पख खुलेंगे ।

इसलिए जो परमात्मा को खोजने चले हों सीधे वे थोड़ा सम्हल जाएँ वह सीधी खोज कही अहकार का ही नया करतब न हो, कही अहकार की ही नयी ईजाद न हो । फिर ऐसे लोग हों सकता हैं बैठे रहे घोसले में, आँख बद कर ले और खुले आकाश के सपने देखने लगे । वह आसान है ।

गुरु को खोजो, परमात्मा की खोज की कोई जरूरत नहीं । गुरु को खोजने ही वह खोज हो जाएगी ।

'हैं फर्ज तुम पै फक्त बदाम-बुदा की तलाश

खदा की फिक्र न कर, बोह मिला, मिला-न-मिला ।'

— उसकी बहुत चिंता नहीं है । लेकिन किसी खुदा के बदे की तलाश कर ले । किसी गुरु को खोज ने । फिर परमात्मा मिला न मिला, तू छोड़ फिक्र । मिल ही जाएगा, उसकी बान ही मत उठा । क्योंकि गुरु को खोजने में ही पहला कदम उठ जाता है ।

गुरु को खोजने का अर्थ है अहकार का समर्पण ।

किसी के चरणों में झुकने का अर्थ है झुकने की कला का पहला अभ्यास ।

झुक गये तो खुदा तो मिल ही जाएगा । बस तुम झुके न थे, वही अडचन थी ।

इसलिए गुरु की बड़ी अनिवार्यता है । जरूरत बिलकुल नहीं है, अनिवार्यता है पूरी । जरूरत बिलकुल नहीं है, ऐसा लगता है कि हो सकता है अपने-आप । कहाँ अडचन है? पाँव तुम्हारे पास है, उड़ने की क्षमता तुम्हारे पास है, आकाश मौजूद है, मब मौजूद है — फिर गुरु को क्या जरूरत है? अगर कोई तर्क से विचार करे तो गुरु की जरूरत मालूम नहीं हांगी । लेकिन तुम में साहस नहीं है, इसलिए गुरु की जरूरत है । वह साहस को कौन पूरा करे? तुम्हें हिम्मत कौन दे? कौन तुम्हें धक्का दे दे?

मेरे गाँव में एक बूढ़े सज्जन हैं । उन्होंने करीब-करीब गाँव के सभी बच्चों को नैरना सिखाया होगा । वे नदी के प्रेमी हैं । और गाँव-भर के बच्चे जैसे ही

तैरने योग्य हा जाते हैं, नदी पहुँच जाते हैं। और वे सुबह पूरा समय पाँच-छह घण्टे का, गाँव-भर के बच्चों को तैरना सिखाने में देते हैं। मुझे भी उन्होंने तैरना सिखाया। जब भी सीख गया, मैंने उनसे कहा, 'यह भी कोई बात हुई, तुमने सिखाया जरा भी नहीं, सिफं मुझे धकाया।' उन्होंने कहा, 'बस वही सिखाना है।' वे फेंक देते हैं बच्चे को। बच्चा घबड़ाता है। वे खड़े हैं सामने। दो-तीन फीट फेंक देते हैं गहरे में। बच्चा घबड़ाता है, तड़फड़ाता है, हाथ-पैर फेंकता है। वही तैरने की शुरुआत है। हाथ-पैर फेंकना ही तैरने की शुरुआत है। फिर धीरे-धीरे व्यवस्था आ जाती है। पहले अव्यवस्थित फेंकता है। पहले घबड़ाहट में फेंकता है। फिर वे दौड़ के उसे बचा लेते हैं। फिर फेंकते हैं। फिर ले आते हैं किनारे पर। फिर फेंकते हैं। कभी मुँह में पानी चला जाता है, कभी नाक में पानी चला जाता है, कभी बड़ी घबड़ाहट होती है। कभी ऐसा लगता है कि यह तो बचना मुश्किल है, मरे। और कुछ नहीं सिखाते वे। दस-पाँच दफा फेंकते हैं। हाथ-पैर में गति व्यवस्थित होने लगती है। दो-चार दिन में बच्चा तैरना सीख जाता है। सिखाते कुछ भी नहीं, सिफं पानी में तुम अपने से न कूद सकोगे, घबड़ाहट लगेगी, उतनी घबड़ाहट भर छीन लेने की बात है।

परमात्मा उपलब्ध है गुह के बिना, मगर उपलब्ध न हो सकेगा। जब वह उपलब्ध हो जाएगा तब तुम जानोगे कि हो सकता था। लेकिन वह सदा बाद में।

कोलम्बस ने अमरीका खोजा। जब तक नहीं खोजा था, तो कोई भरोसा नहीं था, लोग सोचते थे यह गया, यह लौटने वाला नहीं है। क्योंकि यह सिफं कल्पना के आधार पर कि यदि पृथ्वी गोल है जो कि गैलिलियो और कोपरनीकस ने सिद्ध कर दिया था कि पृथ्वी गोल है, मगर कोई देखा तो नहीं था, देखा तो अभी तक नहीं था। जब पहली दफा अन्तरिक्ष-यात्रा शुरू हुई और मनुष्य पृथ्वी के घेरे के बाहर गया तब पहली दफा दिखायी पड़ा कि पृथ्वी गोल है, इसके पहले तो किसी ने देखा न था, यह तो धारणा थी, तर्कसिद्ध थी, हजार प्रमाण थे, इसके लेकिन सब प्रमाण परीक्षा थे। कोलम्बस ने कहा कि 'जब पृथ्वी गोल है तो अगर मैं जाऊं यात्रा पर और करता ही रहूँ यात्रा सीधा, सीधा, तो एक दिन बापस इसी जगह लौट आगा। अगर बीच मे कुछ हुआ तो मिल गयी कोई जगह तो ठीक है, नहीं तो बापस अपने घर आ जाएँग। गोल अगर पृथ्वी है तो लौट आएँगे अपनी जगह, भटकने का कोई सवाल नहीं है।'

कोई साथ जाने को राजी न था। बड़ी मुश्किल से सालों की खोज के बाद अस्ती आदमी तैयार हो सके। उनमें कई ऐसे थे जो मरने को तत्पर थे, जिनको जिन्दगी में कोई सार न था। कुछ पांगल थे, दीवाने थे, उन्होंने कहा 'चलो, कोई हजार नहीं, मरेंगे, और क्या होगा।' दग का कोई एक आदमी तैयार नहीं था।

कुछ को साम्राट की आज्ञा हुई थी, इसलिए कुछ सैनिकों को जाना पड़ रहा था, तो वे गये थे ।

इन अस्सी आदमियों को ले के कोलम्बस गया । जिसने धन की सहायता दी थी, जिस रानी ने, उसके दरबारियों ने कहा था, 'यह फिजूल पैसा खराब हो रहा है । ये अस्सी आदमी मरेंगे । ये लाखों रुपये खराब होंगे ।' पर उस रानी ने कहा, 'करने दो, एक प्रयोग है, देखेंगे ।'

कोलम्बस अमरीका खोज के लौट आया । दरबार में उसका स्वागत हुआ । तो उन्हीं दरबारियों ने कहा, 'यह कोई क्या खाम बात है, यह कोई भी खोज लेता । अगर पृथ्वी गोल है, कोई भी जाता तो मिल जाता ।'

कोलम्बस की यानी में एक अण्डा रखा था । उसने अण्डा उठाया और उसने कहा, 'इसे कोई सीधा खड़ा करके बता दे टेबल पर ।' कई ने कोशिश की खड़ा करने की, पर अब अड़ा कैसे सीधा खड़ा हो ? वह गिर-गिर जाए । उन्होंने कहा, 'यह हो ही नहीं मिलता, यह असम्भव है ।'

कोलम्बस ने जोर में अण्डे को ठोका टेबल पे, नीचे की पर्त सीधी हो गयी, अदर दब गयी, अण्डा खड़ा हो गया । उन्होंने कहा, 'अरे, यह तो कोई भी कर देता ।' कोलम्बस ने कहा, 'लेकिन किसी ने किया नहीं ।'

करने के बाद तो सभी कुछ आमान हो जाता है । करने के पहले अमली सवाल है । उस करने के पहले गुरु की जरूरत है ।

अनिवार्यता बिलकुल नहीं, और अनिवार्यता पूरी है । जानोगे, तब पाओगे हो जाता है बिना गुरु के । लेकिन तब तुम यह भी पाओगे अगर तुम पीछे लौट के देखो कि हो नहीं सकता था, तुम हिम्मत ही न जुटा पाने ।

तीसरा प्रश्न भक्ति साधना भी है और सिद्धि भी । कृपापूर्वक उसके अलग-अलग रूपों को हमें समझाएँ ।

न, भक्ति के कोई रूप नहीं हैं ।

प्रेम के कहीं कोई रूप होते हैं ? प्रेम तो बस एक है । उसका स्वाद एक है ।

भेद तो बुद्धि से होते हैं, हृदय में भेद नहीं होते । हिन्दू की बौद्धिक धारणा अलग, मुसलमान की बौद्धिक धारणा अलग, ईसाई का फलसफा अलग है । वे बुद्धि की बातें हैं । लेकिन जब हिन्दू भक्ति में भरता है और जब मुसलमान भक्ति में भरता है और जब ईसाई भक्ति में भरता है, तो उन भक्तियों में भेद नहीं है, वे एक हैं ।

भक्ति हृदय की बात है । उसका तुम्हारे अन्तस्तल से सम्बंध है, तुम्हारी बुद्धि की बाहरी बातों से नहीं । क्या तुमने सीखा है, उससे सम्बंध नहीं है, क्या तुम्हारा स्वभाव है, उससे सम्बंध है ।

लेकिन यह बात सच है कि भक्ति साधना भी है और सिद्धि भी है। वहाँ पहला कदम ही आखिरी कदम भी है। वहाँ साधन ही साध्य भी है।

भक्ति का अर्थ है परम प्रेम। परम प्रेम की साधना करनी है। और जब सिद्धि होगी तब क्या होगा? परम प्रेम उपलब्ध होगा। परम प्रेम को ही साधना है और परम प्रेम को ही पाना है। प्रेम ही वहाँ मार्ग है और प्रेम ही वहाँ मजिल है।

होना भी यही चाहिए। क्योंकि जब तुम भी किसी यात्रा पर जाते हो तो तुम जो पहला कदम उठाते हो मार्ग पर, उस पहले कदम से मजिल एक कदम करीब आ गयी। तो कदम तुमने मार्ग पर ही नहीं उठाया, मजिल पे भी उठाया। हजार मील की यात्रा तुम पूरी कर लोगे एक-एक कदम उठा-उठा के। एक-एक कदम मजिल करीब आती जाती है। एक दिन तुम मजिल पे पहुँच जाते हो। उसमें कौन-सा कदम सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण था? लगेगा आखिरी कदम, क्योंकि आखिरी कदम ने ही मजिल पे पहुँचाया। नहीं, जितना आखिरी कदम महत्वपूर्ण है, उतना ही पहला कदम भी था। क्योंकि पहला कदम अगर चूक जाता तो आखिरी तो हो ही न पाता।

तुम पानी को गरम कर रहे हो, निनानबे डिग्री तक गरम करते हो, सौ डिग्री पे भाप बन जाता है। क्या सौवीं डिग्री के कारण भाप बनता है? अगर पहली डिग्री न होती तो सौ डिग्री हो नहीं सकता था, निनानबे डिग्री ही रह जाता, भाप नहीं बनता।

पहला कदम आखिरी कदम भी है। मार्ग मजिल भी है।

मार्ग क्या है भक्त का?

भक्त का मार्ग है अहोभाव।

अहोभाव को समझना जरूरी है। वही उसकी विधि है।

साधारणत कामवासना देखती है वह जो तुम्हारे पास नहीं है। कामवासना की दृष्टि अभाव पर रहती है, जो तुम्हारे पास नहीं है उसी को देखती है। भक्ति उलटी स्थिति है, जो तुम्हारे पास है, उसे देखती है।

जब जो तुम्हारे पास नहीं है, तुम उसको देखते हो, तब तुम सदा पीडित रहते हो, क्योंकि इतना कम है, इतना कम है, इतना कम है। और यह तो कम रहेगा ही। लाख रूपये तुम्हारे पास हैं, वह तुम नहीं देखते, अरबों-खरबों जो तुम्हारे पास नहीं हैं, वह तुम देखते हो। जो पत्नी तुम्हारे पास है उसे तुम नहीं देखते, सारे सासार की स्त्रियाँ दिखायी पड़ती हैं।

अगर पति से कोई पूछे टीक-ठीक कि 'तू अपनी पत्नी की शक्ल बता सकता है?' - तो दिक्कत खड़ी हो जाएगी। कौन देखता है अपनों पत्नी का?

पड़ोस की पत्नी का सब नाक-नवशा बता देगा वह । आज उसने कैसी साड़ी पहनी है, यह भी बता देगा । लेकिन अपनी पत्नी ।

‘जो है’ उसे हम देखते ही नहीं, जो नहीं है उसे देखते हैं, इसलिए पीड़ित रहते हैं । क्योंकि ‘नहीं है’ खलता है, काटे की तरह चुभता है, अभाव मालूम पड़ता है । दीनता-दरिद्रता मालूम पड़ती है ।

‘जो है’ अगर उसे देखें तो अहोभाव पैदा होता है । तो इतना दिया है परमात्मा ने कि तुम सिवाय धन्यवाद के और क्या कर सकोगे । तो अचानक तुम पाते हो कि तुम सम्माट हो गये, भिखारी न रहे ।

‘दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है

मेरे अल्हाह ने क्या-क्या मुझे दौलत दी है ।’

और तब दर्द भी सौभाय मालूम होने लगता है ।

‘दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है ।’

पीड़ा में भी एक मिठास है । सुख की तो छोड़ो, दुख में भी एक गहराई है – वह भक्त को दिखायी पड़ती है । स्वर्ग की तो छाड़ो, नरक में भी एक सौंदर्य है – वह भक्त को दिखायी पड़ता है । कामी को तो स्वर्ग में भी स्वर्ग दिखायी नहीं पड़ता, भक्त को नरक में भी स्वर्ग दिखायी पड़ता है ।

और तुम्हे जो दिखायी पड़ता है तुम उसी में जीने लगते हो । क्योंकि आदमी जिसको अनुभव करता है, जिसको देखता है, उसी में जीता है ।

भक्त भाव में जीता है ।

कामी अभाव में जीता है ।

‘दिल दिया, दर्द दिया, दर्द में लज्जत दी है ।’

और तब तो दर्द में भी लज्जत दिखाई पड़ने लगती है ।

दर्द में भी एक काव्य है ।

दर्द का भी एक रहस्य है ।

पीड़ा में भी कुछ अनूठी मिठास है ।

पीड़ा का भी काव्य है ।

और पीड़ा में भी कुछ जन्मता है,

जो बिना पीड़ा के नहीं जन्म सकता ।

‘रज हो, दर्द हो, वहशत हो, जून हो, कुछ हो

आप जिस हाल से खुश हो, वही हाल अच्छा है ।’

और भक्त कहता है, ‘जो परमात्मा ने दिया है रज हो, दर्द हो, वशहत हो, जून हो, कुछ हो ।’

भक्त को जैसे ही यह दिखायी पड़ना शुरू होता है कि कितना विर्या है,

मेरी कोई पात्रता न थी और इतना दिया है, अपात्र था और जीवन दिया, कमाया कुछ भी न था, इतने अनत आनद की क्षमता दी, सौभाग्य दिया कि होऊँ, कि मेरे नासापुट श्वास ले, कि मेरी आँखें सूरज की किरणों को देखे, कि मेरा हृदय प्रेम की पुनक को अनुभव करे, कि मेरे कानों पर सगीत का साक्षात्कार हो ! कुछ भी न था, गून्य से बनाया मझे और सब कुछ दिया ।

‘आप जिस हाल से खुण हो वही हाल अच्छा है ।’

और तब भक्त अपनी काई मर्जी नहीं रखता, परमात्मा की मर्जी ही उसकी मर्जी है ‘वह जहाँ ले जाए वही जाएँगे । वह जो कराये वही करेंगे ।’

भक्त छोड़ ही देता है सब । भक्त उपकरण-पात्र हो जाता है । परमात्मा ही उससे बहता है ।

यही माधना है और यही मिद्दि भी है । जिस दिन यह स्थिति परिपूर्ण हा जाएगी ।

कब होती है स्थिति परिपूर्ण ? यह सौभाग्य कब पूरा होता है ? – जब भक्त की मजिल आ जाती है ।

पहले तो माधारण आदमी, जो कामवासना में जीता है, शिकायत करता है, शिकायत ही उसका जीवन है ।

तुम लागों की बातें सुना, मिवाय शिकायत के उनके जीवन में कुछ भी नहीं है ‘यह नहीं है, यह टीक नहीं है, यह गलत हो रहा ने, यह गलत हो रहा है, सब गलत हो रहा है ।’ गलत-गलत से वे धिर गये हैं । शिकायत ही शिकायत है ।

भक्त की बात सुनो अहोभाव ही अहोभाव है ।

लेकिन जब मजिल आती है, पहले शिकायत खो जाती है, भक्त अहोभाव से भर जाता है, फिर तो अहोभाव भी खो जाता है । क्योंकि धन्यवाद भी देने का भतलब है कि थोड़ी-बहुत शिकायत शेष रही होगी । नहीं तो धन्यवाद क्यों ?

इसे थोड़ा समझे ।

धन्यवाद भी हम तभी देते हैं कि अगर इससे अन्यथा होता तो शिकायत होती । धन्यवाद शिकायत का उलटा है ।

रुमाल तुम्हारे हाथ से गिर गया, किसी ने उठा के दे दिया, तुमने कहा, ‘धन्यवाद !’ इसका भतलब है कि अगर वह उठा के न देता तो शिकायत होती । तो इसका अर्थ यह हुआ कि धन्यवाद ऊपर आ गया है, शिकायत भीतर चली गयी है ।

तो, भक्त जब तक मार्ग पर है, अहोभाव से भरा रहता है ।

शिकायत से बेहतर है अहोभाव, क्योंकि शिकायत में सिर्फ़ पीड़ा होती है, दुख होता है, दर्द होता है, अँधेरा ही अँधेरा होता है । अहोभाव में सब रोशन हो

जाता है, सब खिल जाता है । लेकिन अभी भी कभी है । मजिल पे आते सब बात ही समाप्त हो जाती है, कुछ कहने को नहीं रह जाता ।

जब अहोभाव भी नहीं बचता तब अहोभाव पूरा हो जाता है ।

इस तरह मिटना है कि कुछ भी न बचे । शिकायत तो मरे ही, अहोभाव भी मर जाए ।

‘दिल है तो उसी का है, जिगर है तो उसी का है

अपने का रहे-इश्क में बरबाद जो कर दे ।’

‘दिल है तो उसी का, जिगर है तो उसी का ।’

बस उसी के पास दिल पैदा होगा, उसी के पास जिगर आएगा ।

‘अपने को रहे इश्क में बर्बाद जो कर दे ।’

प्रेम की राह पर जो अपने को पूरा मिटा दे, वही पहली दफा ही पाता है ।

भक्ति का अर्थ है अपने को मिटाने की कला । वह मृत्यु की कला है, अपने को खोने की कला, अपने को छुबाने की कला ।

चौथा प्रश्न मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं एक अध्यपका फल हूँ ?

प्रतीत होने का सवाल नहीं, होआगे ही । नहीं ता कभी के गिर गये होते । फके फल वृक्षों पे थोड़े ही लटके रह जाते हैं । फके फल ता गिर जाते हैं । गिरना ही सबूत है कि फल पक गया, और कोई सबूत नहीं । पीले हो जाने से कोई पक गया, ऐसा मत समझ लेना – गिर जाने से ही ।

उपनिषद कहते हैं ‘त्येन त्यक्तेन मुजीथा ।’ उन्होने ही भागा जिन्होने त्यागा । क्याकि त्याग से ही पता चलता है कि ठीक से भागा, समझ गये कि भोग बेकार है । जिस दिन भोग पक जाता है उस दिन त्याग अपने-आप हा जाता है । जिस दिन फल पक जाता है उस दिन गिर जाना है ।

‘ऐसा प्रतीत होता है ।’

प्रतीत होने की बात ही छोड़ दो, ऐसा जाना कि है, कि मैं एक अध्यपका फल हूँ । निश्चित, हम प्रतीति को सत्य समझो, तो पकने की दौड़ शुरू होगी, तो ‘अयाता’ का क्षण शीघ्र ही पास आ जाएगा ।

आदमी जब पक जाता है तभी पूरा आदमी होता है । जिस दिन तुम पूरे आदमी होते हो उसी दिन गिर जाते हो । आदमी गिरा कि परमात्मा शुरू हो जाता है । जहाँ आदमी का अत है वहाँ परमात्मा की शुरुआत है ।

‘आदमी हैं शुमार से बाहर

कहत हैं फिर भी आदमियत का ।’

बहुत आदमी हैं, लेकिन आदमियत कहाँ? आदमियत की बड़ी कमी है, क्योंकि पके हुए आदमी कहाँ?

‘फर्श से तावर्श मुम्किन है तरक्की ओ उरुजा

फिर फरिश्ता भी बना लेंगे तुझे, इन्सा तो बन।’

—पहले आदमी बन, फिर हम तुझे देवता भी बना लेंगे।

‘फिर फरिश्ता भी बना लेंगे तुझे, इन्सा तो बन।’

पहले पक। फिर देवत्व नो अपने-आप आ जाता है। जो आदमी पूरा हुआ कि वही से देवत्व की शुरुआत है।

कैसे पकोगे?

बड़ा मुश्किल हो गया है पकना। इसलिए मुश्किल हो गया है कि तुम्हारे सारे सस्कार, मारी शिक्षा, सारा धर्म तुम्हे दमन सिखाते हैं, अनुभव नहीं सिखाते।

ऐसा समझो कि जिन-जिन चीजों की जानकारी से तुम्हें जीवन व्यर्थ मालूम पड़ना है, उनकी जानकारी ही पूरी नहीं होने देते।

बच्चे को हम सिखाते हैं ‘क्रोध मत कर।’ सिखाना चाहिए कि क्रोध जितना बन सके कर ने। जब बच्चा क्रोधित हो तो कहना चाहिए ‘खूब कर ले। क्योंकि अभी तो घर है अपना, फिर बाहर की दुनिया में जाएगा, वहाँ तुम्हे लोग क्रोध न करने देंगे, अपने घर में पूरा कर ले। पिता पर, माँ पर, कर ले पूरा। क्योंकि दूसरे लोग इतनी हृषा न करेंगे। तू क्रोध को पूरी तरह कर ले, ताकि क्रोध की जलन का तुझे अनुभव हो जाए और क्रोध की व्यर्थता तुझे दिखायी पड़ जाए।’

और क्रोध जहर है और सिवाय हानि के कुछ लाभ नहीं देता।

और क्रोध मूढ़ता है दूसरे के कसूर के लिए अपने को दण्ड देना है।

क्रोध अज्ञान है क्योंकि क्रोध में तू दूसरे के हाथ में खिलौना हो गया है, कोई भी तेरी कुजी दबा दे सकता है, कोई भी तुझे क्रोधित कर दे सकता है, तो तू दूसरे का गुलाम हो गया, तेरी मालकिपत खो गयी।

मगर यह तो तब होगा जब क्रोध पूरी तरह अनुभव किया जाए।

मेरी प्रतीति ऐसी है कि अगर तुमने जीवन में एक बार भी क्रोध का पूरा अनुभव कर लिया तो पक गया क्रोध, उसके बाद तुम क्रोध न करोगे क्रोध की बात ही खत्म हो गयी। हाथ जल गया।

दूध का जला छाँछ भी फूँक-फूँक के पीने लगता है। लेकिन तुम्हें दूध से ही नहीं जलने दिया गया, छाँछ को फूँक के पीने की तो बात बहुत दूर।

तुम्हे सिखाया गया है, कामवासना में बचो, इसलिए तुम कामवासना में पड़े हो और सड़ते हो।

मैं तुमसे कहता हूँ, बचना मत । कामवासना में पूरे ही उत्तर जाना । ठीक तलहटी तक उत्तर जाना, ताकि और जानने को कुछ शेष न रह जाए । उसे इतनी पूर्णता से जान लेना कि रस ही खो जाए । जिस चीज़ को हम पूरा जान लेते हैं उसमें रस समाप्त हो जाता है । जहाँ-जहाँ रस हो तुम्हारा, जानना कि वहाँ-वहाँ अधूरा जानना हुआ है, इसलिए अधपकापन । और ऐसा जीवन पूरा अधपका रह जाता है ।

पको ।

अनुभव पकाता है ।

अनुभव की धूप पकाती है ।

अनुभव की पीड़ा पकानी है ।

अनुभव की भूल-चूक पकाती है ।

भटकाना पकाता है ।

राह से उत्तर जाना पकाता है ।

जब तुम पक जाते हो, गिर जात हो ।

उम गिरने मे ही – उम गिरने मे ही देवत्व का अण शरू होता है ।

इसलिए अपने को बचाओ मन, जल्दी करो । जहाँ-जहाँ रस हो उसे पूरा-पूरा भोग ही लो । भोगने मे आधा-आधा मत करना ।

मैं देखता हूँ ऐसा ही होता है । मदिर मे बैठने हो तब दुकान की साचते हो, क्योंकि दुकान पे कभी पूरे बैठे नहीं । जब दुकान पे बैठते हों ता मदिर की सोचते हों, क्याकि मदिर मे कभी पूरे बैठे नहीं । जहाँ हा वही अधूरे हो ।

दुकान पे बैठते हो तब तुम्हें बड़ी जान की बातें मूँझने लगती हैं कि ' इसमें क्या रखा है । मसार असार है । ' यह सब सुनी बकवास है । अगर यह तुमने जान लिया होता तो तुम्हारी जिदगी मे ज्ञान हो गयी होती ।

आखिरी प्रश्न क्या भक्ति-साधना के भी कुछ साधन है, कुछ टेकनीक है ? या वह सर्वथा स्वतं स्फूर्त और सहज है ?

नहीं, कोई साधन नहीं है ।

प्रेम काकही कोई साधन होता है ? कोई टेकनीक ? – कोई टेकनीक नहीं होता ।

प्रेम परम साधन है, स्वयं ही

' खाकसारी का है गाफिल ! बहुत ऊँचा मर्तबा ! '

मिट जाने का, ऐ सोन वाले ! बहुत ऊँचाई है मिट जाने की ।

' खाकसारी का है गाफिल ! बहुत ऊँचा मर्तबा

यह जमी बोह है कि जिस पर आसमा कोई नहीं ।

बस भक्ति तो मिट जाना है, ना-कुछ हो जाना है, अपने को शून्य कर लेना है, ताकि परमात्मा तुमसे पूर्ण हो सके, जगह देनी है ताकि उसका प्रवेश हो सके, टूटना है ।

तुमने बहुत चीजों को टूटते देखा है, अभी अपने को टूटते नहीं देखा । तुमने बहुत चीजें मिटते देखी, अपने को मिटते नहीं देखा । तुमने बहुतों को मरते देखा, अपने को मरते नहीं देखा ।

भक्ति, अपने को मरने देखना है । वह मृत्यु का साक्षात्कार है ।

‘हुबाब देख लिया, आबगीना देख लिया

शिकस्ते दिल की नजाकत किसी को क्या मालूम ।’

बुलबुले को देखा पानी के, उसको टूटता देखा । कई बार तुमने देखा होगा पानी के बुलबुले को टूटता ।

छोटे बच्चे सोप के बुलबुले उठाते हैं और उनका टूटना देखते हैं, उनकी रगीनी देखते हैं सूरज की किरणों में । गौर किया ? बुलबुले के भीतर कुछ भी नहीं होता, बाहर भी कुछ नहीं, बाहर भी खाली आकाश है, भीतर भी खाली आकाश है, बीच में एक छोटी-सी पानी की पर्त है ।

‘हुबाब देख लिया’ – ऐसे बुलबुले को टूटते देख लिया । ‘आबगीना देख लिया’ – कभी शीशों को पटक के देखा टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, खड़-खड़ हो जाता है । लेकिन यह कुछ भी नहीं है ।

‘शिकस्ते दिल की नजाकत किसी को क्या मालूम ।’

जिसने दिल को टूटना देखा, उसकी सूक्ष्मता का किसी को कोई भी पता नहीं है । क्योंकि जहाँ दिल टूटता है, जहाँ दिल भी एक बबूले की तरह टूट जाता है, जहाँ तुम्हारा होना एक बबूले की तरह टूट जाता है – वहाँ तुम अचानक पाने हो कि भीतर की आत्मा विराट परमात्मा से मिल गयी, जरा-सी दीवाल थी, खो गयी ।

तुम्हारा अहकार काँच के दर्पण से ज्यादा नहीं है गिरा नहीं कि टूटा । जरा झुको और गिरा दो इसे । मिटना सीखो – बस भक्ति का सूत्र इतना ही है ।

योग में हजार विधियाँ हैं, भक्ति का सूत्र एक है । पर एक काफी है । वैसे ही जैसे कहावत है सौ सुनार की एक लुहार की । ऐसे ही योगी खटखट-खटखट बहुत मचाता है । इसलिए तो उसके कर्म को ‘खटकरम’ कहते हैं । बहुत उपद्रव करता है । न मालूम कितनी विधियाँ बनाता है । इसलिए तो उसकी विधियों को गोरखधधा कहते हैं । वह महायोगी गोरख के नाम से बना है शब्द

गोरखधर्मा । गोरख ने इतनी विधियाँ खोजी कि विधियों में ही कोई खो जाए, पहुँचने की तो बात ही अलग । इसलिए – गोरखधर्मा ।

भक्ति तो एक ही सूत्र जानती है अपने को खो दो । अको । मिटो ।

परमात्मा द्वार पर खड़ा है इधर तुम झुके नहीं, उधर वह मिला नहीं ।
आज इतना ही ।

तीसरा प्रबन्धन

विलाक ११ अनन्दनी, १९७६, श्री राजनीति बालम, श्रीलंका

सा न कामयमाना निरोधस्तपत्वात् ॥ ७ ॥
निरोधस्तु लोकपेदत्यापारन्यास ॥ ८ ॥
तरिम्बननव्यता तद्विरोधिषूदासीनिता य ॥ ९ ॥
अन्याश्रयाणा त्यागोऽनव्यता ॥ १० ॥
लोके वेदेषु तदनुकूलाचरण तद्विरोधिषूदासीनिता ॥ ११ ॥
भवतु निश्चयदात्यर्यादूर्ध्वं शारत्ररक्षणम् ॥ १२ ॥
अन्यथा पातित्याशङ्कया ॥ १३ ॥
लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादित्यापाररत्वाशरीधारणावधि ॥ १४ ॥

बड़ी संयोगशील है भक्ति

जो वन की व्यर्थना जब तक प्रगाढ़ अनुभव न वन जाए तब तक परमात्मा की खोज शुरू नहीं होती। जीवन की व्यर्थना का बोध ही उसकी तरफ पहला कदम है। जब तक ऐसी भ्राति बनी है कि यहाँ कुछ खाज लेंगे, पा लेंगे, यहाँ कुछ भिल जाएगा सपनों की दुनिया में — तब तक परमात्मा भी एक सपना ही है, तब तक तुम उसे खोजने नहीं निकलते, तब तक तुम स्वयं को दाँव पर भी नहीं लगाते।

परमात्मा मुफ्त मिलने वाला नहीं है। जो भी तुम वो, नुम्हारी परिपूर्ण सत्ता जब तक दाँव पर न लग जाए, तब तक परमात्मा से कोई मिलन नहीं। क्योंकि प्रेम इससे कम पर नहीं भिल मकना, और प्रार्थना इससे कम पर शुरू नहीं होती। यह काम जुआरियों का है, दुकानदारों का नहीं। यहाँ पूरी खोने की हिम्मत चाहिए। दीवानगी चाहिए। मस्ती चाहिए।

लेकिन यह तभी सम्भव हो पाता है जब जो नम्हारे पास है, वह व्यर्थ दिखायी पड़ना है, वह कङ्डा-कर्कट हो जाता है, तब तुम उसे पकड़ते नहीं।

करोड़ा लोग परमात्मा के शब्द का उच्चार करते हैं, प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं, लेकिन उसकी कोई झलक नहीं भिलती। क्या पूजा व्यर्थ है? नहीं, करने वालों ने की ही नहीं। क्या प्रार्थना शून्य आकाश में खो जाती है, कोई प्रत्युत्तर नहीं आता? प्रार्थना थी ही नहीं, अन्यथा प्रत्युत्तर तत्क्षण आता है। इधर तुमने पुकारा भी नहीं कि उधर प्रत्युत्तर मिला नहीं। पर तुमने पुकारा ही नहीं। तुम सोचते हो कि तुमने पुकारा, तुम सोचते हो कि तुमने प्रार्थना की, लेकिन कभी तुमने हृदय को दाँव पर लगाया नहीं।

आधे-आधे मन से न होगा। प्रेरे-परे की माँग है।

(तो, जब तक तुम्हें लगता है कि सासार में अभी कुछ भिल सकता है, रस कायम है, जब तक तुम जाएं नहीं, सपने में थोड़े उलझे हो, जब तक तुम्हें सपने में भरोसा है कि यह सच है — तब तक परमात्मा की तरफ आशाओं का प्रवाह, आकांक्षाओं का प्रवाह शुरू नहीं होता, तब तक प्रार्थना तुम्हारी अभीप्सा नहीं

होती, तुम्हारे हृदय की माव-दशा नहीं होती, तब तुम्हारी प्रायना भी तुम्हारी चालाकी, तुम्हारे गणित, तुम्हारी होशियारी का हिसाब होती है। तुम सोचते हो 'चलो, हो-न-हो कही परमात्मा हो ही न, प्रार्थना भी कर लो, पूजा भी कर लो, बिगड़ता क्या है ! हानि क्या है ! अगर लाभ हुआ तो हो जाएगा, न हुआ तो हानि तो कुछ भी नहीं ।'

मैंने मुना है, एक नाटकगृह में ऐसा हुआ कि मध्य नाटक में, जो नाटक का प्रधान पात्र था, उसे हृदय का दौरा पड़ गया, वह मर गया। सयोजक परदे के बाहर आया, उसने क्षमा माँगी कि क्षमा करे, दुख की बान है, हृदय के दौरे के कारण प्रमुख नायक की मृत्यु हो गयी है और नाटक आगे न हो सकेगा। हम क्षमा प्रार्थी हैं, लेकिन हमारे कोई हाथ की बात भी नहीं ।

लोग नाटक में बड़े उलझे थे। अभी तो जिज्ञासा जगी थी, और यह तो बीच में सब टूट गया — जैसे नीद टूट गयी ।

एक स्त्री ने खड़े हो के कहा कि छाती के ऊपर मालिश करो, अभिनेता की ।

मैंनेजर ने कहा, 'देवी जी, वह मर चुका है । अब मालिश में क्या लाभ होगा ।'

उस स्त्री ने कहा, 'लाभ न हो, हानि क्या होगी ?'

बस तुम्हारी प्रार्थना ऐसी ही है कि अगर लाभ न हुआ, काई हँजा नहीं, 'हानि क्या होगी ?'

मरते वक्त नास्तिक भी आस्तिक हो जाते हैं, इस भय से कि कहीं परमात्मा हो ही न ! बूढ़े होते-होते सभी नास्तिक आस्तिक होने लगते हैं, क्याकि जैसे-जैसे मौत करीब आती है और पैर लड़खड़ाने हैं और अधेरा घना होने लगता है और आकाश के नारे छुपने लगते हैं, मब आशाआ के दीये बुझने लगते हैं और लगता है कि अब सिर्फ कब्र के अनिरिक्त और कोई जगह न रही, तो नास्तिक भी परमात्मा का स्मरण करने लगता है कौन जाने, शायद हो !

लेकिन 'शायद' से प्रार्थना नहीं बनती । 'शायद' में समझदारी तो समझ में आती है, प्रेम समझ में नहीं आता ।

समझदारी से कोई कभी समझदार नहीं हुआ । समझदारी के कारण ही तो तुम नासमझ बने हो । तुम्हारी समझदारी ही मँझी पड़ रही है ।

तो, परमात्मा की तरफ अगर तुम हाँशियारी से जा रहे हो, बही-खाते का हिसाब वहा भी फैला रहे हों, सोचते हो कि ठीक है, ससार को भी सँभाल ले, परमात्मा को भी सँभाल ले, दोनों नावों पर सवार हो जाएँ — तो तुम मुश्किल में पड़ोगे । तुम मुश्किल में पड़े हो, क्योंकि मैं देखता हूँ, तुम दोनों नावों में आधे-आधे खड़े हो ।

नाव पर तो एक ही चढ़ा जाता है... एक ही नाव पर चढ़ा जाता है, अन्यथा दुविधा पैदा हो जाती है। दो दिशाओं से चलोगे तो टूट जाओगे, खड़-खड़ हो जाओगे, बिखर जाओगे। और जब तुम ही खड़-खड़ हो गये, बिखर गये, जब तुम्हारे भीतर ही एकतानता न रही, तो प्रार्थना कौन करेगा, पूजा कौन करेगा? भीड़ थोड़े ही पूजा करती है, भीतर की एकता से पूजा उठती है, भीतर की अखड़ता से सुगंध उठती है प्रार्थना की।

तो इस बात को पहले ख्याल में ले लेना चाहिए तो ही भक्ति-सूत्र समझ में आ सकेगे।

यह जिदगी अगर तुम्हे अभी भी रसपूर्ण मालूम पड़ती है तो थोड़ा और जी नो। आज नहीं कल, रस टूट ही जाएगा।

जितना आदमी सजग हो उतने जल्दी रस टूट जाना है। जितना आदमी बेहोश हो, उतनी देर तक रस टिकता है। बेहोशी रस का सहारा है। जितनी तुम्हारे भीतर बुद्धिमानी हो—होशियारी नहीं कह रहा है, चालाकी नहीं कह रहा है, बुद्धिमत्ता हो—उतनी जल्दी तुम जीवन के रस से चुक जाओगे। और जब जीवन का रस चुकता है तभी तुम्हारी रसधार जो जीवन में नियोजित थी, मुक्त होती है। अब समार में जाने को कोई जगह न बची, अब वह रास्ता रास्ता न रहा, अब चीजों की तरफ दौड़ने की बात न रही, अब सग्रह को बड़ा करना है, मकान बड़ा बनाना है, घन इकट्ठा करना है, पद-प्रतिष्ठा पानी है—यह सब व्यर्थ हुआ, अब तुम अपने घर की तरफ लौटते हो।

‘घर बयाबा मे बनाया नहीं हमने लेकिन

‘ जिसको घर समझे हुए थे वह बयाबा निकला।’

कोई रेगिस्तान मे घर नहीं बनाया था, लेकिन जिसको घर समझे हुए थे वही रेगिस्तान निकला, वही बीरान निकला।

जिस दिन तुम्हे अपना घर बयाबा मालूम पड़े, बीरान मालूम पड़े बीरान है, सिफ़ तुम अपने सपनों के कारण उसे सजाये हो। जरा चौक के देखो जिसे तुम घर कह रहे हो, वह घर नहीं है, ज्यादा-से-ज्यादा सराय है, आज टिके हो कल विदा हो जाना पड़ेगा। जो छिन ही जाना है, उसको अपना कहना किस मुँह से सभव है? जहाँ से उखड़ ही जाना पड़ेगा, जहाँ क्षण-भर को ठहरने का अवसर मिला है, पड़ाव हो सकता है, मजिल नहीं है, और मजिल के पहले घर कहाँ। घर तो वही हो सकता है जहाँ पहुँचे तो पहुँचे, जिसके आगे जाने को कुछ और न रहे।

परमात्मा के अतिरिक्त कोई घर नहीं हो सकता।

मुझसे लोग पूछते हैं, ‘सन्यास की परिभाषा क्या?’ तो मैं कहता हूँ, ‘दो तरह

के घर बनाने वाले हैं, दो तरह के गृहस्थ हैं : एक जो ससार में घर बनाते हैं, उनको हम गृहस्थी कहते हैं, एक जो परमात्मा से घर बनाते हैं, वे भी गृहस्थ हैं, उनको हम सन्यासी कहते हैं — मिर्फ भेद करने को । घर अलग-अलग जगह बनाते हैं । एक है जो पानी पर जीवन को लिखते हैं, लिख भी नहीं पाते और मिट जाता है, और एक है जो जीवन की शाश्वतता पर लिखते हैं । एक है जो रेत पर घर बनाते हैं, जिनकी दुनियाद ही डगमगा रही है, और एक है जो जीवन की शाश्वतता को आधार की तरह स्वीकार करते हैं ।

पहला सूत्र है 'वह भक्ति कामनायुक्त नहीं है, ब्याकि वह निरोध-स्वरूपा है ।'

ससार यानी कामना ।

ससार का ठीक अर्थ समझ लो, क्योंकि तुम्हे ससार का भी अर्थ गलत ही बताया गया है ।

काई घर छाड़ के भाग जाता है तो वह कहना है, ससार छोड़ दिया । कोई पत्नी को छोड़ के भाग जाता है तो वह कहना है, ससार छोड़ दिया । काश, ससार इतना स्थूल होता । काश, तुम्हारी पत्नी के छाड़ जाने से ससार छूट जाता । काश, बात इतनी सम्मोहनी होती । तो मन्यास बहुत बहुमूल्य नहीं हाना ।

ससार न तो पत्नी मे है, न घर मे है, न धन मे है, न वाजार मे है, न दुकान मे है — ससार तुम्हारी कामना मे है । जब तुम मागते हा कि मुझे कुछ चाहिए, जब तक तुम माचते हो कि मेरा सताप, मैंग मुख, मुझे कुछ मिल जाए, उसमे है, तब तक तुम ससार मे हो ।

जब तक माँग है तब तक ससार है ।

ससार का अर्थ है तुम्हारा हृदय एक विकापात्र है, जिसको लिये तुम माँगते फिरते हो — कभी इस द्वार, कभी उस द्वार । कितने टुकराये जाते हो ! लेकिन फिर-फिर मैंभल के माँगने लगते हो । क्योंकि एक ही तुम्हारे मन में धारणा है कि और ज्यादा, और ज्यादा मिल जाए, तो शायद मुख हो ।

'और' की दौड़ ससार है ।

तो तुम मदिर मे भी बैठ जाओ और वहाँ भी अगर तुम माँग रहे हो तो तुम ससार मे ही हो । तुम हिमालय पर चले जाओ, वहाँ भी आँख बद करके अगर तुम माँग ही रहे हो, परमात्मा से कह रहे हो, 'और द, स्वर्ग दे, मीक्ष दे,' इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम क्या माँगते हो । ससार का कोई सबध इससे नहीं है कि तुम क्या माँगते हो, ससार का सबध वस इससे है कि तुम माँगते हो ।

इस बात को ठीक मे समझ लेना, अन्यथा ससार छोड़ने का ढौंग भी हो जाता है और ससार छूटता भी नहीं ।

ससार तुम्हारे भीतर है, बाहर नहीं । ससार तुम्हारी इस माँग में है कि 'मैं जैमा हूँ वैसा काफी नहीं हूँ, कुछ चाहिए जो मुझे पूरा करे, मैं अधूरा हूँ, अतृप्त हूँ, अस्तुष्ट हूँ, कुछ मिल जाए जो मुझे पूरा करे, तृप्त करे, सतुष्ट करे ।'

स्वयं को अधूरा मानने में और आशा रखने में कि कुछ मिलेगा जो पूरा कर देगा, बस वहाँ ससार है ।

माँग छूटी । ससार छूटा । तब कोई घर छोड़ने की ज़रूरत नहीं है, न पत्नी को छोड़ने की ज़रूरत, न पति को, न बच्चों को — उनका कोई कसूर नहीं है । .. घर में रहते तुम ससार से मुक्त न्हीं जाते हों । पत्नी के पास बैठे तुम ससार से मुक्त हो जाते हों । बच्चों को सजाते-सें-मालते तुम ससार से मुक्त हो जाते हों । क्योंकि ससार से मुक्त होने का केवल इतना ही अर्थ है कि अब तुम तृप्त हो, जैसे हो, जो हो, तुम्हारे होने में अब कोई माँग नहीं है, तुम्हारे होने में अब कोई आक़ाशा नहीं है, तुम्हारा होना कामनातुर नहीं है, तुम अब एक कामनाओं का फैलाव नहीं हो, विस्तार नहीं हो — तुम वम हो तृप्त, यही क्षण, और जैसे तुम हो, पर्याप्त से भी ज्यादा है ।

तब तुम्हारी प्रार्थना धन्यवाद बन जाती है, माँग नहीं । तब तुम मंदिर कुछ माँगने नहीं जाते, तुम उमे धन्यवाद देने जाते हो कि 'तूने इनना दिया, अपेक्षा से ज्यादा दिया, जो कभी माँगा नहीं था वह दिया । तेरे देने का कोई अत नहीं । हमारा पात्र ही छोटा पड़ता जाता है और तू भरे जा रहा है ।'

तब भी तुम रोते हों जा के मंदिर में, लेकिन तब तुम्हारे आँसुओं का सौंदर्य और ।

जब तुम माँग से राते हों, तब तुम्हारे आँसू गदे हैं, दीन है, दरिद्र है । जब तुम अहोभाव से राते हों, तुम्हारे आँसुओं का मूल्य काई मोती नहीं चुका सकते । तब तुम्हारा एक-एक आँसू बहुमूल्य है, हीरा है । आँसू वही है, लेकिन अहोभाव से भरे हुए हृदय से जब आता है, तो रूपान्तरित हो जाता है ।

तुम जरा फर्क़ करके देखना । तुम दुख में भी रोये हो, पीड़ा में रोये हो, अस्तोष में रोये हो, शिकायत में रोये हो, कभी अहोभाव में भी रो कर देखना, कभी आनन्द में भी रो के देखना — और तुम पाओगे तुम्हारे बदलने ही आँसुओं का ढग भी बदल जाता है । तब आँसू फूलों की तरह आते हैं । तब आँसुओं में एक सुगंध होती है जो इस लोक की नहीं है ।

मीरा भी रोती है, पर मीरा के आँसू भिखारी के आँसू नहीं हैं । चैतन्य भी रोते हैं, लेकिन चैतन्य के आँसू दीन-दरिद्र नहीं हैं कुछ माँग से नहीं निकल रहे हैं, किसी अभाव से पैदा नहीं हुए हैं—किसी बड़ी गहन भाव-दशा से जन्मे हैं । गगा का जल भी उतना पवित्र नहीं है ।

‘वह भक्ति कामनायुक्त नहीं है, क्योंकि वह निरोधस्वरूपा है।’

निरोधस्वरूपः ।—

साधारणत भक्ति-सूत्र पर व्याख्या करने वालों ने निरोधस्वरूपा का अर्थ किया है कि जिन्होंने सब त्याग दिया, छोड़ दिया । नहीं, मेरा बैसा अर्थ नहीं है । जरा-सा फर्क करता हूँ, लेकिन फर्क बहुत बड़ा है । समझोगे तो उससे बड़ा फर्क नहीं हो सकता ।

निरोधस्वरूपा का अर्थ यह नहीं है कि जिन्होंने छोड़ दिया—निरोधस्वरूपा का अर्थ है कि जिनसे छूट गया । निरोध और त्याग का बही फर्क है । त्याग का अर्थ होता है छोड़ा, निरोध का अर्थ होता है छूटा, व्यर्थ हुआ । जो चीज व्यर्थ हो-जाती है उसे छोड़ना थोड़े ही पड़ता है, छूट जाती है ।

सुबह तुम रोज घर का कूड़ा-कर्कट इकट्ठा करके बाहर फेंक आते हो तो तुम कोई जा के अखवारों के दफ्तर मे खबर नहीं देते कि आज फिर त्याग कर दिया कूड़े-कर्कट का, डेर-का-डेर त्याग कर दिया । तुम जाओगे तो लोग तुम्हे पागल समझेगे । अगर कूड़ा-कर्कट है तो फिर छोड़ा, इसकी बात ही क्यों उठाते हो ?

तो जो आदमी कहता है, ‘मैंने त्याग किया’, वह आदमी अभी भी निरोध को उपलब्ध नहीं हुआ । क्योंकि त्याग करने का अर्थ ही यह होता है कि अभी भी सार्थकता शेष थी ।

अगर कोई कहता है कि मैंने बड़ा स्वर्ण छोड़ा, बड़े महल छोड़े, गोर से देखना स्वर्ण अभी भी स्वर्ण था, महल अभी भी महल थे । ‘छोड़ा’! छोड़ना बड़ी चेष्टा से हुआ । चेष्टा का अर्थ ही यह होता है कि रस अभी कायम था, फल पका न था, कच्चा था, तोड़ना पड़ा ।

पका फल गिरता है, कच्चा फल तोड़ना पड़ता है ।

तो त्यागी तो सभी कच्चे हैं । निरोध को उपलब्ध व्यक्ति पका हुआ व्यक्ति है । त्याग और निरोध का यही फर्क है ।

नारद कह सकते थे, ‘त्यागस्वरूपा है’, पर उन्होंने नहीं कहा । ‘निरोध-स्वरूपा’! व्यर्थ हो गयी जो चीज, वह गिर जाती है, उसका निरोध हो जाता है ।

सुबह तुम जागते हो ता सपनों का त्याग थोड़े ही करते हो, कि जाग के तुम कहते हों, ‘बस रात भर के सपने छोड़ता हूँ ।’ जागे कि निरोध हुआ । जागते ही तुमने पाया कि सपने टूट गये, सपने व्यर्थ हो गये, सपने सिद्ध हो गये कि सपने थे, बात समाप्त हुई, अब उनकी चर्चा क्या करनी है ।

जो त्याग का हिसाब रखते हैं, समझना, भोगी ही हैं—शीर्षासन करते हुए, उलटे खड़े हो गये हैं, भोगी ही है ।

एक सन्यासी को मैं जानता हूँ जो भूलते ही नहीं । कोई चालोस साल

पहले उन्होंने छोड़ा था ससार-छोड़ा था, निरोध नहीं हुआ था-चालीस साल बीत गये, अभी भी छूटा नहीं। छोड़ा हुआ कभी छूटता ही नहीं। वे अभी भी कहते रहते हैं कि मैंने लाखों रुपये पे लात मार दी। मैंने उनसे एक दिन कहा कि लात लग नहीं पायी, तुमने मारी होगी, चूक गयी। उन्होंने कहा, 'क्या भतलब ?'

'चालीस साल हो गये छूट गया, छूट गया। इसकी चर्चा क्यों खींचते हों, इसे रोज़-रोज़ याद क्यों करते हों ?' रस कायम है। लाखों मे अभी भी मूल्य है। अभी भी तुम दूसरों को भूलते नहीं बताना कि मैंने लाखों पे लात मारी। तुमने बैक-बैलेस कायम रखा है। गिनती जारी है। नहीं, यह त्याग तो है, निरोध नहीं।'

त्याग झूठा सिक्का है निरोध का। निरोध बड़ी अद्भुत घटना है।

रामकृष्ण के पास एक आदमी आया, हजार सोने की अशर्फिर्या लाया था, दान करने, उनको देने। उन्होंने कहा, 'मुझे जरूरत नहीं। तू एक काम कर, गगों मे फेंक आ।' वह गया, लेकिन घटा-भर हो गया, लौटा नहीं, तो रामकृष्ण ने आदमी भेजे कि देखो, क्या हुआ, कहीं दुख मे ढूब तो नहीं मरा। गये तो वह एक-एक अशर्फी को बजा-बजा के फेंक रहा था, भीड़ इकट्ठी हो गयी थी, लोग चमत्कृत हो रहे थे। ना उन्होंने आ के कहा कि वह एक-एक अशर्फी गिन-गिन के फेंक रहा है।

तो रामकृष्ण गये और उसमे कहा, 'नाममङ्ग ! जैंब काई इकट्ठा करता है तब तो गिनना समझ मे आता है। लेकिन जब फेंकना ही है तो क्या गिन के फेंकना ? नौ सौ निनानवे थी कि हजार थी, क्या फर्क पड़ता है ! कोई हिसाब रखना है पीछे कि किननी फेंकी, कि कितनी दान की ? अगर हिसाब रखना है तो फेंक ही मत, अपने घर ले जा। जब हिसाब ही नहीं छूटता है तो अशर्फिर्या छोड़ने से कुछ भी न होगा। अमली चीज़ हिसाब का छूटना है, असली चीज़ अशर्फियों का छूटना नहीं है।'

जीसम ने कहा है 'तुम्हारा एक हाथ जो दान करे, दूसरे हाथ को पता न पडे।'

सूफी फकीर कहते हैं 'नेकी कर, कुएँ मे डाल। हिसाब मत रख। किया भूल, कुएँ मे डाल दे। बात खत्म हो गयी, जैसे कभी हुई ही न थी।'

लेकिन तुम जाओ अपने त्यागियों के पास, महात्माओं के पास, तुम उनके पास पूरा हिसाब पाओगे। हिसाब ठीक भी नहीं पाओगे, बहुत बढ़ाया-चढ़ाया हुआ है। हजार छोड़े होगे तो लाख हो गये हैं। अब पूछना कौन है ? और त्याग की परीक्षा भी क्या है, कसीटी भी क्या है ? तुम्हारे पास लाख रुपये हैं तो तुम रुपये दिखा सकते हो, लेकिन जिसने लाख छोड़े हैं उसके पास प्रमाण क्या है कि उसने लाख

छोडे कि दस लाख छोडे ? न केवल महात्मागण ऐसा करते हैं, महात्माओं के शिष्य उसको बढ़ाते चले जाते हैं।

महावीर ने महल छाडा, धन-सम्पत्ति छोड़ी, जैनियों ने जो शास्त्र लिखे हैं, उनमें इतना बढ़ा-चढ़ा के निखा है, वह सरासर झूठ है। क्योंकि महावीर का साम्राज्य बडा छोटा-मा था, कोई बड़ा नहीं था। महावीर के समय भारत में दो हजार राज्य थे। कोई बहुत बड़ा नहीं था, एक छाटी डिम्बिस्ट में ज्यादा नहीं, एक छोटे जिले से ज्यादा नहीं था। इतने हाथी-घड़े जितने जैनियों ने लिखे हैं, अगर हाते तो आदमियों के रहने की जगह न रह जाती। लेकिन बढ़-चढ़ जाता है।

कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध हुआ। हिन्दू उमर्की जो कहनी बताते हैं, उसको अगर सुनो तो ऐसा लगता है कि उस युद्ध के लिए पूरी पृथ्वी कम पड़ेगी। कुरुक्षेत्र का छोटा-मा मैदान, उसमें अटारह अश्वौहिणी सेनाएँ बन नहीं सकती लड़ना तो दूर, अगर वे प्रेम भी करना चाहें, शात खें हो कर, तो भी सभव नहीं है। लड़ने के लिए योड़ी जगह चाहिए, स्थान चाहिए। लेकिन बढ़ता जाता है।

बुद्ध के भक्ता ने जो लिखा है वह सच नहीं है, क्योंकि बुद्ध की भी जगह बड़ी छोटी थी, वह कोई बहुत बड़ा साम्राज्य नहीं था। लेकिन जिस तरह की कहानियां हैं ओर कहानियाँ बढ़ती चली गयी हैं।

क्या ? इन कहानियों को बढ़ाने का कारण क्या है ? कारण साफ है कि हम त्याग की भी धन की मात्रा से ही समझ पाते हैं, और कोई उपाय नहीं है।

ममक्षा, अगर महावीर फकीर के घर पैदा होते और पास धन न होना, तो तुम कैसे जानते कि उन्होंने त्याग किया ? वे घर छोड़ देते, लेकिन त्यागी तो नहीं हो सकते थे। महात्यागी तुम कैसे कहते ? या ही नहीं कुछ तो छोड़ा क्या ?

तुम्हे भीतर के रहस्य तो दिखायी नहीं पड़ते बस बाहर की चीज़ों दिखायी पड़ती है। तब तो इसका जरूर हुआ कि केवल धनी ही त्यागा हा सकत है। तब तो इसका अर्थ हुआ कि त्यागी होने के पहले बहुत धनी हा जाना ज़रूरा है। तब तो इसका अर्थ हुआ कि परमात्मा के जगत में मा अन्तर धन का ही मूल्य है, उसी में हिसाब लगेगा।

एक फकीर ने मव छोड़ दिया, उसके पास दा पैसे थे। महावीर न भी मव छोड़ दिग़ा, उनके पास फरोड़ रुपये थे। परमात्मा के सामने हिमाव में महावीर जीत जाएगे, गरीब हार जाएगा। दो पैसे छाड़े। इन्होंने कराड़ छाड़े।

नहीं, परमात्मा के राज्य में तुमने क्या छोड़ा, इसका सवाल नहीं है, छोड़ा या नहीं छाडा, बस इनका ही सवाल है, छोडा या छूटा, इसका ही सवाल है।

निरोध का अर्थ है छूट जाता है।

जिन्होने ससार के सत्य को देखा, उनके जीवन में निरोध आ जाता है। उस निरोध को नारद ने भक्ति का स्वभाव कहा।

‘वह भक्ति का मनायुक्त नहीं है, और निरोधस्वरूप है।’ उसका स्वरूप है निरोध।

जैसे ही ससार से कामना हटती है, वही कामना परमात्मा की दिशा में प्रार्थना बन जाती है, वही ऊर्जा। कोई अलग ऊर्जा नहीं है। वे ही हाथ जो भिक्षापात्र बने थे, प्रार्थना में जुड़ जाते हैं। वही हृदय जो धन-सम्पत्ति को माँगता किरता था, परम अहोभाव में झुक जाता है। वही जीवन-ऊर्जा जो नीचे की तरफ भागती थी, खाई-खड़ खोजती थी, आकाश की तरफ उठने लगती है।

‘तेरी राह किसने बतायी न पूछ
दिले मुज्तरब राहबर हो गया।’

— तेरी राह किसने बतायी, यह मन पूछ—प्यासा दिल सद्गुरु हो गया, व्याकुल हृदय मार्गदर्शक बन गया।

‘तेरी राह किसने बतायी न पूछ
दिले मुज्तरब गहबर हो गया।’

जिम दिन ससार से तुम्हारा रम टूटता है, व्याकुलता जगती है परमात्मा की। वही मार्गदर्शक हो जाता है। वही तुम्हे ले चलता है। उसी के सहारे लोग में हुँचते हैं।

ससार की माँग करता हुआ व्यक्ति उन हजार चीजों की माँग में चाहे तो परमात्मा की माँग को भी जोड़ सकता है, लेकिन वह फेहरिश्त में एक नाम होगा—लम्बी फेहरिश्त में। और मेरे ख्याल से आँखोंही होगा। अगर तुम्हारी फेहरिश्त में हजार नाम हैं तो वह एक हजार एक होगा।

मर गाम लोग आते हैं और वे कहते हैं, ‘हम प्रार्थना करता चाहते हैं, समय कहाँ।’ इन्ही लागों को मैं सिनेमा में बैठे देखता हूँ। इन्ही लोगों को मैं कलबधर में नाश खेलते देखता हूँ। इन्ही लागों को अखबार को पढ़ते देखता हूँ सुबह से उठ के। इन्ही लोगों का व्यथ की गपशप में सलग्न देखता हूँ। ये ही लोग हजार तरह के उपद्रव में जुड़ जाते हैं, लडाई-झगड़ों में जुड़ जाते हैं। हिन्दू मुसलमानों को काटने नगते हैं, मुसलमान हिन्दुओं को काटने लगते हैं। ये ही लोग। लेकिन जब प्रार्थना का सवाल उठता है तो कहते हैं, ‘समय कहाँ।’

वे क्या कह रहे हैं? वे यह कह रहे हैं कि और बड़ी चीजे हैं परमात्मा से, समय पहले उनको दे, फिर बच जाए तो परमात्मा को दे। वे यह नहीं कह रहे हैं कि समय नहीं है, वे यह कह रहे हैं, समय तो है—समय तो सभी के पास बराबर है—लेकिन और चीजे ज्यादा ज़रूरी हैं। परमात्मा क्यूँ मे बिलकुल अन्तिम खड़ा।

है । पहले धन इकट्ठा कर लें, मकान बना ले, इज्जत-प्रतिष्ठा सम्भाल लें, फिर । ऐसे परमात्मा प्रतीक्षा ही करता रहता है, 'फिर' कभी आता नहीं - आयेगा ही नहीं, क्योंकि इस सासार की दौड़ कभी पूरी नहीं होती ।

यहाँ कुछ भी पूरा होने वाला नहीं है । यहाँ तो जितना पियो उतनी प्यास बढ़ती जाती है । यहाँ तो जितना भोजन करो उतनी भूख बढ़ती जाती है । यहाँ तो जितनी तिजाड़ी भरती जाए, उतना ही आदमी भीतर कृपण होता चला जाता है । दुनिया बड़ी अद्भुत है । यहाँ गरीब के पास तो अमीर का दिल मिल भी जाए, अमीर के पास बिलकुल गरीब का दिल होता है ।

इन हजार उपद्रवों से अगर तुम सोचते हो कि परमात्मा को भी एक आकृक्षा बना लेगे, तो सम्भव नहीं है । परमात्मा तो अभीप्सा बने, तो ही तुम अधिकारी होने हो । अभीप्सा का अर्थ होता है सारी इच्छाएँ उसी की इच्छा में परिणत हो जाएँ, सारे नदी-नाने उसी के सागर में गिर जाएँ, उसके अतिरिक्त कुछ भी न सूझे, उसके अतिरिक्त हृदय में कोई आवाज न रह, उसके अतिरिक्त इवामो में कोई स्वर न बजे, उसका ही एकतारा बजने लगे । ।

फकीरों के पास तुमने एकतारा देखा है । कभी माचा न होगा, एकतारा प्रतीक है । परमात्मा के लिए एक ही तार काफी है । सितार में और बहुत तार होते हैं, वीणा में बहुत तार होते हैं और सारगी में बहुत तार होते हैं - वे सासार के प्रतीक हैं, एकतारा परमात्मा का ।

बस एकतारा । एक ही अभीप्सा का स्वर बजने लगे, दूसरी कार्ड ध्वनि भी न रह जाए, तो ही -

' रग रग में नेशे इश्क है, ऐ चारागर मेरे ।

यह दर्द वह नहीं, कि कही हो, कही न हा । '

' रग रग में नेशे इश्क है, ऐ चारागर मेरे ।

यह दर्द वह नहीं, कि कही हो, कही न हो । '

जब परमात्मा का दर्द तुम्हारे रग-रग में समा जाता है, जब तुम्हारा रोआँ-रोआँ उसी को पुकारता है, सोते और जागते अहर्निश उसका ही स्मरण बना रहता है, करो कुछ भी, याद उसकी ही, जाओ कही, याद उसकी ही, बैठो कि उठो कि सोओ, याद उसकी ही - जब रग-रग में ऐसा समा जाता है, तभी तुमने पात्रता पायी, तभी तुम अधिकारी हुए ।

और ध्यान रखना, आज नहीं कर, इस महा क्राति में उत्तरना ही पड़ेगा । लाख तुम कोशिश करो इस सासार को घर बना लेने की, मफलता मिलने वाली नहीं है । कोई कभी मफल नहीं हो पाया । सपने को सच कितना ही मानो, सपना एक दिन टूटता ही है । सपने का स्वभाव ही टूट जाना है । तुम उसे सच मान के थोड़ी-बहुत

देर नीद ले सकते हो, लेकिन सदा के लिए यह नीद नहीं हो सकती । सपने का स्वभाव ही शुरू होना, समाप्त होना है । इस ससार को, तुम लाख कोशिश करो हम सब कोशिश कर रहे हैं हम, हमारी सारी कोशिश यही है कि बुद्ध, नारद, मीरा, इन सबको हम गलत सिद्ध कर दे ।

हम सबकी कोशिश क्या है? हमारी कोशिश यही है कि हम सिद्ध कर देंगे, समार मेरे सुख है, हम सिद्ध कर देंगे कि परमात्मा आवश्यक नहीं है, हम सिद्ध कर देंगे कि जीवन परमात्मा के बिना पर्याप्त है, हम सिद्ध कर देंगे कि धन में है कुछ, कि यह सपना नहीं है, माया नहीं है, सत्य है ।

छोड़ो इस मृदता को, कभी कोई कर नहीं पाया । लेकिन इस करने की कोशिश में लोग अपने जीवन को गँवा देते हैं ।

‘हजार तरह तख्युल ने करवटे बदली
कफस कफस ही रहा, फिर भी आशिया न हुआ ।’

नहीं, यह घर न बन पाएगा । यह जगह कारागृह है, यह घर न बन पाएगी । यहाँ तुम अजनबी हो । यहाँ तुम लाख उपाय करो, और कल्पनाएँ कितनी ही करवटे बदले हजार तरह से कल्पनाएँ सपने को संजोएँ, लेकिन यह जाल कल्पना का ही रहेगा ।

कल्पना तुम्हारी है, सत्य परमात्मा का है । जब तक तुम सोचोगे-विचारोगे, तब तक तुम सपने मेरहोगे । जब तुम सोच-विचार छोड़ोगे और जागोगे, तब तुम जानोगे, सत्य क्या है ।

सत्य मुक्तिदायी है । और जो मुक्त करे वही घर है । जहाँ स्वतंत्रता हो वही घर है ।

कारागृह मेरे और घर मेरे फकँ क्या है? दीवाले तो उन्हीं इंटो की बनी हैं, दरवाजे उन्हीं लकडियों के बने हैं ।

कारागृह और घर मेरे फकँ क्या है? घर मेरे तुम मुक्त हो, कारागृह मेरे तुम मुक्त नहीं हो – बस इतना ही फकँ है ।

घर स्वतंत्रता है, कारागृह गुलामी है ।

‘हजार तरह तख्युल ने करवटे बदली
कफस कफस ही रहा, फिर भी आशिया न हुआ ।’

कारागृह मेरे तुम बदलते रहो कल्पनाएँ अपनी, सोचते रहो, जाले बुनते रहो सपनों के, मजाते रहो भीतर से कारागृह को – नहीं, घर न हो पाएगा ।

जो जितनी जल्दी जाग जाए इस सम्बध मेरे उतना ही सौभाग्यशाली है, जितनी देर लगती है उतना ही समय व्यर्थ जाता है, जितनी देर लगती है उतनी ही गलत आदतें मजबूत होती चली जाती हैं; जितनी देर लगती है उतने ही बघन

और भी सबन होते चले जाते हैं और तुम्हारी शक्ति क्षीण होती चली जाती है उन्हे तोड़ने की । इसलिए बुढाये की प्रतीक्षा मत करना । अगर समझ आए तो जब समझ आ जाए, क्षण-भर मी स्थगित मत करना उम समझ को ।

‘लौकिक और वैदिक समस्त कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं ।’

सम्झुत का मूल बहुत अद्भुत है । हिन्दी मे अनुवाद जो लोग करते हैं, उन्हे त्याग और निरोध का कोई भेद साफ नहीं है ।

सम्झुत का मूल कहता है

लोक, वेद, व्यापार, इस सबका निरोध हो जाए, न्याम हो जाए, वही भक्ति है ।

इसे समझे हम ।

‘इस लोक और परलोक के व्यापार का निरोध हो जाए ।’

इस लोक का व्यापार है धन की दौड़ है, पद की दौड़ है । परलोक का भी व्यापार है सुख, आनंद, मोक्ष, वे भी यात्रा ही है, वे भी दौड़ है । किसी तरह इस समार मे तुम ऊबते हो, ऊब नहीं पाए कि तुम दूसरे समार के सपने देखने शुरू कर देते हो । इसी तरह सपने देखने वालों ने स्वर्ग बनाये, स्वर्ग मे हजार कल्पनाओं को जगह दी, जो-जो यहाँ पूरा नहीं हो पाया है, वह-वह वहाँ रख लिया है । और कभी-कभी तो कल्पनाएँ बड़ी मूढ़तापूर्ण मालूम होती है कि विचारों तो बड़ी हेरानी होती है ।

मुमलमान कहते हैं, उनके स्वर्ग मे वहिष्ठ में, शराब के चश्मे वह रह हैं । यहाँ पीने नहीं देते । यहाँ कहते हैं पाप और वहाँ चश्म बहाते हैं । तुम साच मकते हो, बात बिलकुल सीधी है, यह चश्मा की कल्पना किसने की होगी । यह उन्होंने की है जिनका यहाँ पीने मे रस था और त्याग कर दिया । यह सीधी-सी बात है, सीधा मनोविज्ञान है । यहाँ पीना चाहते थे, लेकिन ढर की वजह से पी न पाये । यहाँ पीना चाहते थे लेकिन हिम्मत न जुटा पाये, ता अब स्वग मे चश्मे बहा रहे है । यहाँ चुल्लू-चुल्लू मिलनी है, वहाँ डुबकी लगाएँगे ।

‘जाहिद के कस्रे-जुहूद की बूनियाद है यही

मस्जिद बहुत करीब थी, मैखाना दूर था ।’

वह जिनको तुम त्यागी समझते हो, उनके त्याग में अधिकतर तो त्याग यही है कि मस्जिद करीब थी और मधुशाला दूर थी इतना ही । इसका अथ यह हुआ कि धर्म का शिक्षण देने वाले लोग तो पाय थे, शराब का विज्ञापन करने वाले लोग दूर थे । माँ-बाप, समाज, परिवार, मदिर-मस्जिद, स्कूल-विद्यालय, वे सब शराब के खिलाफ हैं, वे सब मदिर और मस्जिद के पक्ष मे है । इसलिए बैठ तो

गये महिर मे, बैठ तो गये मस्तिष्ठ मे, लेकिन मन का राग, मन की कामना, कोई शिक्षण से थोड़े ही मिटती है, अनुभव से मिटती है । सोचते तो शराब की ही हैं, यहाँ नहीं मिली, तो अब कल्पना मे फैलाव करते हैं स्वर्ग मे मिलेगी ।

हिन्दुओं का स्वर्ग है ।

और बड़े मजे की बान है, अगर तुम किसी भी जाति का स्वर्ग ठीक से पहचान लो तो तुम यह भी समझ जाओगे उस जाति ने किन चीजों की वज़ना की है । उस जाति के शास्त्रों को पढ़ने की ज़रूरत नहीं, उनका स्वर्ग समझ लो, फौरन पता चल जाएगा कि इस जाति ने किन-किन चीजों को जबरदस्ती त्यागा है ।

हिन्दुओं के स्वर्ग मे कल्पवृक्ष है, जहाँ सभी कामनाएँ पूरी हो जाता है, बैठ जाओ उसके नीचे बम । ऐसा भी नहीं कि कुछ समय का फासला पड़ता हो, समय लगता ही नहीं है । तुमने यहाँ कामना की कि वहाँ पूरी हुई । तुमने कहा, 'भोजन आ जाए', यान आ गये । बस तुम यहाँ कह भी नहीं पाये ये और याल मौजूद हा गये ।

हिन्दुओं के स्वर्ग मे कल्पवृक्ष है – क्यों? क्योंकि हिन्दुओं ने सभी इच्छाओं के त्याग का आग्रह किया है । सभी इच्छाओं का त्याग । स्वभावत जो किसी तरह अपने को समझा-बुझा के त्यागी हा जाएगा, वह इसी आशा मे जी रहा है कि कभी तो मरेंगे, यह देह नों कोई ज्यादा दिन चलने वाली नहीं है, और कुछ साल बीत जाएँ, फिर कल्पवृक्ष है । फिर उसके नीचे बैठ जाएँगे ।

तुमन कभी देखा, दिन मे कभी उपवास कर लो तो तुम रात-भर भाजन के सपने देखते हो । ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो तो सपने मे स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ दिवायी पड़ती हैं ।

ये सपने है कल्पवृक्ष । शराब के चम्भे । ये इस बात की खबर दे रहे हैं कि तुमने किस-किस चीज को जबरदस्ती छोड़ दिया है – अनुभव से नहीं, पक कर नहीं । सस्कार, शिक्षण, दबाव ।

'मस्तिष्ठ बहुत करीब थी, मैखाना दूर था ।' उतने दूर जाने की तुम हिम्मत न जुटा पाये । जाते तो प्रतिष्ठा दाँव पे लगती थी । तो तुमने एक तरकीब निकाली कि यहाँ मस्तिष्ठ मे रहो, स्वर्ग मे मैखाने मे रह लेंगे । ऐसे तुमने अपन को समझाया । ऐसे तुमने समझौता किया ।

तुम्हारे स्वर्ग तुम्हारी कल्पनाओं के जाल हैं, और तुम्हारे नरक ? स्वर्ग तुमने अपने लिए बनाये हैं और नरक दूसरों के लिए – वे भी बड़े विचारणीय हैं ।

हिन्दुओं का नरक है, तो वहाँ भयकर आग जल रही है, सतत अग्नि जलती है, बुझती नहीं । उसमें जलाये जा रहे हैं लोग । भारत गरमी से पीड़ित देश है ।

यहाँ सूर्य तपता है । तो शीतलता स्वर्ग में शीतलमद बहार बहती है । सुबह ही बनी रहती है स्वर्ग में, दुपहर नहीं आती । वस सुबह की ही ताजगी बनी रहती है । फूल खिलते हैं, मुरझाते नहीं । और शीतल हवा बहती रहती है । नरक में भयकर लपटे हैं । वह गरम देश की धारणा है ।

तिब्बती, वे नहीं बनाते, वे नहीं कहते कि नरक में लपटे हैं । उनका स्वर्ग गरम और ऊर्ध्व है क्योंकि ठडे मुल्क के लोग मरे जा रहे हैं ठड़ से, नरक में बफ़-ही-बफ़ जमी है, उसमें लोग गल रहे हैं बफ़ मे ।

न तो कही कोई स्वर्ग है, न कही कोई नरक है । स्वर्ग तुम बनाते हो अपने लिए । जो-जो कामनाएँ तुम पूरी करना चाहते थे और नहीं कर पाये, तो तुम स्वर्ग में कर लेते हो । स्वर्ग हिन्दुओं का बिलकुल एयरकड़ीशड है, बातानुकूलित है । वहाँ कोई राप नहीं लगती । पसीना नहीं आता स्वर्ग में – पसीना आता ही नहीं ।

और जा तुम छोड़ दिये हो, अपने लिए कल्पना कर रहे हो, और दूसरों ने नहीं छाड़ा समझो कि तुम शराब पीना चाहते थे और नहीं पी पाये, तो तुमने अपने लिए तो स्वर्ग में इनजाम कर लिया और जो पी रहे हैं, उनके लिए क्या करोगे? उनका भी दण्ड तो मिलना ही चाहिए, क्योंकि तुमने त्याग किया, उन्होंने त्याग नहीं किया, तो उनको नरक की लपटों में जलाया जाएगा । और वहाँ शराब तो दूर, पानी भी पीने को न मिलेगा । आग की लपटे होंगी, कण्ठ आग से भरा होगा, और पानी नहीं मिलेगा । पानी की बूँद नहीं मिलेगी ।

इससे पता चलता है तुम्हारे मन का, तुम्हारी खुद की परेशानी का, तुम्हारी हिस्सा का, तुम्हारी वासना का । न किमी स्वर्ग का इससे पता चलता है, न किसी नरक का इससे पता चलता है ।

भक्ति तो उसे उपलब्ध होती है जिसको न इस ससार की कोई कामना रही न उस ससार की । जिसकी कामना का व्यापार निरुद्ध हो गया, जिसने कहा, 'अब हमें कुछ मांगना ही नहीं है, न यहाँ न वहाँ', मांग ही छोड़ दी – उसे सब मिल जाता है 'यही' ।

'उस प्रियतम भगवान में अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता को भी निरोध कहते हैं ।'

बिलकुल ठीक ।

'उस प्रियतम भगवान में अनन्यता' । जैसे हम उसके साथ एक हो गये, अनन्य । जरा भी भेद न रह जाए । रक्ती-भर भी फासला न रह जाए । मैं और तू का भी फासला न रह जाए ।

'उस प्रियतम में अनन्यता अपने-आप ही उसके प्रतिकूल विषय में उदासीनता बन जाती है ।'

‘उदासीनता’ शब्द को समझ लेना जरूरी है। उदासीनता विरोध का मार्ग है।

जिसको तुम त्यागी कहते हो, वह उदासीन नहीं होता। जो आदमी शराब का त्याग करता है, वह शराब के प्रति उदासीन नहीं होता, शराब के प्रति वह विरोध में होता है – उदासीन कैसे होगा? – विरोध में होता है।

उदासीन का तो अर्थ है – इसे कोई प्रयोजन नहीं। विरोध का अर्थ है शराब जहर है।

जो आदमी कामवासना में उदासीन होता है, वह कामवासना के विरोध में नहीं होता। अगर कोई दूसरा कामवासना में जा रहा है तो इससे उसके मन में निदा पैदा नहीं होती – ‘यह उसकी मर्जी है।’ यह उसको समझ है। उसका समय न आया होगा, कभी आयेगा।’ उस पे करुणा आ सकती है, कोध नहीं आता।

जो आदमी धन में उदासीन है, उसके मन में धन की कोई निदा नहीं होती। वह धन को पाप नहीं कहता। वह इतना ही कहता है कि धन की उपयोगिता है, लेकिन वह उपयोगिता बड़ी क्षणिक है। वह इतना ही कहता है कि धन सब कुछ नहीं है। वह यह नहीं कहता कि धन कुछ भी नहीं है। वह इतना ही कहता है, समार में उपयोगी होगा, लेकिन मसार सब कुछ नहीं है। वह धन के विरोध में नहीं है।

ऐसे त्यागी हैं कि अगर उनके मामने तुम रुपये ले जाओ तो वे आँख बद कर लेते हैं। अब यह उदासीनता न हुई। ऐसे त्यागी हैं जो धन को हाथ से नहीं छूते। यह उदासीनता न हुई।

एक आदमी मुझे मिनने आया – एक सन्यासी। कोई दो वर्ष हुए। तो मैंने उन्हें कहा कि ठीक है, कभी एक शिविर में आ जाओ तो ध्यान करो। उन्होंने कहा कि यह जरा मुश्किल है। उनके साथ एक आदमी और था। तो मैंने पूछा, ‘इसमें क्या मुश्किल है?’

उन्होंने कहा, ‘मैं पैसा नहीं छूता। तो देन में सफर करो तो टिकट भी खरीदनी पड़ती है।’

तो वे बोले, ‘यह आदमी साथ है। पैसे यह रखता है, मैं छूता भी नहीं।

तो यह साथ आने को तैयार हो तो ही मैं शिविर में आ सकता हूँ।’

अब यह तो पैसे से भी ज्यादा बड़ी गुलामी हो गयी। पैसा, और यह आदमी भी उलटा। इससे तो अकेले पैसे की गुलामी भी ठीक थी, अब यह कम-से-कम आदमी एक और उपद्रव है। और पैसे इन्हीं के हैं, रखता वह है। यह दोहरी गुलामी हुई।

उदासीनता का अर्थ है हो तो हो ठीक, न हो तो न हो ठीक । उदासीनता में कोई पक्षपात नहीं है । उदासीनता बड़ी अद्भुत बात है । वह वैराग्य का परम लक्षण है ।

इसलिए अगर तुम किसी विरागी में पाओ उदासीनता की जगह विरोध, तो समझना कि चक हा गयी । अगर वह धबडाये तो समझना कि रस कायम है, जिस चौक में, धबडाता है उसी का रम कायम है । अगर धन छने से डर तो समझना कि धन का लोभ भीतर मौजूद है । अगर स्त्री को देखने से डरे तो समझना कि कामवासना भीतर मौजूद है । क्योंकि हम उसी में डरते हैं जिसमें गिरने की हमें सभावना मालूम होती है, शका मालूम होती है ।

उदासीनता का अर्थ है कोई फर्क नहीं पड़ता ।

ऐसा हुआ कि बुद्ध एक वृथ के नीचे ध्यान करते थे, पूर्णमा की रात थी, और पास के नगर से कुछ यवक, धनपतियों के लड़के, एक वेश्या को ने के जगत में आ गये थे – मौज-रंग करते । वे ना शराब पी ने मन हो गये, वेश्या ने मौका देखा कि वे ना शराब पी के होश खो दिये हैं, वह भाग बड़ी हुई ।

जब सुबह होने के करीब आयी और उनका ठड़ लगी और होश आया और देखा कि वह वेश्या तो भाग गयी है, तो वे उसकी खोज में निकले । उसी रास्त पर बुद्ध ध्यान करते थे, उनके पास आगे और उन्हाने कहा कि ‘यहाँ से कोई स्त्री तो नहीं निकली ।’

बुद्ध ने कहा, ‘कोई निकला जरूर, लेकिन स्त्री थी या पुरुष, यह ज़रा कहना मुश्किल है – क्योंकि मेरा रस ही न रहा । कोई निकला जरूर, लेकिन स्त्री थी या पुरुष, इसमें मेरा रस न रहा ।’

यह उदासीनता है ।

बुद्ध ने कहा कि जब तक मेरा रस था, तब तक गौर से देखता भी था कौन कौन है । अब मेरा काई रम नहीं है ।

जब रस खो जाता है तो भिक एक उदासीनता होती है, एक शान्ति तुम्हें धेर लेती है । उसमें कोई पक्षपात नहीं होता ।

‘उस प्रियतम मेरे अनन्यता और उमरे प्रतिकूल विषय में उदासीनता को भी निरोध कहते हैं ।’

‘पीना-न-पीना एक है जाह्नवि ! खता मुआफ

नीयत जब एतवार के काबिल नहीं रही ।’

जब तक नीयत पर एतवार न हो, जब तक अपने भीतर की म्याति पे भरासा न हो तब तक तुम कसमे भी ले लो, ता कुछ फर्क नहीं पड़ता, बत धारण कर लो, कोई फर्क नहीं पड़ता । क्योंकि असली बात तो नीयत है । तुम

पियो-न पियो, इससे कोई फक्क नहीं पड़ता, घर में रहो कि बाहर रहो, इससे कोई फक्क नहीं पड़ता, पूजा करो कि न करो, इससे कोई फक्क नहीं पड़ता – असली सवाल तुम्हारे भीतर की नीयत का है। अगर नीयत साफ है तो तुम कहीं भी रहो, मंदिर ही पाओगे। अगर नीयत साफ नहीं है, तो तुम मंदिर में रहो, तुम वेश्या-गृह में ही रहोगे। क्योंकि आदमी अपनी नीयत से इहता है, अपने भीतर की मनोदशा में रहता है।

‘उस प्रियतम मे अनन्यता...।’

‘कैसी तलब, कहाँ की तलब, किसलिए तलब हम हैं तो वह नहीं है, वह है तो हम नहीं।’

एक ही बच सकता है प्रेम मे, दो नहीं। या तो परमात्मा बचेगा तो तुम न बचोगे, या तुम बचोगे तो परमात्मा न बचेगा।

‘कैसी तलब, कहाँ की तलब, किसलिए तलब हम हैं तो वह नहीं है, वह है तो हम नहीं।’

अनन्यता का अर्थ है एक ही बचेगा।

‘प्रेम गली अति साकरी तामे दो न समाय’ – उसमें दो नहीं समा सकते।

तो भक्त धीरे-धीरे भगवान हो जाता है, भगवान धीरे-धीरे भक्त हो जाता है।

रामकृष्ण पूजा करते हैं तो भोग लगाने के पहले खुद चख लेते हैं। मंदिर के ट्रिस्ट्यो ने बुलाया कि ‘यह तो पूजा न हुई। किस शास्त्र मे लिखा है? भगवान को भोग पहले लगाओ, फिर जो बचे, वह तुम भोजन करो। लेकिन यह तो बात तो गलत हो रही है। यह उलटा हो रहा है। तुम भगवान को झूठा भोग लगा रहे हो! तुम पहले चखते हो।’

रामकृष्ण ने कहा, ‘सम्भाल लो फिर अपनी नौकरी, मैं चला। क्योंकि मेरी माँ जब भी भोजन बनाती थी तो पहले खुद चखती थी, फिर मुझे देती थी। जब माँ का प्रेम इतनी फिक्र करता था तो यह प्रेम तो उससे भी बड़ा है। मैं बिना चखे भाग नहीं लगा सकता भगवान को, पता नहीं लगाने योग्य है भी या नहीं।’

ऐसी अनन्यता, ऐसी निकटता, इतनी समीपता, कि धीरे-धीरे सीमाएँ खो जाएँ।

तो कभी ऐसा होता कि रामकृष्ण दिन-भर नाचते रहते और कभी ऐसा होता कि पखवाडा बीत जाता और मंदिर में न जाते। फिर बुलाये गये कि यह क्या मामला है, मंदिर खाली पड़ा रहता है, पूजा नहीं होती। रामकृष्ण कहते, ‘जब होती है तब होती है, जब नहीं होती तब नहीं होती। जब ‘वह’ बुलाता है और जब अनन्यता का भाव जगता है तभी ..। जब दूरी रहती है, तब क्या

सार ? जब मैं रहता हूँ तब पूजा किसकी ? जब वही बचता है तभी होती है । अब यह मेरे हाथ में नहीं है कि वही बचे । जब होता है तब होता है । सहजस्फूर्त है ।

रामकृष्ण जैसा पुजारी फिर किमी मंदिर को न मिलेगा । दक्षिणेश्वर के भगवान धन्यमाणी हैं कि रामकृष्ण जैसा पुजारी मिला ।

अनन्य-भाव का अर्थ है 'मैं' और 'तू' दो नहीं, एक ही बचता है । वस्तुत दानों तरफ से प्रेमी-प्रेयसी या भक्त और भगवान, दोनों खोते जाते हैं और दोनों के बीच में एक नये सत्य का आविर्भाव होता है, एक नये ज्योतिमंय चैतन्य का आविर्भाव होता है, जिसमें भक्त भी खो गया होता है एक कोने से, दूसरे कोने से भगवान भी खो गया होता है ।

भक्त और भगवान तो द्वंत की भाषा है, भक्ति तो अद्वंत है ।

' उस प्रीतम मेरे अनन्यता और उसके प्रतिकूल विषय मेरे उदासीनता को भी निरोध कहते हैं । '

और जिसने भी उम्मेद साथ ऐसी एकनानता माध नी, वह समार के प्रति उदासीन हो जाता है, छोड़ना नहीं पड़ता ससार, न्यागना नहीं पड़ता ससार, सब छूट जाता है, व्यर्थ हा जाता है, सार्थकता ही नहीं रह जाती, छोड़ने को क्या बचता है ।

' अपने प्रीतम को छाड़ कर दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम अनन्यता है । ' परमात्मा तुम्हे ऐसा भर दे कि तुम्हारे भीतर कोई रक्ती-भर जगह न बचे जो उससे भरी हुई नहीं है, तुम लबालब उससे भर जाओ, तुम ऊपर से बहने लगो ऐसे भर जाओ, कोई दूसरा आश्रय न बचे, किमी दूसरे की तरफ काई और लगाव न रह जाए, सभी लगाव उस एक के प्रति ही समर्पित हो जाए ।

' अपने प्रीतम को छाड़ कर दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम अनन्यता है । '

' देखता था मैं निगाहों से हर एक जा तुझका ।

देखता था मैं निगाहों से हर एक जा तुझका ।

और उन्हीं में तू निहा था, मुझे मालम न था ।'

' आँखों से खोजता था तुझे मब जगह और यह मुझे पता नहीं था कि तू मेरी आँखों में ही बैठा हुआ है । तू खोजने वाले में ही छिपा है । तू मेरे देखने में ही छिपा है । और मैं निगाहों से खोजता था हर एक जा तुझका, और यह पता न था ।'

तुम जब तक परमात्मा को बाहर खोज रहे हो, खोज न पाओगे । वह उन निगाहों में ही छिपा है, उस दृष्टि में ही, उस देखन की क्षमता में ही । वह तुम्हारे हाथ में छिपा है । वह तुम्हारे हाथों में छिपा है ।

' देखता था मैं निगाहों से हर एक जा तुझको ।

और उन्ही मे तू निहा था, मुझे मालूम न था ।'

तुम मदिर हो ।

परमात्मा को छोजने किसी और मदिर मे जाने की ज़रूरत नही है, अपने ही भीतर डूब कर पाया है जिन्होने भी पाया है ।

अगर तुम सारे आसरे छोड दो, सारे महारे छोड दो, तुम अपने मे ही डूब जाओगे । जो भी तुम पकड़े हो आसरे की तरह, वही तुम्हें अपने से बाहर अटकाये हैं है । धन का आसरा है, पद का आसरा है, मित्र का आसरा है, सगी-साथियो का, परिवार का आसरा है, पति-पत्नी का आसरा है । जिन-जिन आसरो को तुम सोच रहे हो कि ये सहारे हैं, सुरक्षा है, वही तुम्हें बाहर अटकाये है ।

छोड दो सब आसरे ।

बे-आसरे हो जाओ ।

बे-महारा हो जाओ ।

अमहाय हो जाओ ।

और अचानक तुम पाओगे तुम्हें अपने ही भीतर वह भूमि मिल गयी जिसे जन्मो-जन्मो खाजते थे और न पाते थे, अपने ही भीतर वह हाथ मिल गया जो शाश्वत है । अब किसी और आसरे की कोई ज़रूरत न रही ।

‘लौकिक और वैदिक कर्मो मे भगवान के अनुकूल कर्म करना ही उसके प्रतिकूल विषय मे उदासीनता है ।’

और फिर ऐसा व्यक्ति, जिसकी अनन्यता सध गयी परमात्मा से, जिसका तार मिल गया, तन्मयता बँध गयी, एक सामजस्य आ गया, हाथ परमात्मा के हाथ मे हो गया जिसका-ऐसा व्यक्ति फिर उसके ही अनुकूल कर्म करना है ‘वह’ जो करवाता है वही करता है । फिर उसका अपना कर्ता-भाव चला जाता है । फिर वह कहता है, ‘जो वह करवाये । जो उसकी मर्जी । जो नाच नचाये, वही मेरा जीवन है ।’ फिर अपनी तरफ से निर्णय लेता, अपनी तरफ से विचार करना, सम्भव नही है ।

‘विधि-निषेध से अतीत अलौकिक प्रेमप्राप्ति का मन मे दृढ निश्चय हो जाने के बाद भी शास्त्र की रक्षा करनी चाहिए, अन्यथा गिर जाने की सभावना है ।’

यह सूत्र महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऐसा घटना है । जब तुम्हे ऐसा लगता है कि तुम परमात्मा के अनुसार चलने लगे, जब तुम्हे ऐसा लगता है कि अब तो तुम एक हो गये, तासारी विधि-निषेध के पार हो गये, अब समाज का कोई नियम तुम पे नागू नही होता ।

सच है, कोई नियम लागू नही होता, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि तुम नियम छोड के चलन लगो । तुम पर नियम नही लागू होता, समाज तो अब भी

नियम में जीता है। तुम जिस समाज में हो, उस समाज के लिए तुम अडचन मत बनो, सहारा बनो, उस समाज के लिए तुम उपद्रव का कारण न बनो, मार्ग बनो।

इसलिए नारद कहते हैं, 'विधि-निषेध से अतीत ।' कोई नियम लागू नहीं होता प्रेम पर, भक्ति पर। वह पहुँच गया वहा, सब नियमों के पार, परम नियम उसे मिल गया प्रेम का, अब उसे पे कोई नियम लागू नहीं होता। लेकिन किर भी, अगर वह रास्ते पे चले तो उसे बाँह ही चलना चाहिए, क्योंकि सारा ट्रैफिक बाँह वी चल रहा है। अगर वह दाँह चलने लगे, वह कहे कि हम तो भक्ति को उपलब्ध हो गये, तो खतरा है - खतरा है पतन का। अमल में इस तरह का आग्रह वही आदमी करेगा जो अभी उपलब्ध ही नहीं हुआ है, वस्तुत उपलब्ध नहीं हुआ है। क्योंकि उपलब्ध हो के तो कोई नहीं गिरता, असम्भव है गिरना।

इसे थोड़ा गौर से समझ लेना।

जो उपलब्ध नहीं हुआ है परमात्मा को, वही इस तरह का आग्रह करेगा कि मुझ पे तो कोई नियम लागू नहीं होता। यह अहकार की नयी उद्घोषणा है। यह अहकार का नया खेन शुरू हुआ। एक नया समार चला अब। वह कहेगा, 'मुझ पे कोई नियम लागू नहीं होता। मैं तो अब उसके वी महारे जीता हूँ। इस-लिए जो 'वह' करवाता है वही करना है।'

इसकी आड मे कही तुम अपने अहकार को मत छिपा लेना। कही ऐसा न हो कि यह भी धोखा हो तुम्हारा।

इसनिए सूत्र बहता है सजग रहना। ऐसी स्थिति भी आ जाए कि तुम विधि-निषेध के पार हो जाओ, तो भी शास्त्र की रक्षा जारी रखना। उम रक्षा मे तुम्हारी रक्षा है। उम रक्षा मे दूसरो की रक्षा तो है ही, तुम्हारी भी रक्षा है। क्यो? वयोकि तुम अपने अहकार को सजाने-सँवारने वा नया उपाय न पा सकोगे।

और स्मरण रखना, जो विधि-निषेध के पार हो गया, वह विधि निषेध को तोड़ने की चिता मे नहीं पड़ता। जो पार ही हो गया, वह चिता क्या करेगा तोड़ने की। वह कमल जैसा पार हो जाता है पानी के। जो पार हो गया है वह जीवन को चुपचाप स्वीकार कर लेता है जैसा है, लोग जैसे जी रहे हैं, ठीक है।

छोटे बच्चे खिलौनो से खेल रहे हैं, तुम वहां जाने हो, तुम जानते हो, वे खिलौने हैं, तुम जानते हो, खेल के नियम सब बनाये हुए हैं। लेकिन बाप भी छोटे बच्चो के साथ जब खेलता है तो खेल के नियम मानता है। वह यह नहीं कह सकता कि मैं कोई छोटा बच्चा नहीं हूँ, मैं नियम के बाहर हूँ। छोटे बच्चे के साथ छोटे बच्चो की तरह ही व्यवहार करेगा - यही प्रौढ का लक्षण है।

ता जो व्यक्ति वस्तुत भक्ति के परम सूत्र को उपलब्ध हाता है, वह तोड नहीं देता जीवन की व्यवस्था को। वह काई अराजकता नहीं ले आता।

जीसस ने कहा है कि मैं शास्त्र को खड़ित करने नहीं, पूर्ण करने आया हूँ ।

वह शास्त्र के मूल स्वभाव का पुन पुन उद्घाटन करता है । वह शास्त्र के खो गये मूर्त्रों को पुन पुन पुनरुज्जीवित करता है । वह शास्त्र पर जम गयी धूल को हटाता है । वह शास्त्र के दर्पण को निखारता है ताकि फिर तुम शास्त्र के दर्पण में अपने चेहर को देख सको, किर तुम अपने को पहचान सको । सदियों में शास्त्र पर जो धूल जम जाती है, सदियों में शास्त्र पर जो व्याख्या की परते जम जाती है, उनका फिर वह अलग कर देता है, लेकिन शास्त्र की रक्षा करता है । क्योंकि शास्त्र तो उनके बचन हैं जिन्होंने जाना । वे बुद्धपुरुषों के बचन हैं । व्याख्याएँ कितनी ही गलत हो गयी हों, लोगों ने कितना हो गलत अर्थ लिया हो, लेकिन मूल तो बुद्धपुरुषों स आता है, मूल तो गलत नहीं हो सकता ।

मुझसे लोग पूछते हैं कि मैं क्यों शास्त्रों की व्याख्या कर रहा हूँ । इसीलिए कि जो धूल जमी हो वह अलग हो जाए, ताकि मैं तुम्हे उनका खालिस सोना जाहिर कर सकूँ । अगर मैं तुम्हे कभी शास्त्र के विपरीत भी मालूम पड़, तो समझना कि तुम्हार समझने में कहीं भूल हो गयी है, तो समझना कि तुमने शास्त्र का जो अर्थ समझा था वह अर्थ शास्त्र का न था, इसलिए मैं विपरीत मालूम पड़ रहा हूँ । अन्यथा मैं भी तुमसे कहता हूँ कि शास्त्र का खड़न करने नहीं, शास्त्र का शृङ्खल तम स्वरूप आविष्कृत करने की सारी चेष्टा है ।

‘लौकिक कर्मों को भी तब तक (बाह्य ज्ञान रहने तक) विधिपूर्वक करना चाहिए, पर भोजनादि काय, जब तक शरीर रहेगा, होते रहेंगे ।’

जो बाह्य कर्म हैं, उन्हे साधारणत जैसी विधि हो, जैसी समाज की धारणा हो, वैसे ही करते जाना चाहिए – बाह्य ज्ञान रहने तक । क्योंकि भक्ति में ऐसी घडियाँ भी आती हैं जब बाह्य ज्ञान विलकुल खो जाता है, तब सूत्र लागू नहीं होता । क्योंकि ऐसी भी घडियाँ आती हैं जब मस्ती ऐसे शिखर छूनी है कि बाह्य ज्ञान ही नहीं रह जाता । गमकृष्ण छह-छह दिन के लिए बेहोश हो जाने थे । तब फिर अपेक्षा नहीं करनी चाहिए । तब वे अपने मे इतने लोन हो जाते थे, इतने दूर निकल जाते थे कि उनके शरीर को ही सम्भाल के रखना पड़ता था ।

‘लेकिन भोजनादि कायं तब तक होते रहेंगे जब तक शरीर है ।’

इस सूत्र से यह समझ लो कि जीवन में वासना तो हटनी चाहिए, ज़रूरते हटाने का सवाल नहीं है । भोजन तो ज़रूरी है । वस्त्र ज़रूरी है । छप्पर ज़रूरी है । जो ज़रूरी है उसका कोई निषेध नहीं है, निषेध है गैरज़रूरी का, जो कि केवल मन की आकॉक्शा से पैदा होता है, जिसके बिना तुम रह सकते थे, मजे से रह सकते थे, जिसके बिना कोई अड़चन न पड़ती थी, शायद और भी मजे से रह सकते ।

एक बहुत बड़ा विचारक हुआ अन्डुअस हक्सले । कैनीकोर्निया मे उसका

मकान था, और जीवन-भर उसने बड़ी बहुमूल्य चीजें इकट्ठी की थीं—पुराने शास्त्र, बहुमूल्य अनूठी किताबें, चित्र, पेटिंग, मूर्तियाँ, शिल्प। बड़ा सवेदनशील व्यक्ति था। उसके पास बहुमूल्य भण्डार या अनूठी चीजों का। सारे मसार से उसने इकट्ठा किया था। उसकी कीमत कूतनी आसान नहीं। अचानक एक दिन आग लग गयी और मब जल के राख हो गया।

अल्डअम हक्सले ने कहा कि मैंने नो सोचा था कि मैं मर जाऊँगा इसके दुख मे, लेकिन अचानक, जिसकी कभी अपेक्षा भी न की थी, ऐसा अनभव हुआ कि जैसे एक बोझ हलका हो गया। एक बोझ! वह खुद भी चौका यह अनुभव देख के। सामने ही जल रहा है उसका विशाल सग्रहालय और वह सामने खड़ा है लपटों के, और उसने कहा कि मुझे लगा कि मैं एकदम हलका हो गया हूँ और मुझे ऐसा लगा जैसे मैं स्वच्छ हो गया हूँ। 'आइ फैंट कुनीन'। एक तानगी।

तुम्हें पता नहीं है कि बहुन-मी गैरजरूरी चीजों ने तुम्हे जीवन ना नहीं दिया है, बोझ दिया है। उनके बिना तम ज्यादा स्पस्थ हो सकत थे। उनके बिना तुम ज्यादा प्रसन्न हो सकते थे। उन्हाने सिफ तनाव दिया है, चिना दी है।

जल्लर का छोड़ने वा काई सवाल नहीं है। भक्ति काई जगरदस्ती त्याग नहीं सिखाती। यह भक्ति की ख्वारी है और उसकी स्वामार्विकता है। जीवन की सामान्य जरूरते पूरी होनी ही चाहिए।

ता भक्ति काई जगरदस्ती नहीं करती कि तुम नग्न खड़ा जाओ, तुम उपवास करो, तुम शरीर का तपाजो व्यथ—ऐसी दुष्टता, ऐसी हिंसा भक्ति नहीं सिखाती।

भक्ति कहती है यह जो परमात्मा का मदिर है तुम्हारा घर, इसकी माज-सम्हाल जरूरी है। यह उसका घर है। इस तुम्हे 'उसके' योग्य स्वच्छ और ताजा और सुंदर रखना चाहिए। लेकिन जरूरत और वासना मे फर्क समझना आवश्यक है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्रो के प्रेम मे था, शादी करना चाहता था। तो उम स्त्री ने कहा, 'न सरुद्दीन, और तो मब टीक है, एक बात मैं पूछना चाहती हूँ, कि तुम उन पुरुषों मे तो नहीं हों जो शादी के बाद पत्नी को दफतरो मे काम करवाते हैं या नौकरी करवाते हैं?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'भूल के भी इस तरह का मत मोच। कभी भी मेरी पत्नी काम पे जाने वाली नहीं है। हाँ, एक बात और, अगर कपड़ा, रोटी, मकान जैसी विलास की चीजों की तूने माँग की तो फिर मैं नहीं जानना। विलास की चीजें—कपड़ा, रोटी, मकान। अन्यथा मेरी पत्नी कभी काम करने जाने वाली नहीं है। लेकिन रोटी, कपड़ा, मकान, ऐसी विलास की चीजे मत माँगना।'

विलास और ज़रूरत में फर्क करना ज़रूरी है ।

भक्ति स्वस्थ सहज मार्ग है । स्वाभाविक, अस्वाभाविक नहीं । भक्ति तुम जैसे हो, तुम्हारी ज़रूरतों को स्वीकार करती है । कहीं कोई अकारण अपने को कष्ट देना, पीड़ा देना, व्यर्थ के ननाव खड़े करने, उनसे आदमी परमात्मा के प्रेम को उपलब्ध नहीं होता, उनसे तो और मधन अहकार को उपलब्ध होता है ।

भक्ति त्याग नहीं है, निरोध है जा अपने से छठ जाए । जो व्यर्थ है छूट जाएगा, जो साथक है, ज़रूरी है, शेष रहेगा ।

इसालिए आखिरी सूत्र है 'लौकिक कर्मों को भी तब तक (बाह्य ज्ञान रहने तक) विधिपूर्वक करना चाहिए, पर माजनादि कार्य जब तक शरीर रहेगा, होते रहेंगे ।'

भक्ति की यह स्वाभाविकता ही उसके प्रभाव का कारण है ।

भक्ति बड़ो सबेदनशील है । वह जीवन को कुस्त करने के लिए उत्सुक नहीं है, जीवन का सौंदर्य स्वीकार है । क्योंकि जीवन अन्यथा परमात्मा का ही है, अन्तत वही छिपा ह । उसको ध्यान में रख कर ही चलना उचित है ।

जो व्यर्थ है वह छूट जाए, जो सार्थक है वह समृद्ध जाए, जो कूड़ा-कक्कट है, वह अपने-आप गिर जाए, जो बहुमूल्य ह वह बचा रहे ।

भक्ति को अगर तुम ठीक से ममझों तो तुम पाओगे धर्म की उतनी सहज, स्वाभाविक और कोई व्यवस्था नहीं है ।

आज इतना ही ।

चौथा प्रवचन

दिनांक १४ जनवरी, १९७६, श्री राजनीश आश्रम, पूना

सहजरपूर्ति अनुशासन है भक्ति

पहला प्रश्न जीवन की व्यर्थता का बोध ही क्या जीवन में अर्थवत्ता का प्रारम्भ-विन्दु बन जाता है ?

बन सकता है, न भी बने । सम्भावना खुलती है, अनिवार्यता नहीं है । जीवन की व्यर्थना दिखायी पड़े तो परमात्मा की खोज शुरू हो सकती है—शुरू होगी ही, ऐसा ज़रूरी नहीं है ।

जीवन की व्यर्थता पना चले तो आदमी निराश भी हो सकता है, आशा ही छोड़ दे, व्यर्थता में ही जीने लगे, व्यर्थता को स्वीकार कर ने, खोज के लिए कदम न उठाये—तो जीवन नो दूभर हो जाएगा, बोझ हो जाएगा, परमात्मा को यात्रा न होगी ।

इनना नो सच है कि जिसने जीवन की व्यर्थता नहीं जानी, वह परमात्मा की खोज पर नहीं जाएगा, जाने को कोई ज़रूरत नहीं है । अभी जीवन में ही रस आता हो तो किसी और रस की तरफ आख उठाने का कारण नहीं है ।

फिर जीवन की व्यर्थना समझ में आये तो दो सम्भावनाएँ हैं या तो तुम उमीं व्यर्थता में रुक के बैठ जाओ और या उस व्यर्थता के पार साथकता की खोज करो—तुम पर निर्भर हैं ।

नास्तिक और आस्तिक का यही फ़क़ं है, यही फ़क़ं की रेखा है ।

नास्तिक वह है जिसे जीवन की व्यर्थता तो दिखायी पड़ी, लेकिन आगे जाने की, ऊपर उठने की, खोज करने की सामर्थ्य नहीं है, रुक गया, नहीं 'मेरे रुक गया, 'हा' की तरफ न उठ सका, निषेध को ही धर्म मान लिया, विदेय की बात ही भूल गया ।

आस्तिक नास्तिक से आगे जाता है ।

आस्तिक नास्तिक का विरोध नहीं है, अतिक्रमण है । आस्तिक के जीवन में भी नास्तिकता का पडाव आता है, लेकिन उस पे वह रुक नहीं जाता । वह उसे पडाव ही मानता है और उससे मुक्त होने की चेष्टा में भनगन हो जाता है । क्योंकि जहाँ 'नहीं' है वहाँ 'हाँ' भी होगा । और जिस जीवन में हमने व्यर्थता

पहचान ली है, उस जीवन के किसी तल की गहराई पर सार्थकता भी छिपी होगी, अन्यथा व्यर्थता का भी क्या अर्थ होता है?

जिसने दुख जाना वह सुख को जानने में समर्थ है, अन्यथा दुख को भी न जान सकता। जिसने अधिकार को पहचाना उसके पास आँखे हैं जो प्रकाश को भी पहचानने में समर्थ है।

अधो को अँधेरा नहीं दिखायी पड़ता। साधारणत हम साचते हैं कि अधेरे में जीने होगे—गलत है ख्याल। अँधेरे का देखने के लिए भी आँख चाहिए। अँधेरा भी आँख की ही प्रतीति है। तुम्हे अँधेरा दिखायी पड़ता है आँख बद कर लेने पर, क्योंकि अँधेरे को तुमने देखा है। जन्म में अधेर, जन्माध व्यक्ति को अँधेरा भी दिखायी नहीं पड़ता। देखा ही नहीं है कुछ, अँधेरा कैसे दिखायी पड़ेगा?

तो जिसको अँधेरा दिखायी पड़ता है, उसके पास आख है, अँधेरे में ही रुक जाने का कोई कारण नहीं है। और जब अँधेरा अँधेर की तरह मानूम पड़ता है तो साफ है कि तुम्हार भीतर छिपा हुआ प्रकाश का भी कोई स्थान है, अन्यथा अँधेरे को अँधेरा कैसे कहते? कोई कमैटी है तुम्हार भीतर, कही गहर में छिपा मापदण्ड है।

अँधेरे पे कोई रुक जाए तो नास्तिक, अँधेर का पहचान के प्रकाश की खोज में निकल जाए तो आस्तिक। अँधेरे को देख के कहने लगे कि अँधेरा ही सब कुछ है तो नास्तिक, अँधेर का जान के अभियान पर निकल जाए, खोजने निकल जाए, कि प्रकाश भी कही होगा, जब अँधेरा है तो प्रकाश भी होगा। क्याकि विपरीत सदा साथ मोजूद होते हैं।

जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु होगी। जहा अँधेरा है वहाँ प्रकाश होगा। जहाँ दुख है वहाँ सुख होगा। जहाँ नरक अनुभव किया है तो खोजने की हो बात है, स्वर्ग भी ज्यादा दूर नहीं हो सकता।

स्वर्ग और नरक पडाम-पडोम में है, एक-दूमर में जुड़े हैं।

अगर तुमने जीवन में कोध का अनुभव कर लिया तो समझ लेना कि कहणा भी कही छिपी है—खाजने की बात है। तुमने पहली परत छूली करुणा की। कोध पहली परत है करुणा को। अगर तुमने धृता का पहचान लिया तो प्रेम को पहचानने में दर भला लग, लेकिन असम्भावना नहीं है।

प्रश्न महत्वपूर्ण है।

जीवन की व्यर्थता तो अनिवार्य है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। उतने का ही परमात्मा की शुरुआत मत समझ लेना। उतने में ही 'अथातो' का बिन्दु न आ जाएगा। उतना जरूरी है। उतना तो चाहिए ही। पर उस पर तुम रुक भी सकते हो।

पश्चिम में बड़ा विचारक है न्याय पाल भात्र। वह कहता है, 'अँधेरा ही

मब कुछ है । दुख ही सब कुछ है । दुख के पार कुछ भी नहीं है । दुख के पार तो सिफ़ मनुष्यों की कल्पनाओं का जाल है । विषाद सब कुछ है । सताप सब कुछ है । बस नरक ही है, स्वर्ग नहीं है ।

बृद्ध ने भी एक दिन जाना था दुख है । सात्र्व ने भी जाना कि दुख है । यहाँ तक दोनों साथ-साथ है, फिर राहे अलग हो जाती हैं । फिर बृद्ध ने खाजा कि दुख क्यों है । और दुख है तो दुख के विपरीत दुख का निरोध भी होगा । तो वे खोज पर गये । दुख का कारण खोजा । दुख मिटाने की विधियाँ खोजी, और एक दिन उस स्थिति को उपलब्ध हो गये, जो दुख-निरोध की है, आनंद की है ।

सात्र्व पहले कदम पे रुक गया । बृद्ध के साथ थोड़ी दूर तक चलता है, फिर ठहर जाता है । वह कहता है, 'आगे कोई मार्ग नहीं है, बस यही सब समाप्त हो जाता है ।'

नो सात्र्व अधिकार को ही स्वीकार करके जीने लगा, ऐसे ही तुम भी जी सकते हो । तब तुम्हारा जीवन एक बड़ी उदासी हो जाएगी । तब तुम्हारे जीवन में सारा रस मूख जाएगा । तब तुम्हारे जीवन में कोई फूल न खिलेगे, काँटे-ही-काँटे रह जाएंगे । अगर कोई फूल खिलेगा भी तो तुम कहोगे कि कल्पना है, तुम उसे स्वीकार न करोगे । अगर किसी और के जीवन में फूल खिलेगा तो तुम इनकार करोगे कि झूठ होगा, आत्मवचना होगी, धोखा होगा, बेईमानी होगी, फूल होते ही नहीं हैं । तो तुमने अपने ही हाथ अपने को कारागृह मे बद कर लिया । फिर तुम तडपोगे । कोई दूमरा तुम्हें इस कारागृह के बाहर नहीं ने जा सकता । अगर तुम्हारी ही तडफ तुम्हें बाहर उठने की सामर्थ्य नहीं देती और तुम्हारी ही पीड़ा तुम्हे नयी खोज का सम्बल नहीं बनती, तो कौन तुम्हे उदायेगा? | लेकिन एक-न-एक दिन उठोगे, क्योंकि पीड़ा को काई शाश्वत रूप से स्वीकार नहीं कर सकता । एक जन्म में कोई सात्र्व हो सकता है, सदा-सदा के लिए कोई सात्र्व नहीं हो सकता, आज सात्र्व हो सकता है, सदा-सदा के लिए सात्र्व नहीं हो सकता, क्योंकि दुख का स्वभाव ऐसा है कि उसे स्वीकार करना अम्भव है ।

दुख का अर्थ ही यह होता है कि जिसे हम स्वीकार न कर सकेंगे । घडी-भर को समझा ले, बुझा ले कि ठीक है, यही सब कुछ है, इससे आगे कुछ भी नहीं, लेकिन फिर-फिर मन आगे जाने लगेगा । क्योंकि मन जानता है गहरे मे, सुख है । उसी आधार पर तो हम पहचानते हैं दुख को । हमने जाना है, शायद गहरी नीद मे सुख का थोड़ा-सा स्वाद मिला है ।

पतंजलि ने योग-सूत्रों मे समाधि की व्याख्या सुषुप्ति से की है कि वह प्रगाढ निद्रा है । जैसा सुषुप्ति में सुख मिलता है सुबह उठ कर, रात गहरी नीद सोये, कुछ याद नहीं पड़ता, लेकिन एक भीनी-सी सुगंध सुबह तक भी तुम्हें धरे रहती है ।

कुछ याद नहीं पड़ता कहाँ गये, क्या हुआ, लेकिन गये कही और आनंद से सरोबोर हो के लौटे ।

कही डुबकी लगायी ।

अपने मे ही कोई गहरा तल छुआ ।

कही विश्राम मिला ।

कोई छाया के तले ठहरे ।

वहाँ धूप न थी ।

वहाँ गहरी शाति थी ।

वहाँ कोई विचारो की तरगें भी न पहुँचती थी ।

कोई स्वप्न के जाल भी न थे ।

अपने में ही कोई ऐसी गहरी शरण, कोई ऐसा गहरा शरण-स्थल पा लिया ।

सुबह उसकी मिर्फ हल्की खबर रह जानी है । दूर सुने गीत की गुन-गून रह जाती है ।

रात गहरी नीद सोये तो सुबह तुम कहते हो, 'बड़ी गहरी नीद आयी, बड़े आनंदित उठे ।'

शायद गहरी निद्रा में तुम वही जाते हो जहाँ योगी समाधि में जाता है । गहरी निद्रा मे तुम वही जाते हो जहाँ भक्ति भाव की अवस्था मे पहुँचाती है । गहरी निद्रा मे तुम उसी तल्लीनता को छूते हो जिसका भक्त भगवान मे डूब के पाता है । थोड़ा फर्क है । तुम बेहोशी मे पाते हो, वह होश मे पाता है । वही फर्क बड़ा फर्क है ।

इसलिए सुबह तुम इतना ही कह सकते हो, 'मुखद है । अच्छी रही रात ।' लेकिन भक्त नाचना है, क्योंकि यह कोई बेहोशी मे नहीं पाया अनभव, होश मे पाया ।

तो कभी नीद के किन्ही क्षणो मे तुमने भी जाना है, तभी तो तुम दुख को पहचानते हो, नहीं तो पहचानोगे कैसे ? शायद बचपन के क्षणो मे जब मन भोला-भाला था और ससार ने मन विकृत न किया था, वासनाएँ अभी जगी न थी, कामनाओ ने अभी खेल शुरू न किया था, अभी तुम ताजे-ताजे परमात्मा के घर से आये थे — तब शायद मुबह की धूप मे बैठे हुए, फूलो को बगीचे मे चुनते हुए, या तितलियो के पीछे दौड़ते हुए, तुमने कुछ मुख जाना है जो विचार के अतीत है, तुमने काई तल्लीनता जानी है जहाँ तुम खो गये थे, कोई विराट सागर रह गया था, बूँद ने अपनी सीमा छोड़ दी थी । फिर अब भूली-सी बात हो गयी, भूली-बिसरी बात हो गयी । अब याद भी नहीं आता ।

बस इतना ही लोग कहे चले जाते है कि बचपन बड़ा स्वर्ग जैसा था । कोई

जोर डाले तुम पर सो तुम सिद्ध न कर पाओगे कि क्या स्वर्ग था । अगर कोई तर्कयुक्त व्यक्ति मिल जाए, कहे कि सिद्ध करो, 'क्या था बचपन मे स्वर्ग?', तो तुम सिद्ध न कर पाओगे । वह भी गहरी नीद का अनुभव हो गया अब । अब याद रह गयी है । खूब भी तुम्हे पक्का भरोसा नहीं है कि ऐसा हुआ था, भूल ही गया है । क्योंकि जिसकी तुम्हारे जीवन से सगाति नहीं बैठती वह धीरे-धीरे विस्मरण हो जाता है । धीरे-धीरे तुम उसी को याद रख पाते हो, जिसका तुम्हारे मन के ढाँचे से मेल बैठता है, बेमेल बातों को हम छोड़ देते हैं । बेमेल बातों को याद रखना मुश्किल हो जाता है ।

तो कही-न-कही कोई अनुभव तुम्हारे भीतर है । कभी प्रेम के गहरे क्षण मे, किसी से प्रेम हुआ हो, मन ठिक गया हो, सौंदर्ये के साक्षात्-कार मे, या कभी चाँदनी रात मे आकाश का देखते हुए, मन मौन हो गया, तो तुमने सुख की झलक जानी । एक किरण तुम्हारे जीवन मे कभी-न-कभी उतरी है । उसी से तो तुम पहचानते हो कि यह अँधेरा है । किरण न जानी हो तो अँधेरे को अँधेरा कैसे कहागे? अँधेर की प्रत्यमिज्ञा कैमे होगी, पहचान कैसे होगी? पहचान तो विपरीत से होती है ।

ता जो रुक जाए जीवन की व्यथना पर, वह नास्तिक । इसलिए नास्तिक को मै आस्तिक जितना माहसी बही कहता । जल्दी रुक गया । पड़ाव को मुकाम समझ लिया । आगे जाना है । और आगे जाना है ।

एक बड़ी पुरानी भूकी कथा है कि एक फकीर जगल मे बैठा था । वह रोज एक लकड़हार को लकड़ियाँ काटते हुए, ने जाते लाते देखता था उसकी दीनता, उसके फटे कपडे, उसकी हड्डियों से भरी देह । उसे दया आ गयी । वह लकड़हारा जब भी निकलता था तो उसके चरण छू जाता था । एक दिन उसने कहा कि कल जब तु लकड़ी काटने जाए, तब आगे जा, और आगे जा । लकड़हारा कुछ समझा नहीं, लेकिन फकीर ने कहा है तो कुछ मनलब होगा । ऐसे कभी यह फकीर बोलता न था, पहली दफा बोला है 'आगे जा, और आगे जा ।'

तो जहाँ वह लकड़ियाँ काटता था, जगल मे थोड़ा आगे गया चकित हुआ सुगंध से उसके नासापुट भर गये । चदन के वृक्ष थे । वहाँ तक वह कभी गया ही न था । उसने चदन की लकड़ियाँ काटी । चदन को बेचा तो उस रात खुशी मे रोया, दुख मे भी खुशी मे भी, कि अगर यही लकड़ियाँ अब तक काट के बेची होती तो करोड़पति हो गया होता । पर अब गरीबी मिट गयी ।

दूसरे दिन जब चदन की लकड़ी फिर काट रहा था तो उसे ख्याल आया कि फकीर ने यह नहीं कहा था कि चदन की लकड़ी तक जा, उसने कहा था, 'और आगे, और आगे ।' तो उसने चदन की लकड़ियाँ न काटी, और आगे गया, तो

देखा कि चाँदी की एक खदान है। फिर तो उसके हाथ में एक सूत लग गया। फिर और आगे गया तो मोने की खदान। फिर और आगे गया तो हीरो की खदान पर पहुँच गया।

और आगे, जब तक कि हीरो की खदान न आ जाए। उसको ही हम परमात्मा कहते हैं।

तुम लकड़हारा की तरह लकड़ियाँ ही बेच रहे हो, थोड़ी ही दूर आगे चदन के बन हैं। तुम विचारों में ही उलझे हो जहाँ लकड़ियाँ-ही-लकड़ियाँ हैं। बड़ी सस्ती उनकी कीमत है।

थोड़े निविचार में चलो चदन के बन है।

बड़ी सुगंध है वहाँ।

और थाडे गहरे चलो तो समाधि की खदान है।

और गहरे चलो तो निर्विज समाधि, निविकल्प समाधि की खदान हैं।

और गहरे चलो तो स्वयं परमात्मा है।

योगी कदम-कदम जाता है, रुक-रुक के जाता है, कई पड़ाव बनाता है। भक्त सीधा जाता है, नाचता हुआ जाना है, रुकता नहीं, पड़ाव भी नहीं बनाता। वह सीधा तल्लीनता में ढूँढ़ जाना ह।

योगी से भी ज्यादा हिम्मत भक्त की है। नाम्निक से ज्यादा हिम्मत आस्तिक की है। योगी स भी ज्यादा हिम्मत भक्त की ह। क्याकि भक्त मीदियाँ भी नहीं बनाना, एक गहरी छलांग लेता है जिसमें अपने को ढुँबा दता है, मिटा देता है।

इस अनुभव पर आना अत्यत ज़रूरी है कि जीवन व्यर्थ है।

‘अंधेरी रात तूफाने तलातुम नाखुदा गाफिल

‘यह आलम है तो फिर किश्ती, सरे मौजेरवा कब तक?’

— ‘अंधेरी रात’। सब तरफ अंधेरा है। कुछ सूजता नहीं है। हाथ को हाथ नहीं सूझता। ‘तूफाने तलातुम’। बड़ी अंधिया हैं, बड़े तूफान हैं, सब उखड़ा जाता है, कुछ ठहरा नहीं मानूम पड़ता, बड़ी अराजकता है। ‘नाखुदा गाफिल’। और जिसके हाथ में किश्ती है, वह जो माँझी है, वह सोया हुआ है, बेहोश है। ‘यह आलम है’, ऐसी हालत है तो फिर किश्ती सरे मौजेरवा कब तक?’ तो इस किश्ती का भविष्य क्या है? यह नाव अब ढूँढ़ी तब ढूँढ़ी। इस नाव में आशा बाँधनी उचित नहीं। इस नाव के साथ बैंधे रहता उचित नहीं।

लेकिन जाओगे कहाँ? भागोगे कहाँ? यही किश्ती तो जीवन है। तुम सोये हो, मूँच्छत, तूफान भयकर है, अंधेरी रात है, ढूँढ़ने के सिवाय कोई जगह दिखायी नहीं पड़ती।

लेकिन ढूँढ़ना दो ढग का हो सकता है। एक किश्ती ढुँबाये तब तुम ढूँढ़ो

और एक, कि कश्ती में बैठे-बैठे तुम डूबने के लिए कोई सागर खोज लो । उस सागर को ही हम परमात्मा कहते हैं ।

‘अच्छा यकी नहीं है तो कश्ती डुबो के देख
एक तू ही नाखुदा नहीं, जालिम । खुदा भी है ।’

तो फिर हिम्मत आ जाती है, फिर आदमी कहता है कि ठीक है । तो अगर माँझी । तू चाहता ही है कि कश्ती डुबानी है तो डुबा के देख । तू ही अकेला नहीं है, माँझी । तुझसे ऊपर खुदा भी है ।

‘एक तू ही नाखुदा नहीं, जालिम । खुदा भी है ।’

फिर अंधेरी रात, तूफान, कश्ती का अब डूबा तब डूबा हाना, सब दूर की बातें हो जाती हैं । तुम भीतर कही एक ऐसी जगह लगार डाल देते हो, जहाँ तूफान छूते ही नहीं, जहाँ रान का अंधेरा प्रवेश ही नहीं करता, और जहाँ किसी नाखुदा की, किसी माँझी की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि वहाँ परमात्मा ही माँझी है ।

ज़रूरी है कि जीवन की व्यर्थता दिखायी पड़ जाए । बहुत है जो जीवन की व्यर्थता बिना दखें आस्तिकता में अपने को डुबाने की चेष्टा करते हैं, वे कभी न डूब पाएंगे । वे चुन्नू-भर पानी में डूबने की चेष्टा कर रहे हैं । वे अपने को धोखा द रहे हैं ।

जब तब तुम्हारे जीवन की जड़े उखड़ न गयी हो, जब तक तुमने गहन झझावान नामितकता के न झेले हो, जब तक तुम्हारा रोआँ-रोआँ कॅप न गया हो जीवन के अधिकार में, जब तक तुम्हारी छाती भयभीत न हो गयी हो — नब तक तुम जिस आस्तिकता की बातें करते हो, वह सात्त्वना होगी, सत्य नहीं, तब तक तुम जिन मदिरों और मस्जिदों में पूजा-उपासना करते हो, वह पूजा-उपासना धोखाधड़ी है । वह तुम्हारा औपचारिक व्यवहार है । वह सस्कारवशात् है । उससे तुम्हारे जीवन का सीधा कोई सम्बद्ध नहीं । वह मदिर तुमने अपनी प्रज्ञा से नहीं खोजा है, उधार है । उधार परमात्मा असली परमात्मा नहीं है । उसे तो तुम्हे अपने को चुका रे ही, अपने को दान में दे कर ही, अपना सर्वस्व लुटा कर ही पाना होगा । वह तो तुम जब तक मूली पर न लटक जाओ, तब तक उस मिहासन तक न पहुँच पाओगे ।

तो पहली तो स्मरण रखने की बात यह है कि कहीं जल्दी में आस्तिक मत हो जाना । यह कोई जल्दी का काम नहीं है । बड़ी गहन प्रतीक्षा चाहिए । और यह कोई सान्त्वना नहीं है कि तुम ओढ़ लो, सक्राति है । सान्त्वना नहीं है परमात्मा, सक्राति है, महाक्राति है । तुम जो हो, मिटोगे, और तुम जो होने चाहिए वह प्रगट होगा ।

तो सस्ती आस्तिकता कही नहीं ले जाती । सस्ती आस्तिकता से तो असली

नास्तिकता बेहतर है, कम-से-कम उम परिधि पर तो खड़ा कर देती है, जहाँ से आगे कदम चाहो तो उठा सकते हो ।

झूठी आस्तिकता से तो कोई कभी कही नहीं गया है, जा ही नहीं सकता । झूठी प्रार्थना कभी नहीं सुनी गयी है । तुम कितने ही जोर से चिल्लाओ, तुम्हारी आवाज के जोर से प्रार्थना का कोई सम्बंध नहीं है, तुम्हारे हृदय की सच्चाई से, तुम्हारी विनम्रता से, तुम्हारे निरहकार-भाव से, तुम्हारे असहाय-भाव से, जब तुम्हारी प्रार्थना उठेगी तो पट्टें जाती हैं, तो जर्गा-जर्गा, कण-कण अस्तित्व का तुम्हारा सहयोगी हो जाता है ।

तो पहले तो झूठी आस्तिकता से बचना, फिर नास्तिकता में मत उलझ जाना । नास्तिक होना जरूरी है, बने रहना जरूरी नहीं है । एक ऐसी घड़ी आएगी जब अँधेरा-ही-अँधेरा दिखायी पड़ेगा, तूफान-ही-तूफान होगे, कहीं कोई सहारा न मिलेगा, सब महारे झूठ मानूम होगे, राह भटक जाएगी, तुम बिलकुल अजनबी की तरह खड़े रह जाओगे, जिसका कोई सहारा नहीं, जो एकाकी है - तब घबड़ा के बैठ मत जाना, यही मेरुशआत होती है । यही मेर तुमने आगे कदम उठाया, तो उपासना, भक्ति ! यही से आगे कदम उठाया तो समार के पार परमात्मा को शुरुआत होती है ।

झूठी नास्तिकता से बचना है, झूठी आरितकता से बचना है । नास्तिकता सच्ची ही तो भी उमको घर नहीं बना लेना है । असर्ली नास्तिकता के दुख का श्लेना है ताकि उस पीड़ा के बाहर असली आस्तिकता का जन्म हो सके ।

दूसरा प्रश्न इस विराट अस्तित्व मे मै नाकुछ हूँ, यह अप्रिय तथ्य स्वीकारने मे बहुत भय पकड़ता है । इस भय से कैसे ऊपर उठा जाए ?

‘अप्रिय’ कहोगे तो शुरू से ही व्याख्या गलत हा गयी, फिर भय पकड़ेगा । ‘अप्रिय’ कहना ही गलत है ।

फिर से साचो नाकुछ होने मे अप्रिय क्या है ? बस्तुत कुछ होने मे अप्रिय है । क्याकि जीवन के सारे दुख तुम्हारे ‘कुछ होने’ के कारण पैदा होते हैं ।

जहाजार घाव की तरह है । और जब तुम्हारे भीतर घाव होता है - और अहकार से बड़ा काई घाव नहीं, नामूर है - ता हर चीज की चोट लगती है, हर चीज से चाट लगती है, हर चीज म पीड़ा आती है, जरा कोई टकरा जाता है और पीड़ा आती है, हवा का झोका भी लग जाता है ता पीड़ा आती है, अपना ही हाय छू जाता है तो पीड़ा आती है ।

अहकार का अर्थ है मै कुछ हूँ ।

अगर तुम जीवन की सारी पीड़ाओं की फेहरिश बनाओ तो तुम पाओगे

कि वे सब अहकार से ही पैदा होती हैं। लेकिन तुमने कभी गौर में इसे देखा नहीं। तुम तो सोचते हो कि पीड़ा तुम्हे दूसरे लोग देते हैं।

किसी ने तुम्हे गाली दी, तो तुम सोचते हो, यह आदमी गाली दे के मुझे पीड़ा दे रहा है। व्याख्या की भूल है। विश्लेषण की चूंक है। दृष्टि का अभाव है। आँख खोल के फिर से देखो। इस आदमी की गाली में अगर कोई भी पीड़ा है तो इसीलिए है कि तुम्हारे भीतर अहकार उस गाली में छू के दुखी होता है। अगर तुम्हारे भीतर अहकार न हो तो इस आदमी की गाली तुम्हारा कुछ भी न विगाड़ पाएगी। तुम उम आदमी की गाली को सुन लोगे और अपने मार्ग पर चल पड़ोगे। हाँ सकता है, इस आदमी की गाली तुम्हार भन में करुणा को भी जगाये कि बेचारा नाहक ही व्यर्थ की बातों में पड़ा है। लेकिन गाली उसकी तुम्हे पीड़ा दे जाती है, क्योंकि तुम्हारे पास एक बड़ा मार्मिक म्यूल है, जो तैयार ही है पीड़ा पकड़ने को। बड़ा मन्त्रदन्तील है। बड़ा नाजुक है। और हर घड़ी तैयार है कि कहीं से पीड़ा आये ता ..वह पीड़ा पर ही जीना है।

ता ज़रूरी नहीं कि कोई गाली दे, गह पर कोई बिना नमस्कार किये निकल जाए ता भी पीड़ा आ जाती है। कोई तुम्हे देखे और अनदेखा कर दे तो भी पीड़ा आ जाती है। राह पर दो आदमी हँस रह हो तो भी पीड़ा आ जाती है कि शायद मुझ पर ही हँस रहे हैं। दो आदमी एक-दूसरे के कान में खुसरफुमर कर रहे हो तो पीड़ा आ जानी है कि शायद मेरे निए ही ।

यह जो 'मैं' है, बड़ा सण्ठृङ् द्वे । इसको ले के तुम कभी भी स्वस्थ और सुखी न हो पाओगे ।

तो अगर 'अप्रिय' कहता हो तो अहकार को कहना ।

और यही अहकार तुमसे कहता है, 'डरो, प्रेम से डरो, क्योंकि प्रेम मे ऐसे छोड़ना पड़ेगा। भक्ति से डरो, क्योंकि भक्ति मे तो यह बिलकुल ही डूब जाएगा, प्रेम मे क्षण-भर को डूबेगा, भक्ति मे शाश्वत, सदा के लिए डूब जाएगा। बचो ।'

यह अहकार कहता है, 'ऐसी जगह जाओ ही मत जहाँ ड्बने का डर हो। बच के चलो । सम्हल के चलो ।'

और यही अहकार तुम्हारी पीड़ा का कारण है ।

ऐसा समझो कि नासूर लिये चलते हो और चिकित्सक से बचते हो ।

'इस विराट अस्तित्व मे मैं नाकुछ हूँ, यह अप्रिय तथ्य स्वीकारने मे बहुत भय पकड़ता है ।'

यह भय तुम्हे नहीं पकड़ रहा है, यह भय उसी अहकार को पकड़ रहा है जो कि डूबने से, तल्लीन होने से भयभीत है। क्योंकि तल्लीनता का व्यर्थ मौत है— अहकार की मौत, तुम्हारी नहीं । तुम्हारे लिए तो जीवन का नया द्वार खुलेगा।

उसी मृत्यु से तुम्हारे लिए परम जीवन की उपलब्धि होगी । उसी मृत्यु से तुम पहली बार अमृत का दशन करोगे । लेकिन तुम्हारे लिए, अहकार के लिए नहीं ।

यह जो तुम्हारे भीतर 'मैं' की गाँठ है, यह गाँठ दुख दे रही है । इस अप्रिय 'मैं' को पहचानो, तो तुम पापोंगे कि निरहकारिता में ज्यादा प्रोतिकर और कुछ भी नहीं ।

और जिसे निरहकारिता आ गयी, सब आ गया । फिर उसे किसी मंदिर में जाने की जरूरत नहीं ।

निरहकारिता का मंदिर जिसे मिल गया, वह पत्थरों के मंदिरों में जाए भी क्यों ।

निरहकारिता का मंदिर जिसे मिल गया, उसके तो अपने ही भीतर के मंदिर के द्वार खुल गये ।

'अदब-आमोज है मैखाने का जरा-जरा

सैकड़ों तरह से आ जाता है मिजदा करना ।

इश्क पाबदेवफा है, न कि पाबदे-रसूम

सर झुकाने को नहीं कहते हैं सिजदा करना । '

'अदब-आमोज है मैखाने का जरा-जरा । '

अगर तुम गौर से देखो तो अस्तित्व का कण-कण विनष्टना सिखा रहा है । पूछो वृक्षों से, पूछो पर्वतों से, पहाड़ों में, पूछो झरनों में, पक्षियों में, पशुओं से कही अहकार नहीं है ।

'अदब-आमोज है मैखाने का जरा-जरा । '

एक-एक कण, पूरा अस्तित्व एक ही बात सिखा रहा है नाकुछ हो जाओ ।

'सैकड़ों तरह से आ जाता है मिजदा करना । '

और अगर तुम इन बातों को सुनो जा अस्तित्व में गूंज रही हैं सब तरफ से, सब दिशाओं से, तो सैकड़ों रास्त हैं जिनसे उपासना का सूत्र तुम्हारे हाथ में आ जाएगा, सिजदा करना आ जाएगा, झुकने की कला आ जाएगी ।

जरूरी नहीं है कि तुम शास्त्र ही पढो, अस्तित्व के शास्त्र से बढ़ा कोई और शास्त्र नहीं है । जरूरी नहीं है कि तुम ज्ञानियों से ही सीखो, तुम अगर आँख खोल कर देखो तो मारा अस्तित्व तुम्हे सिखाने को तत्पर है ।

यहाँ आदमी के सिवाय कोई अहकार से पीड़ित नहीं है और इसलिए सिवाय आदमी के यहाँ कोई भी पीड़ित नहीं है । आदमी ही परेशान है, चितिन है । वृक्ष परेशान नहीं, सिजदा में खड़े हैं । सतत चल रही है पूजा ।

आदमी की पूजा घड़ी-दो-घड़ी की होनी है, अस्तित्व की पूजा सतत है ।

तुम कभी आरती उतारने हो, तारे, चाँद, सूरज उतारते ही रहते हैं आरती !
चौबीस घटे । सतत ।

तुम कभी एक फूल चढ़ा आते हो, वृक्ष रोज ही चढ़ाते रहते हैं फूल । तुम कभी जा के मदिर में एक गीत गुनगुना आते हो, पक्षी सुबह से साँझ तक गुनगुना रहे हैं । अगर गौर से देखो तो तुम सारे अस्तित्व को सिजदा करता हुआ पाओगे । साग अस्तित्व झुका है, घुटना पर हाथ जुड़े हैं, आँखों से आँसुओं की धार बह रही है, हृदय से सुगंध उठ रही है ।

फिर से देखो । देखा तो तुमने भी है इसे, ठीक आँख में नहीं देखा । फिर से देखो तुम हर वृक्ष को झुका हुआ पाओगे प्रार्थना में, हर झरने का उसी का गीत गाना हुआ पाओगे ।

‘अदब-आमोज है मैस्त्राने का जर्रा-जर्रा

सैकड़ों तरह से आ जाना नै सिजदा करना ।’

‘इश्क पाबदेवका है ।’

प्रेम आस्था की बात है, श्रद्धा की बात है, भरोसे की बात है ।

‘इश्क पाबदेवका है, न कि पाबदे-रसूम ।’

वह कोई नीति-नियम की बात नहीं है, कोई रसूम की बात नहीं है, कोई नियम के आचरण की विधि-अनुशासन की बात नहीं है – सिफं आस्था की बात है । कोई मुमलमान होना जरूरी नहीं है, काई हिन्दू होना जरूरी नहीं है, कोई ईसाई होना जरूरी नहीं है – क्योंकि ये सब तो रीति-नियम की बातें हैं, धार्मिक होने के लिए इनकी कोई भी जरूरत नहीं है, सिफं आस्था काफी है । आस्था न हिन्दू है न मुसलमान, आस्था न जैन है न बौद्ध – आस्था विशेषण-रहित है, उतनी ही विशेषण-रहित है जितना कि परमात्मा ।

‘इश्क पाबदेवका है, न कि पाबदे-रसूम ।’

तो तुम कोई रीति-नियम से प्रार्थना मत करने बैठ जाना । सीख मत लेना प्रार्थना करना, क्योंकि वही अड़चन हा जाएगी असली प्रार्थना के जन्म होने में ।

प्रार्थना महजस्फूर्त हो ।

सूर्य के सामने सुबह बैठ जाना, जो तुम्हारे हृदय में आ जाए, कह देना, न कुछ आये, चुपचाप रह जाना । सूरज कुछ कहे, मुन लेना, न कहे तो उसके मौन में आनंदित हो लेना ।

बैंधी हुई प्रार्थनाएँ मत दोहराना, क्योंकि बैंधी हुई प्रार्थनाएँ कण्ठों में हैं, उससे नीचे नहीं जाती, बस कण्ठों तक जाती है, कण्ठों से आती है ।

इसलिए अक्सर तुम पाओगे कि जिनको प्रार्थनाएँ याद हो गयी हैं, वे प्रार्थनाओं से वचित हो गये हैं । वे प्रार्थना करते रहते हैं, उनके झोंठ दोहराते रहते

हैं मनों को और उनके भीतर विचारों का जाल चलता रहता है। फिर धीरे-धीरे तो यह इतनी आदत हो जाती है दोहराने की कि उससे कोई बाधा ही नहीं पड़ती, भीतर दुकान चलती रहती है, ओठों पर मंदिर चलता रहता है।

‘इश्क पाबदेवका है, न कि पाबदे-रसूम !’

प्रेम जानता ही नहीं रीति-नियम, क्योंकि प्रेम आखिरी नियम है। किसी और व्यवस्था की ज़रूरत नहीं है, प्रेम पर्याप्त है। प्रेम की अराजकता में भी एक अनुशासन है। वह अनुशासन महजस्फर्त है।

‘सर झुकाने को नहीं कहते हैं सिजदा करना !’

और सिफं सिर झुकाने का नाम प्रार्थना नहीं है, खुद के झुक जाने का नाम प्रार्थना है। सिर झुकाना तो बड़ा आसान है।

मेर पास लोग बच्चों को ले के आ जाते हैं। वे खुद सिर झुकाने हैं, बच्चे खड़े रह जाते हैं, तो माँ उसका मिर पकड़ के चरणों में झुका देती है। मैं उनको कहता हूँ ‘यह तुम क्या ज्यादती कर रहे हो ?’ वह बच्चा अकड़ रहा है, वह बड़ा है, उसे मिर नहीं झुकाना है, कोई कारण नहीं है मिर झुकाने का, उसमे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है, माँ उसका सिर झुका रही है, रसूम सिखाया जा रहा है, नियम सिखाया जा रहा है। वह धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाएगा। बड़ा होते-होते किसी की झुकाने की ज़रूरत न रह जाएगी, खुद ही झुकने लगेगा, लेकिन हर झुकने में वह मां गा हाथ तुम्हारी गर्दन पे रहेगा। गह बूढ़ाग तक जब भी झुकेगा, तब इसे काई ज़ाह रहा है बस्तुन, यह खुद नहीं झुक रहा है।

तुमने कभी ख्याल किया, तुम मंदिर में जा के झुकते हो, यह मिफं एक आदत है या आम्या ह ? क्याकि बचपन से माँ-बाप इस मंदिर में ले गये थे, झुकाया था एक दिन तुम्हारी गर्दन का तुम्हे सभी को याद होगा कि किसी-न किसी दिन माँ-बाप ने तुम्हारी गर्दन को झुकाया था किसी पत्थर की मूर्ति के सामने, किसी मंदिर मे, किसी शास्त्र के सामने, किसी गुह के सामने। याद करा उस दिन को। फिर धीरे-धीरे तुम अभ्यस्त हो गये। फिर तुम भी ससार के रीति-नियम समझन लगे। फिर तुमन भी औपचारिकता भीख ली। वह बच्चा ज्यादा शुद्ध है जो सीधा खड़ा है। उसे झुकना नहीं, बात खत्म हो गयी। झुकने का उसे कोई कारण समझ मे नहीं आता, बात खत्म हो गयी। माँ उसे एक झूठ सिखा रही है।

समाज सभी को झूठ सिखा रहा है, औपचारिक आचरण सिखा रहा है। धीरे-धीरे धीरे-धीरे परत पे परत जमते-जमते ऐसी बड़ी आ जाती है कि तुम बड़ी सरलता से झुकते हो, और बिना जाने कि यह भी तुम्हारा झुकना नहीं है। यह सरलता भी झूठी है। इस सरलता में भी समाज के हाथ तुम्हारी गर्दन को दबा रहे हैं। इस सरलता मे भी तुम्हारी गुलामी है।

और प्रेम, गुलामी से कही पैदा हुआ ? परतत्रता से कही पैदा हुआ ?

भक्ति तो परम स्वतत्रता है। इसलिए छोड़ दो वह सब जो तुम्हे सिखाया गया हो, ताकि 'अन-सीखे' का जन्म हो सके। हटा दो वह सब जो दूसरों ने जबरदस्ती से तुम्हारे ऊपर लादा हो। निर्बोध हो जाओ।

फिर से सीखना पड़ेगा पाठ।

तुम्हारी सलेट पर बहुत कुछ दूसरों ने लिख दिया है। खाली करो उसे ! धो डालो ! ताकि फिर से तुम अपने स्वभाव के अनुकूल कुछ लिख सको।

'इश्क पाबदेवफा है, न कि पाबदे-रसूम

सर झकाने को नहीं कहते हैं सिजदा करना।'

प्रार्थना बड़ी अभृतपूर्व धटना है।

झुकना ! उसके आगे तो फिर कुछ और नहीं। वह तो आखिरी बात है। क्योंकि जो झुक गया, उसने पा लिया ! जो झुक गया वह भर गया ! वह भर दिया गया !

तुम तो राज झुकते हो, कुछ भरता नहीं। तुम तो रोज झुकते हों, खाली हाथ आ जाते हों। धीरे-ग्रीरे तुम्हे ऐसा लगता है कि जिसके सामने झुक रहे हैं वह परमात्मा झूठा है, क्योंकि इतनी बार झुके, कुछ हाथ नहीं आता। मैं तुमसे कहता हूँ वह परमात्मा तो सच है, तुम्हारा झुकना झूठा है। तुम कभी झुके ही नहीं।

दुनिया मे नार्मिनकता गढ़नी जानो है, क्योंकि झूठी आस्तिकता कब तक साथ दे। जबरदस्ती झुकायी गयी गर्दने कभी-न-कभी अकड़ के खड़ी हो जाएँगी। और इतने बार झुकने का बाद जब कुछ भी न मिलेगा, तो स्वाभाविक है कि आदमी कहे, 'क्या मार्ग है ? क्यों झुके ?' और स्वाभाविक है कि आदमी कहे, 'इतनी बार झुक के कुछ न मिला, कोई परमात्मा नहीं है !'

यह तुम्हारी झट्ठी आस्तिकता का परिणाम है।

सच्ची आस्तिकता आस्था से पैदा होती है।

आस्था का अर्थ है जैसा तुम समझते हो वैसा नहीं। तुम समझते हो, आस्था का अर्थ है विश्वास।

नहीं, आस्था का अर्थ विश्वास नहीं है। आस्था का अर्थ है अनुभव। विश्वास तो दूसरे देते हैं; आस्था वह है जो तुम्हारे भीतर तुम्हारी स्वाभाविकता से पैदा होती है।

प्रेम सीखो।

नियम भूलो।

प्रेम पर दाँब लगाओ, जोखिम है। नियम मे कभी कोई जोखिम नहीं,

इसलिए तो लोग नियम में जीते हैं। लेकिन जिसने जोखिम न उठायी, उसने कुछ पाया भी नहीं। इसलिए तो लोग बिना पाये रह जाते हैं।

पूछा है 'इस विराट अन्तित्व में मैं नाकुछ हूँ, यह अप्रिय तथ्य स्वीकार करने में भय पकड़ता है।'

पकड़ने दो भय! भय की मौजूदगी रहने दा। भय से कहो, 'तू रह, लेकिन हम झुकते हैं।'

तुम भय को एक किनारे रखों।

मैं जानता हूँ कि भय को एकदम मिटा न सकोगे, लेकिन एक किनारे रख सकते हो। भय के रहते हुए भी तुम झुक सकते हो। भय की सुनना जहरी नहीं है। तुम सुनते हो, स्वीकार करते हो, मान लेने हों, इसलिए भय मालिक हो जाता है।

भय से कहो, 'ठीक, तेरी बात मुन ली, फिर भी झुक के देखना है। तू कहता है, जाखिम है। होगी। लेकिन जोखिम उठा के देखनी है। तू कहता है, मिट जाओगे। मही। रह के दख लिया, अब मिट के देखना है। रह-रह के कुछ न पाया, अब यह आयाम भी खोज ले मिटने का।

कोई भय का दबाने की ज़रूरत नहीं है, ध्यान रखना। दबाया हुआ भय तो फिर-फिर उभरेगा। न, भय को पूरा स्वीकार कर लो कि ठीक हो। माना, तुम्हारी बात में भी बल है। तुम्हारे तर्क से कोई इनकार नहीं। लेकिन तुम्हार साथ रह के इतने दिन देख लिया और जीवन का कोई अनुभव न हुआ, अब कुछ और भी कर लेने दो।

तर्क उठेंगे मन में। उनसे कहा, ठीक है। तुम्हारी बात ज़ँचती थी, इसलिए तो इतने दिन तक तुम्हारा सग-साथ रहा। इतने दिन तक तुम्हे थोड़ा, लेकिन कुछ पाया नहीं, हाथ खाली है, हृदय कोरा है, आत्मा रिक्त है। अब बहुत हुआ, अब तुमसे विपरीत दिशा में भी थोड़ा जा के दख लेने दो।

उर तो लगेगा थी, क्याकि जिस दिशा में कभी न गये, उस दिशा में जाने मन घबड़ाता है, पैर कंपते हैं। मन चाहता है 'जान-माने गस्ते पर चला। कहै जगल में जा रहे हो बियावान में? भटक जाओगे। भीड़ जहाँ चलती है वही चलो। कम-से-कम मर्गी-मार्थी ना है। भीड़ है, ता राहत है, अकेलं नहीं है।'

पर एक-न-एक दिन भीड़ के रास्तों का छाड़ कर पगड़ी की राह लेनी ही पड़ती है।

परमात्मा तक काई राजपथ नहीं जाता, बस पगड़ियाँ जाती हैं। कोई राजपथ परमात्मा तक नहीं जाता, अन्यथा समाज परमात्मा तक पहुँच जाए। व्यक्ति ही पहुँचते हैं, समाज कभी नहीं।

पगड़ियाँ! पगड़ियाँ भी ऐसी कि तुम चलो ता बनती हैं, कोई तैयार

नहीं हैं पहले से, कि किसी ने तुम्हारे लिए बना रखी हो। तुम्हारे चलने से ही बनती हैं। जितना तुम चलते हो उतनी ही निर्मित होती हैं।

यह राह ऐसी है कि तैयार नहीं है, चलने से तैयार होती है। और बड़ा सुन्दर है यह तथ्य। नहीं तो आदमी एक परतत्रता हो जाए। राह तैयार है, उस पे तुम्हें चले जाना है। तब तो तुम रेलगाड़ियों के डब्बों जैसे हो जाओ। लोहे की पटरियों पे दौड़ते रहो। फिर तुम्हारे जीवन में गगा की न्यतत्रता न हो। फिर वह मौज न रह जाए, जो अपनी ही खोज से आती है।

गगा सागर पहुँचती है – लोहे की पटरियों पर नहीं, चलती है, चल-चल के अपनी राह बनाती है, मार्ग बनाती है अनजान की खोज पर। सागर ह भी आये, इसका भी क्या पक्का पता है।

तो भय न्यानाविक है। लेकिन भय के साथ रह के हम बहुत दिन देख लिये। अब भय को कहो, ‘मुनी तेरी बहुन, अब हमे कुछ और भी करने दो।’

रहने दा भय का एक किनारे – तुम चलो।

कौपते हुए पौरा स सही, पगड़ी पर उतरो।

उरते हुए, धड़कते हुए हृदय मे मही, भीड़ को छाड़ो।

घड़डाहट होगी, लौट-लौट जाने का मन होगा – कोई चिना नहीं।

वभी लौट जाने का मन हाए, कभी घड़डाहट हो तो इतना ही याद रखना कि भय की ओर मन की मान के बहुत दिन चले थे, कही पहुँचे न थे।

नये को एक अवसर दो।

जिस दिन तुम नये का अवसर देते हो उसी दिन तुम परमात्मा को अवसर देते हो। जब नक तुम पुराने को दोहराते हो, लौक को पीटते हो, लकीर के फकीर हो, तब तक तुम समाज के हिस्से होते हो, भीड़ के हिस्से होने हो।

व्यक्ति बनो।

अर्थे तो होने का साहस जुटाओ।

और सबमे बड़ा साहस यही है इस तथ्य का स्वीकार कर नेता कि मैं इस विराट का अश हूँ, अलग-यतग नहीं हूँ, द्वीप नहीं है, इस पूरे विराट का एक अश हूँ। मैं नहीं हूँ, अस्तित्व है।

यही तो भक्ति की सारी-की-भारी व्यवस्था है कि भक्त खो जाए भगवान मे, कि भगवान खो जाए भक्त मे, कि एक ही बचे, दो न रह जाएँ।

तीसरा प्रश्न आपसे मिल कर भी यदि हमारा उद्धार न हुआ, तब तो शायद असम्भव ही है। कम-से-कम मुझ निरीह पर तो रहम खाइये। न तो मुझसे ध्यान सधता है न भक्ति। भक्ति की लहरियाँ आती है अवश्य, पर बहुत सीनी, और वह भी कभी-कभी, और ससार का भयकर तूफान तो सदा हावी है।

ध्यान साधना होना है, भक्ति साधनी नहीं होती ।

भक्ति की जो छोटी-छोटी लहरियाँ आ रही हैं उनमें डूबो, उनमें रस लो । तुम्हारे डूबने से लहरे बड़ी होने लगेंगी । दूर किनारे पे मत बैठे रहो, अन्यथा लहरे आएँगी और खो जाएँगी और तुम अछूते रह जाओगे । उतरो ! लहरो को तुम्हारे तन-प्राण पर फैलने दो । अगर छोटी-छोटी लहरें आ रही हैं तो भरोसा रखो, लहरो में सागर ही आया है । छोटी-से-छोटी लहर में विराट-से-विराट सागर छिपा है ।

ध्यान साधना पड़ता है । ध्यान साधना है । भक्ति ! भक्ति साधना नहीं है, उपासना है ।

मेद समच लो ।

साधना का अर्थ है तुम्हे कृछ करना है । उपासना का अर्थ है तुम्हे सिफं परमात्मा को मौका देना है । साधना में तुम्हे चेष्टा करनी पड़ती है, उपासना में तुम बेसहारा हो के अपने को परमात्मा पे छोड़ देते हो – तुम कहते हो, अब जो तेरी मर्जी ! अब तू जैसे रखो ! अब तू जा करवाये ! छुबाये ता वही गिनार ! अब मैं नहीं हूँ ।

भक्ति साधनी नहीं पड़ती । साधने में ता तुम बने रहत हो । उपासना में तुम खो जाने हो, तुम जैसे-जैसे पास आते हो ।

उपासना शब्द का अर्थ है परमात्मा के पास आना । ३४ + आमन = 'उसके' पास बैठना । बस बैठना ही काफी है । तुम 'उमे' मौका दा । नुम बैठ जाओ – 'उसके' पास ! 'उस' पर छोड़ कर ! और 'उम' मौका दा ।

बिलकुल ठीक हो रहा है 'भक्ति को लहरियाँ आती हैं अवश्य, पर बहुत जीनी, और वह भी कभी-कभी ।'

इसे भी सौमाय्य भमझा कि आती हैं । बस उन लहरों का तो पकड़ा, उनमें डूबो ! एक बागा भी हाथ में आ जाए तो बस काफी है । इसीलिए तो भक्ति के इस शास्त्र का भक्ति-सूत्र कहा है, योग के गास्त्र को योग-सूत्र कहा है – धागा ! सूत्र यानी धागा । यह पूरा शास्त्र नहीं है, वस सूत्र है । पर सूत्र हाथ में पकड़ आ गया, तो बान खत्म । उसी सूत्र के सहारे चलते-चलते तो

एक किरण पकड़ लो सूरज की तो सूरज तक पहुँचने के लिए सहारा मिल गया । उसी किरण के सहारे चलते जाना, तो उसके स्थान तक पहुँच जाओगे, जहाँ से किरण आती है ।

मगर हमारा मन बड़ा लोभी है । वह कहता है 'कभी-कभी !' कभी-कभी आती हैं, यह भी कोई कम सौभाग्य है ? एक बार भी जीवन मे लहर आ जाए 'और तुम अगर होशियार हो, तुम अगर जरा समझदार हो तो तुम उम एक ही लहर के सहारे उसके सागर का पा लोगे ।

‘कभी-कभी आती हैं।’ – ज़रूरत में ज्यादा आ रही हैं।

तुम्हारी पावता क्या है? योग्यता क्या है? कमाई क्या है? कुछ भी नहीं है। उसको अनुकूल से आती होगी। प्रसादस्वरूप आती होगी।

धन्यवाद दो, शिकायत मत करो। शिकायत करोगे तो जो लहरे आती हैं वे भी धीरे-धीरे खो जाएंगी। क्योंकि शिकायती चित्त के पास उपासना अमम्बव है। जितनी ज्यादा तुम्हारी शिकायत होगी उतना ही परमात्मा से फासला हो जाएगा। बिना शिकायत उसके पास बैठे रहो। धन्यवाद दो।

मैंने सुना है, मुसलमान बादशाह दुआ महमूद। उसका एक नौकर था। बड़ा प्यारा था। इतना उसे प्रेम था उस नौकर से और उस नौकर की भक्ति-भाव में, उसके अनन्य समर्पण से कि महमूद उसे अपने कमरे में ही सुलाता था। उस पर ही एक भरोसा था उसको।

दोना एक दिन शिकायत करके लौटते थे, राह भटक गये, खख लगी। एक वृक्ष के नीचे दोना खड़े थे। एक फत्त लगा था – अपरिचित, अनजान। महमूद ने तोड़ा। जैसी उम्मी आदत थी, चाकू निकाल के उसने एक टुकड़ा काट के अपने नौकर को ड्रिया, जो वह हमेशा दता था, पहले उसे देता था फिर खुद खाता था। नौकर ने खाया। बड़े अहोभाव से कहा कि ‘एक कली और ।’ एक कली और द दी, उसने फिर कहा, ‘एक कली और ।’ तो तीन हिम्से तो वह ले चुका, एक हिम्सा टूं बचा। महमूद ने कहा, ‘अब एक मेरे लिए छोड़।’ पर उसने कहा कि नहीं मालिक, यह फल तो पूरा ही मैं खाऊँगा। महमूद को भी जिज्ञासा बढ़ी कि इतना मप्रर फल है, ऐसा इसने कभी आग्रह नहीं किया। तो छीना-झपटी होने लगी। लेकिन नौकर ने छीन ही लिया उसके हाथ से।

उसने कहा, ‘रुक! अब यह ज़रूरत से ज्यादा हो गयी बात। तीन हिम्से तु खा चुका। एक ही फल है वृक्ष पर। मैं भी भूखा हूँ। और मेरे मन में भी जिज्ञासा उठनी है कि इतनी तो तूने कभी किसी चीज़ के लिए माँग नहीं की। यह मृज़े दे दे बापाय।’

नौकर ने कहा, ‘मालिक, मत ले, मुझे खा लेने दे।’

पर महमूद ने न माना तो उसे देना पड़ा। उसने चखा तो वह ता ज़हर था। ऐसी कडवी चीज़ उसने अपने जीवन में कभी चखी ही न थी। उसने कहा, ‘पागल! यह तो ज़हर है, तूने कहा क्यों नहीं।’

तो उसने कहा कि जिन हाथों से इतने स्वादिष्ट फल मिले, उन हाथों से एक कडवे फल की क्या शिकायत!

शिकायत दूर ले जाएगी, धन्यवाद पास लाएगा।

थोड़ा मोचो उस दिन वह नौकर महमूद के हृदय के जितने करीब आ।

गया । महमूद रोते लगा । वह तो बिलकुल जहर था फल । वह तो मुंह में ले जाने योग्य न था । और उसने इतने अहोभाव से, इतनी प्रसन्नता से उसे स्वीकार किया, छीना-झपटी की । वह नहीं चाहता था कि महमूद चखे । क्योंकि चखेगा तो महमूद को पता चल जाएगा कि फल कडवा था । यह तो कहने का ही एक ढग हो जाएगा कि फल कडवा है – न कहा लेकिन कह दिया । यह तो शिकायत हो जाएगी । इसलिए छीन-झपट की । जिन हाथों से इतने मधुर फल मिले, उस हाथ से एक कडवे फल की क्या चर्चा करनी । वह बात ही उठाने की नहीं है ।

परमात्मा ने इतना दिया है कि जो शिकायत करता है वह अधा है ।

योडी लहरे आती है, उन लहरों में डूबो । और लहरे आएंगी ।

धन्यवाद, अनुग्रह का भाव बड़ी लहरे आएंगी । एक दिन सागर-का-सागर तुम में उत्तर आएगा । एक दिन तुम्हे बहा के ले जाएगा । सब कूल किनारे टूट जाएंगे ।

लेकिन सूत्र यही है कि तुम उसके प्रमाद को पहचाना और अनुग्रह के भाव को बढ़ाते चले जाओ ।

हाता अक्सर ऐसा है कि जो तुम्हें मिलता है तुम उसके प्रति अधे हो जाते हो, तुम उसे स्वीकार ही कर लेते हो कि ठीक है, यह तो मिलता ही है, और चाहिए ।

अक्सर ऐसा होता है, जिनता ज्यादा तुम्हे मिल जाता है, उनने ही तुम दरिद्र हो जाते हो । क्योंकि उसको तो तुम स्वीकार ही कर लेते हो, उसकी तो तुम बात ही भूल जाते हो जो मिल गया ।

एक मनोविज्ञानशाला में बदरों पर कुछ प्रयोग किया जा रहा था । तो एक कटघर में दस बदर रखे गये थे जिनका रोज़ नहलाना-धुलाना हाता था । ठीक भोजन मिलता था । बड़ी उस कटघरे में सफाई रखी गयी थी, एक मक्खी न थी ।

दूसरे कटघर में दम उन्हीं के साथी बदर थे । उनको नहलाया-धुलाया न जाता था । उन पे गदगी इकट्ठी ही गयी थी, जूँ पड़ गये थे, मक्खियाँ भनभनाती रहती थीं । सफाई का कोई इन्तजार मन्हीं किया गया था । यह तो प्रयोग था एक ।

तीन महीने में मनोवैज्ञानिकों ने जा निष्कर्ष निकाला वह यह था कि वे जो गदे बदर थे, जिन पे मक्खियाँ झूमती रहती थीं और जिनके शरीर में जूँ पड़ गयी थीं, और जिनको नहलाया-धुलाया न गया था – वे ज्यादा शात और ज्यादा प्रसन्न । और जिनको नहलाया-धुलाया जाता था, ठीक भोजन दिया जाता था, वक्त पे दिया जाता था, और सब तरह की साज-सम्हाल रखी गयी थीं, एक मक्खी नहीं जाने दी गयी थी – वे बड़े परेशान ।

फिर यही प्रयोग कुत्तों पे भी दोहराया गया और यही परिणाम पाया गया ।

तो मनोवैज्ञानिको ने यह निष्कर्ष निकाला कि जब तुम्हारी जिदगी में बहुत परेशानी होती है, तब तुम ज्यादा शात होते हो। तुम परेशानी में उलझे होते हो, अशात होने की भी तुम्हे सुविधा नहीं होती। जैसे-जैसे तुम्हारे पास सुविधा होती जाती है, वैसे-वैसे तुम अशात होते जाते हो, क्योंकि सुविधा होती है, व्यस्तता नहीं होती, उलझाव नहीं होता—करो भी तो करो क्या। तो तुम शिकायतो में पड़ जाते हो।

यह मेंग अनुभव है कि जिनके जीवन में भी ध्यान की योड़ी-सी शान्ति आनी शुरू होती है, वे और लोभ से भर जाते हैं। जिनको भक्ति की योड़ी-सी झलक मिलती है, वे और लोभ से भर जाते हैं। जिनको नहीं मिलती है, वे उतने लोभ में भरे नहीं हैं, वे ज्यादा प्रसन्न मानूम पड़ते हैं। जिदगी का उलझाव काफी है। उन्हें स्वाद ही नहीं मिला तो लोभ कहाँ में लगे?

तुम गौर करो, गरीब आदमी को तुम ज्यादा शात पाओगे अमीर आदमी की बजाय। कारण साफ है वही जो बदरो के कटघरे में हुआ। अमीर को सब मिल रहा है, अब वह करे क्या! शिकायत ही करता है।

जो बाहर की अमीरी-गरीबी के सम्बन्ध में सच है, वही भीतर की अमीरी-गरीबी के सम्बन्ध में भी सच है।

अगर तुम्हें झलके मिल रही है योड़ी, जीनी मही जीनी भी तुम कहते हो, वह भी तुम्हारा शिकायती चित्त है, जो उन्हें जीनी बता रहा है। 'कभी-कभी मिलती है,' चला कभी-कभी सही। कभी-कभी भी तुम कहने हो, वह भी तुम्हारा शिकायती चित्त है। उसमें भी लोभ है। जो मिलता है वह तो स्वीकार कर लिया। वह तो जैसे तुम मालिक थे, मिलना ही चाहिए था, तुम अधिकारी थे उसके। बाकी जा नहीं मिल रहा है उसकी शिकायत है। तो तुमने भक्ति का राज नहीं समझा, तुम्हें उपासना की कला न आयी।

जो नहीं मिलता उसकी बात ही मन उठाओ। वह बात उठानी अशिष्ट है। उससे असम्भावना पता चलता है। जो मिलता है उसकी बात करो, उसका गुणगान करो, उसकी महिमा गाओ, उसके गीत गुनगुनाओ। और तुम जन्दी ही पाओगे और द्वार खुलने लगे। तुम जल्दी ही पाओगे और नयी हवाएँ आने लगी, और नयी झलके मिलने लगी।

जैसे-जैसे आदमी को मिलना शुरू होता है कुछ, वैसे-वैसे उसके पैर शिथिल होने लगते हैं। यह भी मन की प्रकृति समझ लेनी चाहिए है।

तुमने कभी ख्याल किया, अगर तुम कहीं यात्रा पर गये हो, पदयात्रा पर, किसी तीर्थयात्रा पर, जैसे-जैसे मंदिर करीब आने लगता है, वैसे-वैसे पैर शिथिल होने लगते हैं। अक्सर ऐसा है, अक्सर तुमने देखा होगा या अनुभव भी किया होगा कि ठेठ मंदिर के सामने जा के यात्री सीढ़ियों पे बैठ जाता है। अब ज्यादा दूर

नहीं है मामला । अब पाँच सीढ़ियाँ, दस सीढ़ियाँ चढ़नी हैं, और मंदिर । दस मील चल आया, पहाड़ चढ़ आया, अभी बड़ा नहीं बीच में कही, ठीक मंदिर के सामने आ के बैठ जाता है । लगता है आ ही गये ।

लेकिन तुम मंदिर की सीढ़ियों पर बैठो या हजार मील दूर मंदिर से बैठो, फर्क क्या है? सीढ़ियों पर जो है वह भी मंदिर के बाहर है । हजार मील दूर जो है, वह भी मंदिर के बाहर है ।

और परमात्मा का मंदिर कुछ ऐसा है कि तुम बैठे कि चूके । यह कोई जड़-पत्थर का मंदिर नहीं है कि तुम सीढ़ियों पर बैठे रहे तो मंदिर भी वहाँ रुका रहेगा, यह तो चैतन्य मंदिर है तुम बैठे कि चूके । तुम बैठे कि मंदिर दूर गया । तुम रुके कि खोया ।

‘सामने मजिल है और आहिस्ना उठते हैं कदम

। पाय आ कर दूर हो रहे हैं मजिल से हम ।’

सावधान रहना ।

जब ध्यान की लहरें उठने लगे, भक्ति की उमग आने लगे, शोडी रसवार बहे, शोडी मस्ती छाये, तो दो खनरे हैं । एक खनरा यह है, जो इस प्रश्न करने वाले ने पूछा है, वह खनरा यह है कि तुम कहो कि यह तो कुछ भी नहीं है, और चाहिए । तो भी तुम दूर हो जाओगे । दूसरा खनरा यह है कि तुम कहो, ‘बस हो गया । पहुँच गये ।’ और बैठ जाओगे, तो भी तुम छो गये ।

फिर करना क्या है?

चलते जाना है और शिकायत नहीं करनी है ।

चलते जाना है और अहोभाव से भरे रहना है ।

चलते जाना है और धन्यवाद देते जाना है ।

आठ पर गीत रहे धन्यवाद का, और पैर, पैर रुके न । धन्यवाद तुम्हारा रुकावट न बन जाए ।

अक्षर ऐसा होता है कि शिकायती चलते हैं और धन्यवादी बैठ जाते हैं । दोनों खनरे हैं ।

पहुँचना वही है जिसने उस गहरे सयोग को साथ लिया, धन्यवादी है, और चलता है । बड़ा गहरा सतुलन है, लेकिन अगर होश रखो तो सध जाता है ।

चौथा प्रश्न कल के सूत्र में कहा गया कि लौकिक और वैदिक कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं और निरोध भक्ति का स्वभाव है । और फिर यह भी कहा गया कि भक्ति को शास्त्रोक्त कर्म विद्धिपूर्वक करते रहना चाहिए । कृपया इस विरोध को स्पष्ट करे ।

विरोध नहीं है, दिखायी पड़ता है । जो भी पढ़ेगा, तत्क्षण दिखायी पड़ेगा

कि पहले तो कहा लौकिक और वैदिक कर्म, सबका त्याग हो जाता है, निरोध हो जाता है, छूट जाते हैं, और फिर कहा, करते रहना चाहिए।

विरोध दिखायी पड़ता है, विरोध है नहीं। जान के ही द्वारा सूत्र रखा गया है कि जब तुम्हारे जीवन से लौकिक और वैदिक, इस लोक के और परलोक के, सारी आकांक्षाएँ और भारे कर्म छूट जाते हैं, तो कही ऐसा न हो कि तुम कर्मों को छोड़ ही दो। कर्म तो छूट जाते हैं, लेकिन तुम करते रहना। इसका अर्थ हुआ कि अब तक तुमने कर्ता की तरह किया था, अब अभिनेता की तरह करना। फिर तत्क्षण विरोध खो जाता है। अब तक तुमने किया था कि मैं कर्ता हूँ, अब तुम अभिनेता की तरह करना। क्योंकि जिस विराट समूह के तुम हिस्से हो, वह मानता है कि ये कर्म उचित हैं। इनका अभिनय करना है। तुम्हारे लिए इनका कोई मूल्य नहीं है।

ऐसा ही समझो। जब शहर में आने हो तो बाएँ चलने लगते हो, जगल में जा के फिर बाएँ-दाएँ का हिसाब रखने की कोई जरूरत नहीं। जगल में तुम अकेले हो बाएँ चलो, दाएँ चलो, बीच में चलो, जैमा चलना हा चलो, क्योंकि वहाँ कोई पुलिस वाला नहीं खड़ा है, रास्ते पे कोई तख्तियाँ नहीं लगी हैं। वहाँ काई और ही नहीं तुम्हारे सिवाय।

अगर जगल में भी जा के तुम बाएँ-ही-बाएँ चलो तो तुम पागल हो, फिर तुम्हारा दिमाग खराब है। क्योंकि बाएँ चलने का कोई सबध चलने से नहीं है, बाएँ चलने का सबध भीड़ में चलने से है। जब अकेले हो तब मुवन हो।

तो, जो व्यक्ति भक्त की दशा का उपलब्ध हुआ, अपने भीतर अपने एकात में तो सभी नियमों के बाहर हो जाता है। वहाँ न तो कोई शास्त्र है, न कोई नियम है, न कोई रीति है, न कुछ पाना है, न कही जाना है। वह तो अपने भीतर परम अवस्था को उपलब्ध हो गया है। वह तो परमात्मा के साथ एकरस हो गया। भीतर, जहाँ सब एकात है, वहाँ तो अद्वैत हो गया, वहाँ तो अनन्यता सध गयी।

लेकिन बाहर, जब वह राह पर जाएगा, तब? तब वाएँ चलगा। कही ऐसा न हो कि जो तुमने भीतर अनुभव किया है, तुम उसे बाहर भी थोपने की चेष्टा में न पड़ जाओ, इसीलिए स्पष्ट सूत्र पीछे दिया है करने चाहिए। 'उस व्यक्ति को शास्त्रोक्त कर्म विधिपूर्वक करने चाहिए।' जान के, होश से, उन नियमों का पालन करना चाहिए। वे अभिनय होंगे अब। उनकी कोई अर्थवत्ता नहीं है।

लेकिन अगर तुम अधो के बीच रहते हो तो अधो के नियम मानो। अगर तुम अज्ञानियों के बीच रहते हो तो अज्ञानियों के नियम मानो।

इसे थोड़ा समझने जैसा है।

भारत में एक बड़ी प्राचीन धारणा है कि जब व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो जाए तो वह चेष्टापूर्वक नियमों को बैसा ही मानता रहे जैसा पहले मानता था जब ज्ञान का उपलब्ध न हुआ था । शायद यही कारण है कि मारत मे महावीर, बुद्ध, पतञ्जलि, नारद, कबीर, किमी का भी जीमिस जैसी सूली नहीं लगानी पड़ी, सूली पे नहीं लटकाना पड़ा, और न सुकरात जैसा जहर पिला के मारना पड़ा ।

इसके पीछे बहुत-से कारणों मे एक बुनियादी कारण यह भी है कि बुद्ध ने जो भीतर पाया, उसे जबरदस्ती उन लागों पे नहीं थोपा जो अभी उसको समझ भी न सकते थे । भीड़ से अकारण सधर्ष न लिया । भीड़ को फुसलाया, समझाया, जगाने की चेष्टा की, ऊपर उठाने के उपाय किये, लेकिन अकारण सधर्ष न लिया ।

जीसस सीधे सधर्ष मे आ गये । शायद जीसस के मुल्क मे, यहूदियों के समाज मे, ऐसा कोई सूत्र नहीं था । ऐसे किसी सूत्र का मै अब तक नहीं देख पाया हूँ यहूदियों के किसी भी शास्त्र मे, जिसमे यह कहा गया हो कि परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति समाज के नियमों को मान कर चले । टकराहट स्वाभाविक हो गयी ।

और जब टकराहट होगी तो एक बात पक्की है कि ज्ञानी तो एक है, अज्ञानी करोड़ है । भीड़ उनकी है । वे ज्ञानी को मार डानेगे । ज्ञानी अज्ञानियों को तान उठा पाएंगा, अज्ञानी ज्ञानी को मिटा देंगे ।

तो, भीड़ को मान कर चलना सिफ अपनी मुरक्खा ही नहीं है – क्योंकि ज्ञानी को अपनी मुरक्खा की क्या चिना । – भीड़ की मान कर चलना, भीड़ पर करुणा है । अन्यथा भीड़ तुम्हारे विपरीत हा जाएगी, तुम उम फुमला भी न सकोगे, राजी भी न कर सकागे, तुम उम दिशा भी न दे सकोगे ।

ऐसा समझा कि तुम मेरे साथ हा, तुम्हारी निजानवे बाते मै मान नैता हैं ता तुम भी मरो एक बात मानने का नैयार हा मकते हो, हालाकि मरो एक तुम्ह बिनकुल बर्बाद कर दगी, तुम जहाँ हा वहाँ से उखाड दगी । और तुम्हारी निजानवे मेरा कुछ बिगाडने वाली नहीं है । तुम्हारी निजानवे मेर लिए अभिनय होगी । मेरी एक तुम्हारे लिए जीवन-कान्ति हो जाएगी ।

आन्विरी प्रश्न जिसे भक्ति मे अनन्यता कहा है, क्या वही दर्शन का अद्वैत नहीं है ?

अर्थं तो वही है, लेकिन स्वाद मे बड़ा भेद है ।

अनन्यता मे रम है । अद्वैत वडा रुखा-मुखा शब्द है । अद्वैत तर्क का शब्द है, अनन्यता प्रेम का ।

अनन्यता कहती है एक हो गये ।

अद्वैत कहता है दो न रहे ।

बात तो वे एक ही कहते हैं। लेकिन 'दो न रहे', इसमें बड़ा तकं है। अद्वैत यह भी नहीं कहता कि 'एक' हो गये, क्योंकि 'एक' कहने से 'दो' का ख्याल आ सकता है। 'एक' में 'दो' का ख्याल छिपा ही है। इसलिए कान को सीधा न पकड़ के तर्कशास्त्र हाथ धूमा के उलटा पकड़ता है 'दो' न रहे, इसलिए अद्वैत। क्या हुआ, इसके सबध में बात नहीं कही जा रही है।

'अनन्यता' सीधी खबर है कि क्या हुआ।

'अद्वैत' बाहर-बाहर में खबर है।

अद्वैत ऐसा है जैसा कार्ड तुमसे पूछे कि 'प्रेम क्या', और तुम कहो, 'धृणा नहीं'। निषेध में कहा जा रहा है। माना कि प्रेम धृणा नहीं है, यह सच है, लेकिन प्रेम धृणा के न होने से बहुत ज्यादा है।

'अनन्यता' बड़ा प्यारा शब्द है। दूसरा दूसरा न रहा अनन्य का अर्थ है। अन्य अन्य न रहा, अनन्य हो गया। दूसरा दूसरा न रहा, एक हो गये। अद्वैत में ज्यादा है यह बात। इसमें थाड़ा रस है जो अद्वैत में नहो है।

'अद्वैत' गणित और तकं का शब्द है, 'अनन्यता' प्रेम और काव्य का। अद्वैत पर किताब लिखनी हो तो रुखी-सूखी होगी। अनन्यता पर किताब लिखनी हो तो काव्य होगा, तो गीत होगा।

अनन्यता प्रगट करनी हो तो नाच के प्रगट हो मकती है, जैसे नंतक नत्य से एक हो जाता है, ऐसा अनन्य। अनन्यता प्रगट करनी हो तो मस्ती से प्रगट होगी। अद्वैत प्रगट करना हो तो मस्ती की काई ज़रूरत नहीं, नृत्य की ज़रूरत ही नहीं है, नृत्य को बीच मे लाने मे बाधा पड़ेगी, सीधे तकं के नियम काफी हैं।

इसलिए वेदात के शास्त्र बड़े रुखे-सूखे हैं, मरुस्थल जैसे हैं। वे भी परमात्मा के ही शास्त्र हैं, क्योंकि मरुस्थल भी परमात्मा के ही है। लेकिन वहाँ हरियाली नहीं उगती। वहाँ फूल नहीं लगते और पक्षियों का कोई कलरव नहीं होता। झरनों का कलकलनाद वहाँ नहीं है। राह मे गुजरागे तो मरुस्थल में भी खजूर के पेड़ मिल जाते हैं, वे भी वेदात में न मिलेगे।

इसलिए वेदात ने एक बड़ा रुखा-मुखा शास्त्र दिया है। इसलिए वेदाती तकं करते रहे, खड़न-मड़न करते रहे, शास्त्राध करते रहे। भक्त नाच। उतना समय उसने इसमे न गंवाया।

चैतन्य नाचे। ले लिया तबूरा, गाँव-गाँव नाचे। नहीं किया कोई विवाद। मीरा नाची।

पग धुधरू बाँध नाची।

कोई विवाद नहीं किया।

विवाद मे कहाँ वह स्वाद जो पग-धुधरूओं मे है।

विवाद मे कहाँ वह स्वाद जो बीणा की झँकार मे है ।

और जब इतने मधुर उपाय उपलब्ध हो तो क्या तकं जैसा रुखा-सूखा उपाय खोजना ।

मीरा बरसी ।

जिसने देखा वह डूबा ।

जो पास आया, भूला ।

विस्मृत किया अपने का ।

एक डुबकी लगायी ।

कुछ ले के गया ।

चैतन्य के जीवन में तो दानों घटनाएँ हैं, क्योंकि पहले वे बड़े नक्षासत्री थे, न्यायविद् थे। और एक ही काम था उनके जीवन में विवाद। उन जैसा विवादी नहीं था। बगान मे उनकी बड़ी झाति थी। बड़े-बड़े पडिता का उन्हान हराया। लेकिन धीरे-धीर एक बात समझ मे आयी पडित हार जात है, वे जीन जाने हैं—लेकिन भीतर कोई रसधार नहीं वह रही, इस जीन का श्री इकट्ठा करके भी क्या करेगे। ऐसे जीवन बीता जाता है। यह प्रमाण-पत्र इकट्ठे करके क्या होगा कि कितने लोगों को जीत निया और कितने लोगों को तकं मे पराजित किया। यह तकं के जाल से क्या होगा।

एक दिन होश आया कि यह तो समय को गवाना है। फिर उन्होंने सब तकं छोड़ दिया। शास्त्र नदी में डुबा दिये। ले लिया मजीरा, नाचने लगे। तब उन्होंने किसी और ढग से लोगों को जीता। तकं से नहीं जीता, प्रेम से जीता। तब उनके चारों तरफ एक, एक अलग ही माहौल चलने लगा। उनकी हवा में एक और गध आ गयी। जहाँ उनके पैर पड़े, वही विजय-यात्रा हुई। जिसने उन्हे देखा, वही हारा। लेकिन इस हार मे कोई हराया न गया। इस हार मे कोई अहकार न था जीतने वाले का। इस हार मे हारने वाले का पीड़ा न हुई। यह प्रेम की हार थी जो कि जीतने का एक ढग है।

प्रेम को हार मे कोई हारता ही नहीं, दोनों जीतते हैं।

प्रेम मे जीते तो जीत, हारे तो जीत। वहाँ हार-जीत मे भेद नहीं है।

अनन्यता बड़ा मधुर शब्द है, अद्वैत बिलकुल रुखा-सूखा।

अनन्यता ऐसा है जैसा हरा फल, रम-भरा।

अद्वैत ऐसा है जैसे सूखा फल, जुरियाँ पड़ा, सब रस खा गया।

गुठली-ही-गुठली है अद्वैत।

पर अद्वैत की भाषा अहकार को जमती है, क्योंकि अहकार को गँवाने की शर्त नहीं है वहाँ।

इसलिए तुम देखोगे अद्वैतवादी सन्यासी हैं भारत में, उनको तुम बड़ा अहममन्य पाओगे, बड़े अहकार से भरा हुआ पाओगे। क्योंकि सारी पकड़ तर्क की है। तुम भक्त की कमनीयता उनमें न पाओगे। भक्ति की लोच, भक्त का सौंदर्य, वहाँ उसका अभाव होगा।

भारत ने अद्वैत के नाम पर बहुत खोया। भारत अकड़ा अद्वैत के कारण, अहकारी हुआ, दम्भ बढ़ा, शास्त्र बढ़े, तर्कजाल फैला। लेकिन भारत का हृदय धीरे-धीरे रस से शून्य होता चला गया। तो ऐसा कुछ हो गया जैसे कि उत्तप्त गर्भी के दिन आते हैं, सूरज तपता है और पृथ्वी सूख जाती है और दरारे पड़ जाती है।

भक्ति की वर्षा चाहिए।

—ताकि फिर दरारे खो जाएं।

—धरती का कण्ठ फिर भीगे।

—धरती के प्राण तृप्त हो।

—तृष्णा मिटे।

—और धरती धन्यवाद में आकाश को हजारो-हजारो वृक्षों के फूल भेट करे।

भक्ति वर्षा है। अद्वैत उत्तप्त सूर्य है।

पर अपनी-अपनी भौज। अद्वैत से भी कोई पहुँचना चाहे तो पहुँच जाता है। लेकिन तब बड़ा ध्यान रखना जरूरी है कि कही यह तर्कजाल अहकार को मजबूत न करे।

भक्ति सुगम है। और भक्ति में भटकना कम सभव है। क्योंकि भक्ति की पहली ही शर्त है अहकार को छोड़ना।

भक्ति का सारा जोर 'उस' पर है।

अद्वैत कहता है— 'अह ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ। 'ठीक है बिलकुल बात। अगर जोर ब्रह्म पे हो तो ठीक है, कही जोर 'मैं' पे हुआ तो बिलकुल गलत है। कौन तय करेगा, किस पे जोर है? 'अह ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ।'— जब मैं यह कहूँ कि मैं ब्रह्म हूँ तो तुम कैसे तय करोगे कि मेरा जोर कहाँ है 'मैं' पर या ब्रह्म पर? अगर ब्रह्म पे हुआ तो सब ठीक, अगर मैं पे हुआ तो सब गलत। वाक्य वही है।

लेकिन भक्ति 'मैं' पर बात ही नहीं उठाती। भक्ति कहती है 'उसके' अनन्य प्रेम में डूब जाना, 'उसके' परम प्रेम में डूब जाना भक्ति है। 'उसके'!

आज इतना ही।

पांचवाँ प्रवचन

दिनांक १५ जनवरी, १९७६, श्री रघुनोद्धा लालभ, पूना

कलाओं की कला है भक्ति

पिराट का अनुभव — मुश्किल । पर अनुभव से भी ज्यादा मुश्किल है अभिव्यक्ति । जान तेना बहुत मुश्किल — जना देना और भी ज्यादा मुश्किल । क्योंकि व्यक्ति मिट सकता है बूँद खो सकती है मागर मे, और अनुभव कर ले सकती है मागर का, लेकिन दूसरी बूँदों को कैसे कहे, जिन्होंने मिटना नहीं जाना, जो अभी अपनी पुरानी सीमाओं मे आवृद्ध है उनको कैसे कहे ।

एक पक्षी उड़ सकता है खुने आकाश मे अपने पिंजरे से, लेकिन जो पिंजरे मे बद है, उन्हें खुने आकाश की खतर कैसे द ।

खुला आकाश एक अनुभव है — बड़ा सूक्ष्म । प्राणों में उम्रका स्वर्ण होता है, गहरे मे उम्रकी अनुभव नहीं है — लेकिन शब्दों में कैसे उमे कोई बाँधे ।

शब्द मे बाँधते ही आकाश आकाश नहीं रह जाता । शब्द मे बाँधते ही विराट विराट नहीं रह जाता । इधर शब्द मे बाँधा कि उधर अनुभव झूठा हुआ ।

इसलिए बहुत है जो जान के चुप रह गये है । बहुत हैं जो जान के गूँगे हो गये हैं । गूँगे ये नहीं, जानने ने गूँगा बना दिया । बहुत थोड़े-से लागो ने हिम्मत की है — दूर की खबर तुम तक पहुचाने की । वह हिम्मत दाद देने के योग्य है । क्योंकि असभव है चेष्टा । माध्यम इतने अलग हैं ।

समझे जैसे देखा सौदर्य आँख से, और फिर किसी को बताना हो और वह अधा हो, तो क्या करियेगा ? किर कोई और माध्यम चुनना पड़ेगा, आँख का माध्यम तो काम न देगा । तुमने तो आँख से देखा था सौदर्य सुबह का, या रात का तारो से भरे आकाश का, अधे को समझाना है, आँख का माध्यम तो काम नहीं देगा, तो सिनार पर गीत बजाओ ! धुन बजाओ ! नाचो ! पैरो मे धूंधर बाँधो ! लेकिन माध्यम अलग हो गया जो देखा था, वह सुनाना पड़ रहा है ।

तो जो देखा था, वह कैसे सुनाया जा सकता है ? जो आँख ने जाना, वह कान कैसे जानेगा ?

इससे भी ज्यादा कठिन है बात सत्य के अनुभव की । क्योंकि अनुभव हाता है निर्विचार में और अभिव्यक्ति देनी पड़ती है विचार मे । विचार सब झूठा कर देते हैं ।

तलक्षणानि यच्यन्ते नानापतभेदात् ॥ १५ ॥
पूजादिष्पनुराग इति पाराशर्य ॥ १६ ॥
कथादिष्पिति गर्ज ॥ १७ ॥
आत्मात्यपिरोक्षेनेति शाङ्कित्य ॥ १८ ॥
नारदरतु तदर्पिताख्यिलाचारिता
तद्विरमरणे परमव्याकुलतेति ॥ १९ ॥
आत्येष्येष्यम् ॥ २० ॥
यथा ब्रजगोपिकानाम् ॥ २१ ॥
तवापि न माहात्म्यज्ञानविरमृत्यप्याद ॥ २२ ॥
तद्विनीन जाराणामिष ॥ २३ ॥
नारत्येष तरिमरतसुखसुखित्यम् ॥ २४ ॥

फिर भी हिम्मतवर लोगों ने चेष्टा की है करुणा के कारण, शायद किसी के मन मे थोड़ी भनक पड़ जाए, न सही पूरी बात, न सही पूरा आकाश, थोड़ी-सी मुक्ति की सुगबुगाहट आ जाए, थोड़ी-सी पुलक पैदा हो जाए, न सही पूरा दृश्य स्पष्ट हो, प्यास ही जग जाए, सत्य न बताया जा सके न सही, लेकिन सत्य की तरफ जाने के लिए इशारा, इगित किया जा सके- उतना भी क्या कम है ।

‘हजारो माल नर्गिस अपनी बेनूरी पे राती है
बड़ी मुश्किल से होता है चमन मे दीदावर पैदा ।’

हजारो माल तक नर्गिस राती है, कोई उसकी रोशनी को देखने और दिखाने वाला नहीं । फिर कही कोई दीदावर पैदा होता है, कही कोई एक आँख वाला पैदा होता है ।

नर्गिस को तो शायद एक आँख वाला भी, उसकी रोशना के लिए बोध दिला देता होगा कि मत रो, तु मुन्दर है, लेकिन मत्य के लिए तो आग भी कठिनाई है । हजारो साल मे कभी कोई दीदावर वहाँ भी पैदा होता है । फिर वह जो वहता है, वह कोई गीत जैसा नहीं है, हल्लाने जैसा है, वह नाच जैसा नहीं है, लगड़ाने जैसा है । और नाच मे आर लगड़े की गति मे जितना अतर है, किसी के मध्यर गीत में और किसी के हकलाने मे जितना अतर है, उतना ही अतर मत्य को देखने मे और सत्य को कहने मे है ।

बहुत तो चूप रह गये । उन्होंने यह झक्कट न ली । लोगा ने पूछा भी ऐसे चूप रह जाने वालों स । वे तो ढोग कर गये कि दीवाने हैं । वे तो पागल बन गये । उन्होंने तो अपने बारो तरफ एक पागलपन का अभिनय कर लिया । धीरे-धीरे लोग समझ गये कि पागल हो गये है, छोड़ो भी ।

‘चलो अच्छा हुआ काम आ गयो दीवानगी अपनी
वर्ना हम जमाने-भर को समझाने कहाँ जाते ।’

बहुत है जिन्होंने मत्य को जान कर अपने को पागल घायित कर दिया है । सूफ़ी उनको मस्त कहते हैं । हुनिया उनको पागल समझ लेनी है । झक्कट मिट्टी । अब काई पूछते भी नहीं आता कि क्या जाना । पागल से कौन पूछता है ।

लेकिन कुछ थांडे-से लोग इतना आमान रास्ता नहीं लेते । वे लाख तरह की चेष्टा करते हैं कि तुम्हे किसी तरह जला दे । तुम्हारा हाथ पकड़ के चलाने की कोशिश करते हैं । तुम्हारे मीतर तुम्हारे प्रेम की आग को जलाने की काशिश करते हैं । इंधन बन जाते हैं तुम्हारे हृदय मे कि लपटे लगे । हजार तरह के झूठ भी बोलते हैं, सिफ़े इसीलिए कि सत्य की तरफ थोड़ा इशारा हो जाए । तो, यह पाप करने जैसा है ।

लाओत्सु ने कहा है 'सत्य बोला नहीं कि झूठ हुआ नहीं। जो भी बोला जाएगा वह झूठ हो जाएगा।'

इसका यह अथ हुआ कि बुद्धपुरुष झूठ बोलते रहे, बोलते तो झूठ ही बोले, क्योंकि बोलने में सब तो आता नहीं, बोलने में ही झूठ हो जाता है।

जैसे तुमने कभी देखा, लकड़ी सीधी, पानी में डालो, तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। झूठ हो गया। बाहर खीची, सीधी-की सीधी है। पानी में डालो, फिर तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। क्या हो जाता है? पानी का माध्यम हवा के माध्यम से भिन्न है। तो हवा के माध्यम में लकड़ी का जो रूप है, गग है, वह पानी में नहीं रह जाता। जानते हो तुम भलीभांति कि लकड़ी सीधी है, तुमने ही डाली है, लेकिन तुम्हीं को तिरछी दिखायी पड़ने लगती है।

उनकी तो बात ही छोड़ दा—सुनने वालों की—जब सत्य को जानने वाला सत्य बोलने की कोशिश करता है, उसका खुद ही तिरछी दिखायी पड़ने लगता है। भाषा का माध्यम, अभिव्यक्ति का माध्यम।

नारद न इन मूत्रों में, भक्ति की कितने-कितने ढगों से व्याख्या की गयी है, उनक थोड़े-से उदाहरण दिये हैं।

'अब नाना मतों के अनुसार उस भक्ति के लक्षण बताते हैं।'

भक्ति तो एक है, मत नाना है। क्योंकि जिसको जैसा सूझा, वैसी उसने अभिव्यक्ति दी है। जिसको जैसी समझ आयी, जिसका जैसा ढग था, उसने वैसे रूप भर। ये लक्षण भक्ति के नहीं हैं, अगर गौर से समझो तो ये लक्षण, जिस भक्ति ने भक्ति का गीत गाया, उसके हैं। ये देखने के ढग के सम्बन्ध में खबर देते हैं, जो देखा गया उस सम्बन्ध में कुछ भी खबर नहीं देते।

बहुत मत है। बहुत मत होंगे ही, क्योंकि भक्ति अनत है। उसके बहुत किनारे हैं, और कहीं से भी धाट गना के तुम अपनी नौका को छोड़ दे सकते हो सागर में। फिर जब तुम सागर की गहराइयों में पहुँचोगे, मध्य में पहुँचोगे, उस पार पहुँचोगे, तो स्वभावत तुम उमी धाट की बात करोगे जिससे तुमने नाव छोड़ी थी। और तुम कहोगे कि जिसको भी नाव छोड़नी हो, वही धाट है। तुम्हे और धाटों का पता भी नहीं है। एक धाट काकी है। तुम अपने ही धाट का वर्णन करोग। दूसरा किसी और धाट से उतरा था सागर में। सागर के धाटों का कोई हिसाब है। कोई हिन्दू की तरह उतरा था, कोई मुसलमान की तरह उतरा था, कोई ईमाइ की तरह उतरा था। ये सब धाट हैं, तीर्थ। फिर जो जहाँ से उतरा था, उसी की बात करेगा। दूसरे पर पहुँच कर भी, तुमने जिस किनारे से नाव छोड़ी थी, तुम्हार दूसरे किनारे की अभिव्यक्ति में उस किनारे का हाथ रहगा।

तो ये लक्षण जो भक्ति के हैं, भक्तों ने बताये हैं, इन में ध्यान रखना जो

जहाँ से पहुँचा उसने उसी की बात की । यह चर्चा मजिल की कम, यात्रा की ज्यादा है, यह आखिरी कदम की नहीं, पहले कदम की है । और ठीक भी है, क्योंकि तुम, जो चले नहीं हो, उन्हे पहले कदम की ही जरूरत है, आखिरी कदम की जरूरत भी नहीं है । दूसरे किनारे की चर्चा हो नहीं सकती, हाँ भी तो तुम्हारे किसी काम की नहीं है । अभी तो इस किनारे से भी तुम दूर खड़े हो । अभी तो इस किनारे पे आने के लिए भी तुम्हे हिम्मत जुटानी पड़ेगी ।

और निश्चित ही, सभी धाटों से नाव छोड़ने की कार्य जरूरत नहीं है, एक ही धाट पर्याप्त है । सभी से छोड़ना भी चाहागे तो कैसे छोड़ागे? जब भी छोड़ागे, एक ही धाट से छोड़ोगे ।

किसी धाट पर पत्थर जड़े हैं । किसी धाट पर हीरे जड़े होंगे । फिसी धाट पर आकाश को छूते वृक्ष खड़े हैं । किसी धाट पे महस्तल हागा, रेत रा विस्तार होगा । किसी धाट पर आदमी ने कुछ व्यवस्था कर ली होगी मीढ़ियाँ लगा ली होगी । किसी धाट पर कार्य व्यवस्था न हागा, अराजक होगा । पर इसमें क्या फर्क पड़ता है । नाव छूट जानी है सभी धाटों से ।

‘शोरे-नाकूसे-बरहमन हा कि बागे-ह्रम

छुपके हर आवाज में तुझको सदा देता हैं मैं मैं ।’

जो जानते हैं, वे कहते हैं यह मदिर के पुनार्जी के धटों की आवाज हा कि मस्तिजद के मुल्ला को, सुबह की बाग हो, इसमें काढ़ फक नहीं पड़ता ।

‘छुपके हर आवाज म तुझको सदा दाता हैं मैं ।’

हर आवाज मे, हर ढग मे, हर व्यवस्था मे, खोजने वाला तो वही चैतन्य है, वही प्राण है – प्यासे, प्रेम के लिए आतुर ।

‘अब नाना मतो के अनुसार उस भक्ति के नक्षण बनात है ।’

‘पराशर के पुत्र व्याम के अनुमार भगवान की पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है ।’

पूजा का अर्थ होता है परमात्मा का प्रतिस्थापित करना, एक पत्थर की मूर्ति हो या मिट्टी की मूर्ति है, परमात्मा को उसमें आमत्रित करना, परमात्मा को कहना कि ‘इसमें आओ और विराजो – क्योंकि तुम हा निराकार कहाँ तुम्हारी आरती उतारूँ? हाथ मेरे छोटे हैं, तुम छोटे बना! तुम हो विराट कहाँ धूप-दीप जलाऊँ? मैं छोटा हूँ, सीमित हूँ, तुम मेरी मीमा के भीतर आओ! तुम्हारा और-छोर नहीं कहाँ नाचूँ? किसके भासने गीत गाऊँ? तुम इस मृति मे बैठो! ’

पूजा का अर्थ है परमात्मा की प्रतिस्थापना सोमा मे, आमत्रण । इसलिए पूजा का प्रारम्भ उसके बुलाने से है ।

आँगरेजी मे शब्द है ‘गॉड’ भगवान के लिए । वह शब्द बड़ा अनूठा है ।

उसका मूल अर्थ है—जिस मूल धातु से वह पैदा हुआ है, भाषाशास्त्री कहते हैं, उस मूल धातु का अर्थ है—‘जिसको बुलाया जाता है’। बस इतना ही अर्थ है। जिसको बुलाया जाता है, जिसको पुकारा जाता है—वही भगवान्।

दूसरा, जिसने कभी पूजा का रहस्य नहीं जाना, देखेगा तुम्हे बैठे पत्थर की मूर्ति के सामने, समझेगा ‘नासमझ हो! क्या कर रहे हो?’ उसे पता नहीं कि पत्थर की मूर्ति अब पत्थर की नहीं—मूण्यचिन्मय हो गया है। क्योंकि भक्त ने पुकारा है! भक्त ने अपनी विवशता ज्ञाहिर कर दी है। उसने कह दिया है कि ‘मैं मजबूर हूँ। तुम जैसा विराट मैं न हो सकूँगा, तुम कृपा करो, तुम तो हो सकते हो मेरे जैसे छोटे। मेरी शक्ति नहीं इतनी बड़ी कि तुम जैसा विराट हो सकूँ। दया करो। तुम ही मुझ जैसे छोटे हो जाओ ताकि थोड़ा सवाद हो सके, थोड़ी गुपत्तगूँ हो सके, दो बातें हो सके। मैं फूल चढ़ा सकूँ, आरती उतार सकूँ, नाच लूँ तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा। सभी रूप तुम्हारे हैं, यह एक और रूप तुम्हारा सही। मुझे बहुत कुछ मिल जाएगा, तुम्हारा कुछ खोएगा नहीं।’

भक्त की आँख से देखना मूर्ति को, नहीं तो तुम मूर्ति को न देख पाओगे, तुम्हें पत्थर दिखायी पड़ेगा, मिट्टी दिखायी पड़ेगी। भक्त ने वहाँ भगवान् को आरोपित कर लिया है। और जब परिपूर्ण हृदय से पुकारा जाता है, तो मिट्टी भी उसी की है। मिट्टी उसमें खाली तो नहीं। पत्थर उसके बाहर तो नहीं। वह वहाँ छिपा ही पड़ा है। जब कोई हृदय से पुकारता है तो उसका आविर्भाव हो जाता है।

इसलिए भक्त जो देखता है मूर्ति में, तुम जल्दी मत करना, तुम नहीं देख सकते। देखने के लिए भक्त की आँखें चाहिए।

‘बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा हजारों साल नर्सिं अपनी बेनूरी पे रोती है।’

पत्थर रोते हैं हजारों साल, तब कहीं कोई पत्थर में परमात्मा को देखने वाला पैदा होता है।

आँख चाहिए।

पूजा का प्रारम्भ है आमत्रण में कि आओ, विराजो, प्रतिस्थापना में।

। मूर्ति तो ज्ञरोखा है, वहाँ से हम विराट में ज्ञांकते हैं।

तुम अपने घर में खड़े हो, ज्ञरोखे से आकाश में ज्ञांकते हो। तुम चौंदतारों की बात करो, दूर फैले नील-गगन की बात करो, और कोई दूसरा हो जिसको सिर्फ़ चौखटा ही दिखायी पड़ता हो खिड़की का, वह कहे, ‘कहाँ की बाते कर रहे हो? पागल हो गये हो? लकड़ी का चौखटा लगा है, और तो कुछ भी नहीं। कहाँ के चौंदतारे?’

तो, जब तुम्हे मूर्ति में कुछ भी न दिखायी पड़े तो जल्दी मत करना, तुम्हे चौखटा ही दिखायी पड़े रहा है ।

भक्त जब हृदयपूर्वक बुलाता है तो मूर्ति खुल जाती है, उसके पट बद नहीं रहते । भक्त को उस मूर्ति के साध्यम से कुछ दिखायी पड़ने लगता है । उसे देखने के लिए भक्त की ही आँखें चाहिए ।

कहते हैं कि मजनू जब बिलकुल पागल हो गया लैला के लिए, तो उस देश के सम्राट ने उसे बुलाया । उसे भी दया आने लगी, द्वार-द्वार गली-गली कूचे-कूचे वह पागल 'लैला-लैला' चिल्लाता फिरता है । गाँव-भर के हृदय पर्मीज गये । लोग उसके आँसुओं के साथ रोने लगे । सम्राट ने उसे बुलाया और कहा, 'तू मत रो ।' उसने अपने महल से बारह सुदरियाँ बुलाई और उसने कहा, 'इम पुरे देश में भी तू खोजेगा, तो ऐसी मुदर स्त्रिया नुँझे न मिलेगी । काई भी तू चुन ले ।'

मजनू ने आँख खाली । आँसू थमे । एक-एक स्त्री का गौर से देखा, किर आँमू बहने लगे और उसने कहा कि लैला तो नहीं है । सम्राट ने कहा, 'पागल । तेरी लैला मैंने देखी है, साधारण-सी स्त्री है । तू नाहक ही बावला हुआ जा रहा है ।'

कहते हैं, मजनू हँसने लगा । उसने कहा, 'आप ठीक कहते होगे, नेकिन लैला का दखना हो तो मजनू की आँख चाहिए । आपने देखी नहीं । आप देख ही नहीं सकते, क्योंकि देखने का एक ही ढग है लैला को-वह मजनू की आँख है । वह आपके पास नहीं है ।'

{ भगवान का देखने का एक ही ढग है, वह भक्त की आँख है ।

तो कोई अगर मदिर मे पूजा करता हो तो नाहक हँसना मत ।

मूर्ति-भजक हाना बहुत आसान है, क्योंकि उसके लिए कोई सबदेनशीलता तो नहीं चाहिए । मूर्तियों का ताड़ देना बहुत आसान है, क्योंकि उसके लिए कोई हृदय की गहराई तो नहीं चाहिए ।

मूर्ति में अमूर्त को देखना बड़ा कठिन है । वह इस जगत की सबस बड़ी कला है । आकार मे निराकार को ज्ञांक लेना, शब्द में शून्य को मुन लेना, दृश्य मे अदृश्य को पकड़ लेना—उससे बड़ी और काई कला नहीं ।

इसलिए प्रेम कलाओं की कला है, सरताज है । उसके पार फिर कुछ भी नहीं है ।

पूजा का अर्थ है आकार में निमत्रण निराकार को ।

और अगर तुमने कभी पूजा की है तो तुम जानागे, तुम्हारे बुलाने के पहले मूर्ति साधारण पत्थर का टुकड़ा है, तुम्हारे बुलाने के बाद नहीं ।

रामकृष्ण पूजा करते थे । अनेक दिन बीत गये, वे रोज़ रोते, घटो पूजा करते, फिर एक दिन गुस्से मे आ गये । तलवार टॅंगी थी काली के मदिर में मूर्ति के

सामने, तलवार उतार ली, और कहा, 'बहुत हो गया । इतने दिन से बुलाता हूँ । अगर तू प्रगट नहीं होती तो मैं अप्रगट हुआ जाता' हूँ । या तो तू दिखायी दे, तू हो, या मैं मिटा हूँ ।' तलवार खीच ली । एक क्षण और, और गर्दन पे मारे लेते थे, कि सब कुछ बदल गया । मूर्ति जीवत हो उठी । वह काली न थी । मातृत्व साकार हा उठा । ओठ जो बद थे, पत्थर के थे, मुस्कराये । आँखे जो पत्थर की थी, और जिनसे कुछ दिखायी न पड़ता था, उन्होने रामकृष्ण मे झाँका । तलवार झनकार के साथ फर्श पर गिर गयी ।

रामकृष्ण छह दिन बेहोश रहे । भक्त घबड़ा गये । मित्र परेशान हुए । डर तो पहले ही था कि यह आदमी थोड़ा पागल-मा है, यह अब और क्या हो गया । छह दिन की बेहोशी के बाद जब होश मे आये, तो जो पहली बात कही, वह यही कही कि इनने दिन होश मे रखा, अब किर क्यों बेहोशी मे भेजती है ? इनने दिन होश मे रखा—छह दिन—अब क्यों बेहोशी मे भेजती है ? फिर से बुना ले । जा मत ! स्क !'

इनना विराट था, इनना प्रगाढ था अनुभव कि अपने को सम्हाल न सके । डगभगा गये ।

बैंद मे जब सागर उतरे तो ऐसा हांगा ही । तुम्हारे आँगन मे जब पूरा आकाश उतर आये तो तुम्हारे आँगन की दीवाले कहाँ तक सम्हली रहेगी, गिर जाएगी ।

उन छह दिनों रामकृष्ण ने चिन्मय का जलवा देखा । वे छह दिन मतत परमात्मा के साक्षात्कार के दिन थे । वह उनकी पहली समाधि थी ।

लेकिन पूजा का अर्थ यही है पहले परमात्मा को आमत्रित करो, फिर अपने को उसके चरणों मे चढ़ा दो रामकृष्ण जैसे, कि कह दो कि तू ही है, अब मैं नहीं ।

तुम जितनी दूर तक परमात्मा को बुलाते हो, जितनी गहराई तक बुलाते हो, उतनी दूर तक, उतनी गहराई तक वह आता है । तुम जब अपने को मिटाने को भी तत्पर हो जाते हो तो तुम्हारे अतरतम को छू लेता है । तुम्हारी बिना आज्ञा के वह तुम मे प्रवेश न करेगा । वह तुम्हारा सम्मान करता है । वह कभी भी किसी की सीमा मे आक्रमण नहीं करता । बिनबुलाया मेहमान परमात्मा कभी नहीं होता । तुम बुलाते हो, मनाते हो, समझाते-बुझाते हो, तो मुश्किल से आता है ।

भक्ति खो गयी है जगत से, क्योंकि भक्ति की कला बड़ी कठिन है—मब कुछ दाँव पर लगाने की कला है, जू़ा है । बड़ी हिम्मत चाहिए । आँख के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए ।

‘पराशर के पुत्र व्यास के अनुसार भगवान की पूजा में अनुराग होना भक्ति है।’

पूजा तो बहुत लोग करते हैं, अनुराग होना चाहिए। सस्कारवशात् है तो फिर भक्ति नहीं है। चैकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी तुम्हारे घर के लोग मंदिर में जाते रहे तो तुम मंदिर जाते हो, मस्जिद जाते रहे तो मस्जिद जाते हो, आकार को पूजा तो आकार को पूजते हो, निराकार को पूजा तो निराकार को पूजते हो — औपचारिक, परम्परागत, लकीर के फकीर, दूसरों के पदचिह्नों पर चलने वाले। नहीं, ऐसे न होगा।

उधार कोई परमात्मा तक कभी नहीं पहुँचता। तुम्हारी व्यास चाहिए, परपरा नहीं। तुम्हारी आँख चाहिए, लकीर की फकीरी और उसका अधापन नहीं।

तो शर्त है पूजा में अनुराग। प्रेम चाहिए। वैसा ही प्रेम चाहिए जैसे जब तुम किसी के प्रेम में पड़ जाते हो, तो सब औपचारिकता खो जाती है, सब शिष्टाचार खो जाता है। पहली दफा तुम किसी और ही गहराई से बालता शुरू करते हो। इसके पहले भी बोलते रहे थे, लेकिन वह ओठों की बात थी। अब हृदय बोलता है। पहली दफा तुम किसी और ही हवा में और किसी और ही माहौल में जीत हो। क्या हो जाता है?

माधारण प्रेम में क्या होता है? दूसरे में तुम्हे कुछ दिखायी पड़ने लगता है जो अब तक तुम्हे कभी किसी में दिखायी न पड़ा था, तुम्हारी आँख खुलती है।

तुमने कभी खयाल किया, प्रेमी दूसरों को पागल मालूम पड़ने हैं। अगर कोई दूसरा गिरी के प्रेम में पड़ जाए और दीवाना हो जाए, तो तुम हँसोगे, तुम कहोगे, ‘पागल है, नासमझ है। समझ में आ। होश में आ। क्या कर रहा है?’

सारी दुनिया हँसती है प्रेमी पर, क्योंकि सारी दुनिया अधी है और प्रेमी के पास आँख आ गयी है, उसे कुछ दिखायी पड़ता है जो किसी को दिखायी नहीं पड़ता।

‘हम खुदा के भी कभी काइल न थे
उनको देखा तो खुदा याद आया।’

प्रेमी पहली दफा किसी साधारण व्यक्ति में परमात्मा के दर्शन कर लेता है, कोई झलक पाता है। तुम जिसके प्रेम में पड़ जाते हो, वही तुम्हें परमात्मा की थोड़ी-सी झलक पहली दफा मिलती है, तुम्हारा आस्तिक होना शुरू हुआ।

प्रेम आस्तिकता की पहली गध, पहली लहर। प्रेम आस्तिकता की तरफ पहला कदम। क्योंकि कम-स-कम चलो एक में ही सही, परमात्मा दिखा तो। और एक में दिखा तो सब में भी दिख सकता है, न भी दिखें तो भी इतना तो तुम समझ ही सकते हो कि एक में दिखा तो सब में भी होगा।

लेकिन जल्दी ही तुम्हारी प्रेम की आँख धुधली हो जाती है जिसमें तुम्हे परमात्मा दिखा था, वह भी एक ख्वाब, एक सपना हो जाता है, जल्दी ही तुम भूल जाते हो, धूल जम जाती है।

जब प्रेम की घटना घटे तो जल्दी करना उसे पूजा बनाने की, अन्यथा समय ढाँक देगा।

इसलिए मैं कहता हूँ, जवानी पूजा के दिन हैं। लेकिन लोग कहते हैं, पूजा बुढ़ापे में करेगे। वे कहते हैं, जवानी में प्रेम करेंगे, बुढ़ापे में पूजा करेंगे। इतना फासला प्रेम में और पूजा में होगा तो प्रेम तो मर ही जाएगा, पूजा आ न पाएगी। लाग यही कह रहे हैं कि प्रेम तो जवानी में करेंगे, जब प्रेम मरने लगेगा, मर ही जाएगा, तब फिर पूजा कर लेंगे।

और असलियत यह है कि प्रेम ही पूजा बनता है। प्रेम के मरने से पूजा नहीं आती, प्रेम के पूरे निखरने से पूजा बन जाती है। एक मे जो दिखायी पड़ा है, अब इस सूत्र को पकड़ लेना और इसको औरों में भी देखने की काशिश करना। जब आँख ताजी हो, नहर नयी हो, उमर अभी जोश-भरी हो, उत्साह युवा हो, तो जल्दी कर लेना। जो तुम्हे अपनी प्रेयभी में, प्रेमी में दिखा हो, बच्चे में दिखा हो, अपने बेटे में दिखा हो, मित्र में दिखा हो, जल्दी करना, क्योंकि उस वक्त तुम्हारे पास आख है, उस वक्त सारे जगत को गौर स देख लेना तुम अचानक पाओगे, वह मध्ये क भीतर छिपा है, क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है।

‘पूजा मे अनुराग’ ।

पूजा करते तुम बहुत लोगों को देखोगे, लेकिन अनराग नहीं है, प्रेम नहीं है, पूजा तो है, विधि-विधान है। सात दफा आरती उतारनी है तो तुम सात दफा आरती उतारत हो, गिनती से उतारते हो, कही आठ न हो जाए। वहाँ भी कजूसी है।

रामकृष्ण पूजा करते तो कभी-कभी दिन-दिन-भर करते, खाना-पीना भूल जाते। उनको पत्नी शारदा द्वार पर खड़ी है, वह कहती है कि परमहस देव, समय निकला जा रहा है, सूर्यास्त हुआ जा रहा है, दिन-भर से आप भूखे हैं। मगर वहाँ कोई परमहस देव है कि सुनें। वे नाच रहे हैं। भूख की खबर किसको लगे। भूख की याद किसको आये। जो भगवान का भोग लगा रहा हो, ससार के भोजन उसे क्या याद आए। गिर पड़ते, तभी उठा के लाये जाते, अपने से न आते। बहुत दफे उन्हे कहा गया, ‘ऐसा न करे। पूजा ठीक है, घड़ी-दो-घड़ी की ठीक है।’ पर रामकृष्ण कहते कि घड़ी-दो-घड़ी की याद रह जाए तो पूजा होती ही नहीं।

तुमने कभी अपने को पूजा करते देखा, बीच-बीच मे तुम घड़ी देख लेते

‘हो ! घड़ी को वही रख आया करें जहाँ जूते छोड़ आते हो । जूते भी आ जाएं, मंदिर खराब न होगा, घड़ी नहीं आनी चाहिए । ज्ञानों में ऐसा कुछ भी नहीं है, घड़ी नहीं आनी चाहिए । क्यों ? क्योंकि परमात्मा है शाश्वतता । समय को अपने साथ लिये तुम उसे न छू सकोगे । वह है अनत, तुम क्षणों को साथ लिये बैठे हो । और तुम्हारा मन बार-बार देख रहा है कि कब दुकान जाएं, कब दफ्तर जाएं, कब बाजार जाएं । तो अच्छा है, जाना ही मत । ऐसा समय जो तुमने मंदिर में बिताया, और बाजार के सोच में बिताया, बिलकुल व्यर्थ गया, इसका उपयोग बाजार में ही कर लेना, कुछ तो लाभ होगा । यह तो कुछ भी लाभ न हुआ ।

मैंने देखा है लोगों को पूजा करत, नमाज पढ़ते ।

मैं राजस्थान जाता था अक्सर, तो चितोड़गढ़ पर गाड़ी बदलती है । माँझ की नमाज का समय होता, कोई घटे-भर गाड़ी रुकती, तो जिनने भी मुसलमान होते ट्रेन में, वे उतर के नमाज करने लगते, बिछा लेते अपनी चादर, बैठ जाते नमाज करने, मगर हर मिनट-दो मिनट में पीछे लौट के देखते रहते कि कहीं गाड़ी छूट तो नहीं गयी । यह मैंने बहुत बार देखा ।

एक मुसलमान मित्र मेरे साथ यात्रा कर रहे थे । वे भी पूजा के लिए गये । नल के पास प्लेटफार्म पर उन्होंने अपनी चादर बिछा ली, पूजा करने बैठ गये, मैं उनके पीछे खड़ा हो गया । जब उन्होंने गर्दन पीछे मोड़ी तो मैंने उनकी गर्दन बापस पकड़ के उस तरफ मोड़ दी । बहुत नाराज हुए । उस बक्त तो कुछ बोल न सके । जल्दी-जल्दी उन्होंने नमाज पूरी की । कहा, ‘यह क्या मामना है ? आपने क्यों मेरी गर्दन इस तरफ माड़ी ?’

‘इस तरफ अगर गर्दन रखनी हो तो इसी तरफ रखो, उस तरफ रखनी हो तो उसी तरफ रखो । यह कैसी नमाज हुई ? यह कैसी पूजा हुई कि बीच-बीच में खायाल है कि गाड़ी छूट न जाए ? गाड़ी छूट न जाए, इसमें परमात्मा छूटा जा रहा है’, मैंने उनसे कहा, ‘तुम या तो गाड़ी पकड़ लो या परमात्मा को पकड़ ला । कोई जरूरत नहीं है, मत करो नमाज – जूठी तो मत करो । कम-में-कम इतने मच्चे तो रहो कि नहीं है हृदय में तो न करेंगे ।’

रामकृष्ण बहुत दिन तक मंदिर न जाते । वे कहते, ‘जब भीतर ही नहीं है तो कैसे जाऊँ, कैसे धोखा दूँ – परमात्मा को कैसे धोखा दूँ ? किस मुँह में भीतर जाऊँ ?’ द्वार के बाहर से ही, बाहर-बाहर, क्षमा माँग के लौट आते, मंदिर में भीतर न जाते, सीढ़ियों पर से क्षमा माँग लेते ‘माफ़ कर, भाव नहीं है । करूँगा तो धोखा होगा, जूठ होगा ।’

लेकिन तुम्हारा सब झूठ हो गया है । जिससे तुम्हे प्रेम नहीं है, उसे तुम कहते हो, प्रेम है । जिसे देख के तुम्हारे भीतर कोई मुस्कराहट नहीं आती, तुम

मुस्कराते हो । जिसे देख कर भीतर अभिशाप देने का भाव उठता है, उसको आशीर्वाद देते हुए अपने को दिखानाते हो । इन झूठों से घिरे तुम अगर परमात्मा के पास भी जाओगे तो तुम इन्हीं झूठों का प्रयोग वहाँ भी करोगे । फिर पूजा वैसी ही हो जाएगी जैसी सारी दुनिया में हो रही है ।

किनने लोग हैं, अनगिनत, पूजा कर रहे हैं, और पूजा की गध कही भी नहीं अनुभव में आती । किनने लोग प्रार्थनाएँ कर रहे हैं । अगर सच में ही इतनी प्रार्थनाएँ हो तो जैसे आकाश में भाप उठ-उठ के बादल बन जाते हैं, ऐसे प्रार्थनाओं के बादल बन जाएँ । सब प्रार्थना वरमने लगे । मेघ घने हो जाएँ आकाश में । जल ही न बरसे, प्रार्थना भी बरसे । नदी-नाले प्रार्थना से भर जाएँ ।

जिनने लोग प्रार्थना करते हैं, अगर ये सच में ही प्रार्थना करते हो ।

ठीक है व्यास की भी परिभाषा ठीक है

‘भगवान की पूजा में अनुराग भक्ति है ।’

फिर ‘गर्गचार्य के मन में भगवान की कथा में अनुराग भक्ति है ।’

पूजा में कुछ करना होता है । निश्चित ही व्यास थोड़े सक्रिय वृत्ति के रहे होगे । कुछ करना पड़ता है आरती उतारनी पड़ती है, फूल चढ़ाने पड़ते हैं, घटी बजानी पड़ती है – कुछ करना पड़ता है ।

इसे भमझ ले ।

व्यास निश्चित ही सक्रिय प्रकृति के रहे होगे । गर्गचार्य निष्क्रिय प्रकृति के रहे होगे । क्योंकि व्यास जहाँ कहते हैं, ‘पूजा आदि में अनुराग’ वहाँ गर्गचार्य कहते हैं, ‘भगवान की कथा में’, कोई सुनाये हम सुनें, रस में सुनें, डूब के सुनें, मिट के सुने – पर कोई सुनाए, हम सुने ।’

‘भगवान की कथा में अनुराग ।’

तुमने कभी खाल किया कथाओं में तो तुम्हे भी अनुराग है, भगवान की कथा में नहीं है । पड़ोसी की पत्नी किसी के साथ भाग गयी, इस कथा को तुम किनने रस से मुनते हो । खोद-खोद के बाते निकलवा लेते हो । हजार काम हो, रोक देते हो ।

छोटे गाँव में एकाध स्त्री भाग जाए तो पूरे गाँव में काम धधा बद हो जाता है उस दिन, पूरा गाँव उसी चर्चा में लग जाता है ।

किसी के घर चोरी हो जाए कुछ भी हो जाए ।

अखबार तुम पढ़ते हो, वह कथा का रस है । लेकिन भगवान की कथा में अब कोई रस नहीं है । और अगर कभी तुम भगवान की कथा में भी रस लेते हो तो वह रस भगवान की कथा का नहीं होता । उसमें भी कारण वही होगे, जिन कारणों से तुम और कथाओं में रस लेते थे । कोई की म्त्री किसी के साथ भाग

गयी, राम की स्त्री को रावण भगा ले गया, तो तुम उसमें भी रस लेते हो । लेकिन तुम ख्याल करना, रस तुम्हारा रावण सीता को भगा ले गया है, इसमें है, राम की कथा मे नहीं है ।

गगन्निर्वाय कहते हैं, 'भगवान की कथा मे अनुराग' । (ऐसे सुनना जैसे प्यासा जल पीता है । ऐसे सुनना जैसे तुम बिलकुल खाली हो - कान ही हो गये, तुम्हारा सारा अस्तित्व बस कान पर ठहर गया । हृदयपूर्वक सुनना ।) तो परमात्मा का स्मरण अनेक-अनेक रूपों मे तुम्हे भर देगा । कुछ करने की ज़रूरत नहीं है, तुम अगर शात बैठ के सुन भी सको ।

तुम यहाँ मुझे सुन रहे हो । यह भगवान की कथा है । यहाँ तुम ऐसे भी सुन सकते हो, जैसे और साधारण बाते सुनते हो । तुम ऐसे भी सुन सकते हो, जैसे तुम्हारा पूरा जीवन दोंव पर लगा है, जीवन और मृत्यु का सवाल है ।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी को कहा था कि आज मैं आराम चाहता हूँ, किसी को मिलाना मत, कोई आ भी जाए ता कह देना घर पर नहीं है । लेकिन वह बैठा ही था आराम करने कुर्सी पे, कि पत्नी आयी, उसने कहा, 'सुना, एक आदमी दरवाजे पे खड़ा है ।'

मुल्ला ने कहा, 'अभी मैंने कहा, अभी देर भी नहीं हुई कि मुझे आज दिन-भर विश्राम करना है । अभी शुरुआत भी नहीं हुई, मैं कुर्सी पे ठीक से बैठ भी नहीं पाया ।'

तो उसकी पत्नी ने कहा, 'लेकिन वह आदमी कहता है, जीवन-मरण का सवाल है ।'

तब तो मुल्ला भी उठ आया, जब जीवन-मरण का सवाल हो तो कैसा विश्राम ! बाहर गया, तो पाया कि वह इन्शारेस कंपनी का एजेंट है । जीवन-मरण का सवाल

जीवन-मरण का सवाल हो, तभी तुम उठोगे, तभी तुम जगोगे ।

भगवान तुम्हारे लिए जीवन-मरण का सवाल है या नहीं ? अगर नहीं है, तो फिर बिलकुल मन सुनो, क्योंकि वह समय व्यर्थ ही गया । तुम जो सुनोगे वह किसी सार का नहीं होगा । क्योंकि सार तो तुम्हारे सुनने मे छिपा है । सार कहने मे नहीं छिपा है, सार तुम्हारे सुनने मे छिपा है ।

अगर तुम सुनने के लिए ही परिपूर्ण तैयार हो कर नहीं आ गये हो, अगर यह सवाल तुम्हारे जीवन-मरण का नहीं है, अगर तुम अभी भी परमात्मा को किनारे पे टाल के अपने सासार मे लगे रह सकते हो, अच्छा है तुम सासार मे ही लगे रहो । कभी-न-कभी ऊरोगे । कभी-न-कभी लौटोगे । कभी तो वह घड़ी आयेगी, जब तुम्हारी अंधेरी रात तुम्हे दिखायी पटेगी और मुबह की पुकार तुम्हारे

मन मे उठेगी । कभी तो वह घड़ी आगी, तुम अपने कूड़ा-कर्कट से विरेन्धिरे किसी दिन तो दुर्गंध को अनुभव करोगे, फूलों की गद्द की तलाश शुरू होगी ।

लेकिन जल्दी मत करो, अगर दुर्गंध से अभी लगाव बाकी है, तो भोग ही लो दुर्गंध को । चुक ही जाओ । रिक्त ही हो जाने दो उस अनुभव से अपने को । नहीं तो तुम सुन न पाओगे ।

मैं एक पजाबियों की सभा मे बोलने गया । उस सभा के बाद फिर मेरा किसी सभा मे जाने का मन न रहा । कृष्णाष्टमी थी । और पजाबी हिन्दुओं का मोहल्ला था । मैं तो चकित हुआ, वहाँ व्याख्यान देने वाले व्याख्यान दे रहे थे, और ऐसी भी स्त्रियाँ थीं उस सभा में – स्त्रियाँ ही ज्यादा थीं – जो बोलने वालों की तरफ पीठ किये आपस मे गपशप कर रही थीं । वहाँ झुड़के-झुड़ बने थे । बड़ी भीड़ थी । मुझसे भी उन्होंने प्रार्थना की । मैंने कहा, 'तुम पागल हो । यहाँ कोई सुनने वाला ही नहीं है । यहाँ लोग अपनी बातचीत मे लगे हैं और बोलने वाले बोले जा रहे हैं ।'

मैंने कहा, 'मुझे जाने दो । इनकी कोई नैयारी सुनने की नहीं है । सुनने कोई इनमे आया भी नहीं है । कृष्ण से इन्हे कुछ लेना-देना नहीं है ।'

तुम भविरों मे जाओ, स्त्रियाँ जो चर्चा मदिरों मे कर रही हैं, पुरुष जो बातचीत मदिरों मे कर रहे हैं, उसका मदिर से कुछ लेना-देना नहीं है, वही राजनीति, वही उपद्रव बाहर के, वहाँ भी ले आते हैं, वे ही घर के, बाहर के झगड़े वहाँ भी ले आते हैं ।

परमात्मा की कथा तो तुम् तभी सुन सकते हो जब तुम् पूरे रिक्त हो कर सुनो ।

ठीक कहते हैं गर्गचार्य, 'भगवान की कथा मे अनुराग ।' और जिस दिन इस कथा मे अनुराग आना हे उसी दिन सासार की कथा मे अनुराग खो जाता है ।

तुम व्यर्थ की बाते मत सुनो, क्योंकि यह सिर्फ सुनना ही नहीं है, जो तुम सुनते हो वह तुम्हारे भीतर इकट्ठा हो रहा है ।

थोड़ा सोचो, अगर पडोसी तुम्हारे घर मे कूड़ा फेंक दे तो तुम झगड़ा करने को तैयार हो जाते हो । और पडोसी तुम्हारे मन मे हजार कूड़ा फेंकता रहे तो तुम झगड़ा तो करते नहीं, तुम रोज़ प्रतीक्षा करते हों कि कब आओ, कब थोड़ी चर्चा हो । तुम्हे घर के कूड़ा-कर्कट से भी इतनी समझ है, उतनी समझ तुम्हें भीतर के कड़ा-कर्कट की नहीं है ।

रोको अपने को व्यर्थ की बात सुनने से, नहीं तो सार्थक को सुनने की क्षमता खो जाएगी । अकारण, आवश्यक न हो, ऐसा सब सुनना त्याग दो, तकि तुम्हारी

सवेदनशीलता तुम्हे फिर से उपलब्ध हो जाए, और भगवान का नाम तुम्हारे कान मे पडे, तो वह बहुत-से विचारों की भीड़ मे न पडे, अकेला पडे । वह चोट अकेली हो तो तुम्हारे हृदय के ज्ञाने फिर से खुल सकते हैं ।

‘शाडिल्य के यत से आत्मरति के अविरोधी विषय मे अनुराग होना ही भवित है ।’

व्याम सक्रिय धाट से उतरे होगे । गर्गचार्य निष्क्रिय धाट से उतरे होगे । पर दोनों सरल व्यक्ति रहे होंगे, बड़े विचारक नहीं, सीधे-सादे, इनोसेट, निर्दोष, भोले-भाले । शाडिल्य विचारक मालूम होते हैं । उनकी परिभाषा दार्शनिक की परिभाषा है । वे कहते हैं, ‘आत्मरति के अविरोधी विषय मे अनुराग होना ही भवित है ।’ दार्शनिक व्याख्या है ।

अपने मे साधारणत आदमी को रस होता है । साधारणत । उसे तुम स्वार्थ कहते हो । स्वार्थ अपने मे रस है, लेकिन बिना समझ का । चाहते तो तुम हो कि सुख मिले, मिलता नहीं । चाह तो ठीक है, जो तुम करते हो उस चाह के लिए, उममे कही गलती है ।

स्वार्थ और आत्मरति मे यही फर्क है । स्वार्थ भी अपने सुख की खाज करता है, लेकिन गलत ढग से, परिणाम हाथ मे दुख आता है । आत्मरति भी अपने सुख की खोज करती है, लेकिन ठीक ढग से, परिणाम सुख आता है ।

तुम भी अपने ही सुख के लिए जो रहे हो, लेकिन अभी तुमने अपने को जो समझा है वह अहकार है, आत्मा नहीं । अभी तुम्हारा ‘स्व’ अहकार है, झूठा है । जिस दिन तुम्हारा ‘स्व’ वास्तविक होगा, आत्मा होगी, उस दिन तुम पाओगे स्वार्थ ही परमार्थ है । उस दिन अपने आनंद की खाज कर लेने मे ही तुमने सारी दुनिया के लिए आनंद के द्वार खोले । उस दिन तुम सुखी हुए तो तुमने दूसरे को भी सुखी होने की समावना बनायी । उस दिन तुम्हारा दीया जला तो दूसरो के बूझे दीये भी जल सकते हैं, इसका भरोमा उनमे तुमने पैदा किया । और फिर तुम्हारे जले दीये से न मालूम कितने बूझे दीये भी जल सकते हैं ।

आत्मरति का अर्थ है वस्तुन सच्चा स्वार्थ । उसमे परार्थ अपने-आप आ जाता है । जिमे तुम स्वार्थ समझते हों वह परार्थ के विपरीत है । और जिसको आत्मज्ञानियो ने आत्मरति कहा है, परम स्वार्थ कहा है, वह परार्थ के विपरीत नहीं है, परार्थ उसमे समाहित है, समाविष्ट है ।

‘आत्मरति के अविरोधी विषय मे अनुराग होना भवित है ।’

अब इसे समझो ।

तुम अपने को प्रेम करते हो – ठीक, स्वाभाविक है । इस प्रेम के कारण तुम ऐसी चीजों को प्रेम करते हो जो तुम्हारे स्वभाव के विपरीत हैं उनसे तुम दुख पाते

हो । चाहते सुख हो, मिलता दुख है । आकौशा में भूल नहीं है । आकौशा को प्रयोग में लाने में तुम ठीक-ठीक समझदारी का प्रयोग नहीं कर रहे हो ।

बुद्ध भी स्वार्थी है, कबीर भी, कृष्ण भी – लेकिन वे परम स्वार्थी हैं । वे भी अपना साध रहे हैं आनंद, लेकिन इस दण से साध रहे हैं कि मिलता है । तुम/इस दण से साध रहे हो कि मिलता कभी नहीं, साधते सदा हो, मिलता कभी/नहीं ।

तुम कुछ ऐसी चीजों से अनुराग करने लगते हो जो कि तुम्हारे स्वभाव के विपरीत हैं, जैसे समझो, तुम धन को प्रेम करने लगो, तो तुम अपने स्वभाव के विपरीत जा रहे हो । क्योंकि धन है जड़, तुम हो चैतन्य । चैतन्य को प्रेम करो, जड़ को मत करो, अन्यथा जड़ना बढ़ेगी । और चैतन्य अगर जड़तुम मे फँसने लगे तो कैसे सुखी होंगा? धन का उपयोग करो, प्रेम मत करो । प्रेम तो चैतन्य से करो ।

तुम पद की पूजा करते हो । पद तो बाहर है । तुम पद के आकौशी हो । लेकिन पद तो बाहर है, तुम भीनर हो, तो तुम मे और तुम्हारे पद मे कभी ताल-मेल न हो पाएगा, तुम भीतर रहाएंगे, पद बाहर रहेगा । कोई उपाय नहीं है । भीतर तो तुम दीन-हीन ही बने रहोगे । कितना ही धन इकट्ठा कर लो अपने चारों तरफ, कितने ही बड़े पद पर बैठ जाओ, कितना ही बड़ा सिंहासन बना लो – तुम्हारे भीतर सिंहासन न जा सकेगा, न धन जा सकेगा, न पद जा सकेगा । वहाँ तो तुम जैसे पहले थे वैसे ही अब भी रहाएंगे ।

भिखारी को राजसिंहासन पर बिठाल दो, क्या फक्क पड़ेगा । बाहर धन होगा, शायद भूल भी जाए बाहर के धन मे कि भीतर अभी भी निर्धन हूँ, तो यह/ तो और आत्मधानी हुआ । यह स्वार्थ न हुआ, यह तो मूढ़ता हुई ।

¹ असली धन खोजो – असली धन भीतर है ।

असली पद खोजो – असली पद चैतन्य का है ।

चैतन्य की सीढियों पर ऊपर उठो ।

उठने दो चैतन्य की उडान ।

उठने दो ऊर्जा चैतन्य की – परमात्मा तक ले जाना है उसे ।

मनुष्य जब तक परमात्मा न हो जाए तब तक तृप्ति नहीं है ।

मनुष्य परमात्मा होने की अभीप्सा है । इससे पहले कोई पडाव नहीं है, कोई मुकाम नहीं । पहुँचना है उस आखिरी मजिल तक । लेकिन तुम बीच मे बहुत-से पडाव बना लेते हो, पडाव ही नहीं, उनको मुकाम बना लेने हा, मजिल समझ लेते हो । कोई धन को ही इकट्ठा करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है ।

शाडिल्य की परिभाषा दार्शनिक है, बहुमूल्य है
'आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग' ।

तुमने अब तक आत्मरति के विरोधी विषय में अनुराग किया है। आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग करोगे, तो परमात्मा शब्द को बीच में लाने की जरूरत भी नहीं है, तुम धीरे-धीरे परमात्म-न्वरूप होने लगोगे।

जब भी तुम्हारे सामने चुनाव हो तो सदा ध्यान रखना जड़ को मत चुनना, चैतन्य को चुनना। जब भी दो चीजों में से एक चुननी हो तो उसमें देख लेना, कौन ज्यादा चैतन्य है। जैसे प्रेम और धन में चुनना हो तो प्रेम चुनना। फिर प्रेम और भक्ति में चुनना हो तो भक्ति चुनना। ससार और परमात्मा में चुनना हो तो परमात्मा चुनना।

इसे अगर तुम समझ लो तो शाडिल्य की परिभाषा में ईश्वर का नाम ही नहीं है, जरूरत नहीं है उसको कहने की, वह छिपा है। इस सूत्र को मान के अगर तुम चले तो उसे पा लोगे। अब तुम फक्कं देख मकते हो। यह नीनो व्यक्तित्वों का फक्कं है।

शाडिल्य बुद्ध जैसा व्यक्ति रहा होगा 'परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है।'

बुद्ध ने कहा ध्यान खोज लो। शाडिल्य कह रहा है चैतन्य खोज लो, क्योंकि वही अविरोधी है। उससे तुम्हारा तालमेल बैठेगा।

'देवर्षि के मत से' फिर नारद अपना मत देते हैं।

'नारद के मत से अपने सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना भक्ति है।'

सम्भृत में, जहाँ-जहाँ हिन्दी में अनुवाद किया है लागो ने, चूक हुई है। सभी ने अनुवाद किया है, क्योंकि ऐसा लगता है ठीक नहीं कहना, नारद खुद ही शास्त्र लिख रहे हैं, तो हिन्दी में अनुवादों में अनुवादकों ने लिखा है, 'देवर्षि के मत से'। लेकिन सम्भृत में 'नारदस्तु'—'नारद के मत से'। नारद अपने ही नाम का उपयोग कर रहे हैं। इसमें बड़ी बात छिपी है। नारद अपने व्यक्तित्व को भी अपने से उतना ही दूर रख रहे हैं जितना शाडिल्य, जितना गर्भाचार्य, जितना व्यास। ऐसा नहीं कहने कि 'मेरे मत से'। उसमें तो मत के प्रति जरा मोह हो जाएगा 'मेरा मत'। 'यह नारद का मत है'—नारद भी ऐसा ही कहते हैं।

स्वामी राम अपने को हमेशा इसी तरह बोलते थे 'राम'को भूख लगी है, 'राम'को प्यास लगी है। ऐसा न कहते थे मुझे प्यास लगी है, मुझे भूख लगी है। अमरीका गये तो लोग वहाँ बड़े हेरान होते थे। पहले ही दिन जब वे एक

बगीचे से शाम को घूम के लौटे, तब तो गेहुआ वस्त्र बड़ी अनूठी चीज़ थी, बड़ी भीड़ लग गयी वहाँ। अब तो न लगेगी, कम-से-कम पन्द्रह हजार भेरे सन्यासी हैं सारी दुनिया मे गेहुआ वस्त्र । जल्दी ही उनको लाखों तक पहुँचा देना है। लेकिन उस समय बड़ी नयी बात थी, तो भीड़ लग गयी। लोग ककड़-पत्थर फेंकने लगे कि कोई दीवाना आ गया। राम हँसते रहे। भीड़ में से किसी को दिया आयी कि यह आदमी हो सकता है, पागल हो, लेकिन दया-योग्य है। उसने भीड़ को हटाया, उनको बचाया, उनको ले चला। रास्ते मे उसने पूछा कि तुम हँसते क्यों थे, तो उन्होंने कहा, 'राम की इतनी पिटाई हो रही थी और मै न हँसूँ।' तो उसने कहा, 'क्या मतलब?' क्योंकि उसे पता नहीं था उनकी आदत का। वे कहने लगे, 'गम की इतनी हँसाई हो रही थी। लोग पत्थर मार रहे थे, गालियाँ दे रहे थे और मै न हँसूँ। मै खड़ा दूर देख रहा था।'

अपने ही नाम को इस तरह अगर तुम दर कर लो तो बड़ी मुक्ति अनुभव होती है, तब तुम अपने व्यक्तित्व मे अलग हो गये, तब तुम साक्षी-भाव में प्रविष्ट हो गये।

झीक किया, नारद ने कहा 'नारदस्तु'।

और नारद का मत है 'सब कर्मों को भगवान के अपेण करना, और भगवान का थोड़ा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना भक्ति है।'

शाडित्य दार्शनिक हैं, नारद भक्त हैं। शाडित्य विचारक हैं, नारद प्रेमी हैं।

'सब कर्मों को भगवान के अपेण करना।' प्रेमी की यही तो खूबी है कि वह कुछ भी बचाना नहीं चाहता, सब अपेण करना चाहता है। जितना अपेण करता है उतना ही उसे लगता है, कम ही तो किया, और करूँ, और करूँ। अद्वीर में वह अपने को भी अपेण कर देता है।

सब अपेण करना और भगवान का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना।

परम व्याकुलता पकड़ ले, व्याकुलता-ही-व्याकुलता रह जाए।

ऐसा समझो कि तुम रेगिस्तान मे भटक गये, जल चुक गया, दूर-दूर तक कही कोई मरुद्यान नहीं है, हरियाली का कोई पता नहीं है, सागर है सूखी रेत का। प्यास तो तुम्हे पहले भी लगी थी, लेकिन आज तुम पहली दफे जानोगे कि परम प्यास क्या है। प्यास तो बदूत दफे लगी थी, लेकिन पानी सदा उपलब्ध था, जरा लगी थी और पी लिया था। आज तुम्हारा रोआँ-रोआ रोयेगा। आज तुम्हारा रोआँ-रोआँ न डफेगा। एक-एक रोएँ मे तुम प्यास अनुभव करोगे, कण्ठ में ही नहीं। तुम्हारा सारा व्यक्तित्व, तुम्हारा सारा होना प्यास मे रूपान्तरित हो जाएगा। तब परम व्याकुलता। जब ऐसे ही नहीं कि तुम ऐसे ही बुलाते हो परमात्मा को

कि आ जाओ तो ठीक, न आये तो भी कोई बात नहीं नहीं, ऐसे बुलाते हो जैसे रेगिस्तान में कोई पानी को खोजता है, न डफता है। मछली को डाल दो रेत पर पानी में निकाल कर, जैसे तडपती है, वैसी परम प्यास !

‘सब कर्मों का भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ा-सा भी विस्मरण होने से परम व्याकुल होना ।’

अभी तो हमने जिसे प्यास समझा वह प्यास नहीं है। अभी तो हमने जिसे धन समझा, धन नहीं है। अभी तो हमारी सारी समझ ही गलत है।

‘हम भूल का अपनी इन्मोक्षन समझे हैं

गुरुबत के मुकाम को वतन समझे हैं

मजिल पे पहुँच के ज्ञाड़ देंगे इसको

ये गदेसफर है जिसको तन समझे हैं ।’

अभी तो हमारी सारी समझ उलटी है। अभी तो हम नाममझी को समझ-दारी समझते हैं। अभी तो हम अट्कार को आत्मा समझे हैं। अभी तो हमने शरीर को अपना होना समझा है।

‘हम भूल का अपनी इन्मोक्षन समझे हैं

गुरुबत के मुकाम को वतन समझे हैं ।’

रात-भर का पडाव है, ठहर जाने के लिए सराय है कि धर्मशाला है, उसको हम धर समझे हैं।

‘मजिल पे पहुँच के ज्ञाड़ देंगे इसको ।’

मजिल पे पहुँचोगे तब पता चलेगा कि जैसे यात्री राह की धूल ज्ञाड़ देता है, ऐसे ही यह सब जिसे तुम धन समझे हो, जिसे तुम अपना समझे हो, यह सब ज्ञाड़ जाएगा।

‘ये गदेसफर है जिसका तन समझे है ।’

—यह राह की धूल है, इससे ज्यादा नहीं है। यह तुम नहीं हो। तुम तो साक्षी हो। शरीर के पीछे जा शरीर को देखने वाला है, मन के पीछे जो मन का भी देखने वाला है—तुम तो वही परम साक्षी हो।

सब छोड़ दो परमात्मा पर। इनमें से कुछ भी अपना मत समझो। शरीर भी उसका है—उसी पे छाड़ दा। मन भी उसका है—उसी पे छोड़ दो। कर्म भी उसी के है—उसी पे छाड़ दा। तुम कर्ता न रह जाओ, साक्षी हो जाओ।

तो नारद के हिसाब से, सब कर्मों को भगवान के अर्पण करना और भगवान का थोड़ा-सा विस्मरण होने से परम व्याकुल होना..जरा हटे परमात्मा से तो वही हालत हो जाए जो मछली की हो जाती है सागर से हट के, जरा भूले उसे तो तडफ हो जाए।

‘ठीक ऐसा ही है।’

नारद कहते हैं, ‘ये सब जो परिभाषाएँ हैं – ठीक ऐसा ही है।’ ये सब परिभाषाएँ ठीक हैं। इनमें कोई परिभाषा गलत नहीं है। सभी अधूरी हैं, पूरी कोई भी नहीं। सभी ठीक हैं, गलत कोई भी नहीं। भाषा का स्वरूप ऐसा है कि अधूरा ही रहेगा।

सत्य के इतने पहलू है कि तुम चुका न पाओगे, और एक आदमी एक ही, पहलू की बात कर पाता है।

एक महाकवि की मृत्यु हुई, तो उसको मित्रों ने उसके मरने के पहले पूछा कि तुम्हारी कब पर क्या लिखेगे, तो उसने कहा, ‘लिख देना सिर्फ एक शब्द – ‘अनफिनिश्ड’, अधूरा।’

वे पूछने लगे, ‘क्यों? क्या तुम सोचते हो, तुम अधूरे मर रहे हो? क्योंकि तुम्हारे गीत पूरे हैं। तुम्हारा यश पूरा, सम्मान पूरा। तुम एक सफल जिदगी जिये। तुमने खूब आदर पाया। क्या तुम भी अधूरे मर रहे हो?’

तो उस कवि ने कहा, ‘इसमें कुछ भी फर्क नहीं पड़ता कि कितना हमने किया, कितना गाया, कुछ भी करो, जीवन का स्वभाव अधूरा है। हारे हुए तो यहाँ हारे हुआ जाते ही हैं, जीते हुए भी हारे हुए जाते हैं। गरीब ता गरीब मरते हैं, अमीर भी गरीब मरते हैं। जिनके पास नहीं हैं, वे तो अधूरे रहते ही हैं, जिनके पास हैं वे भी अधूरे रहते हैं। क्योंकि यह जीवन का स्वभाव अधूरा है।

ऐसे ही मैं तुमसे कहूँगा, भाषा का स्वभाव अधूरा है। कुछ भी कहोगे, वह पूरा चुकना न हो पाएगा। बड़ी बातें छोड़ी, एक छोटे-से गुलाब के फूल के सम्बद्ध में भी पूरी बातें नहीं कहीं जा सकती। अगर एक छोटे-से गुलाब के फूल के सबध में तुम पूरी-पूरी बात कहना चाहो तो तुम्हें पूरे ब्रह्माण्ड के सबध में जो भी है, सब कुछ वह कहना पड़ेगा, तभी उस गुलाब के सम्बद्ध में पूरी बात होगी, क्योंकि उसकी जड़े जमीन से जुड़ी हैं, उसकी पैंखुड़ियाँ सूरज से जुड़ी हैं, उसकी श्वास हवाओं से जुड़ी हैं, उसके भीतर बहती रसधार बादलों से जुड़ी हैं, सागरों से जुड़ी है।

तुम अगर एक छोटे-से गुलाब के फूल के सबध में सब कहना चाहो तो तुम बड़ी अड़चन में पड़ जाओगे – तुम पाओगे कि यह तो धीरे-धीरे पूरे ब्रह्माण्ड के सबध में सब कहना हो जाएगा।

नहीं, पूरा कहना असम्भव है। सत्य बहुत बड़ा है, कथनी बड़ी छोटी है।

जीवन में परमात्मा को छोड़ के सब मिल सकता है – और तुम अधूरे रहोगे, उदास रहोगे, दुखी रहोगे, पीड़ित रहोगे। और कुछ भी न मिले, परमात्मा

मिल जाए तो पूरा मिल जाता है । क्योंकि परमात्मा खड़-खड़ नहीं हो सकता, मिलता है तो पूरा, नहीं मिलता है तो नहीं ।

मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'हमारे पास सब है, लेकिन बड़ी उदासी है । अब क्या करे ? जब नहीं थी इतनी व्यवस्था तब तो एक आसरा भी था कि कभी जब सब होगा तो सब ठीक हो जाएगा, वह आसरा भी छिन गया । '

'मयकदों के भी आसपास रही

गुलरुखों से भी रूसनाम रही

जाने क्या बात थी इस पर भी

जिंदगी उम्र-भर उदास रही ।'

मधुशालाएँ पास थी, दूर नहीं । सुन्दर मुखडों वाले लोग निकट थे, परिचय था उनसे ।

'मयकदों के भी आसपास रही

शराब भी पी, विस्मरण भी किया, मधुशाला पास ही थी ।

'गुलरुखों से भी रूसनाम रही

फूल के जैमे सुन्दर चेहरे वाले व्यक्तित्वों से भी परिचय रहा, मुलाकात रही, मधुशाला में भी विस्मरण किया, प्रेम में भी ड्बे -

'जाने क्या बात थी इस पर भी

फिर भी कुछ बात -

'जाने क्या बात थी इस पर भी

जिंदगी उम्र-भर उदास रही ।'

'रहेगी ही ! उदासी तो उसी की मिट्टी है जो मक्तिको उपलब्ध हुआ, उसी की मिट्टी है जो मगवान का उपलब्ध हुआ, उसी की मिट्टी है जिसने जाना कि मैं अलग नहीं हूँ, जो अनन्यता का उपलब्ध हुआ ।

अन्यथा, तुम जो भी करोगे । करते लोग बहुत हैं, अथक श्रम करते हैं, सब व्यर्थ जाता है । इतने श्रम से तो परमात्मा मिल सकता है जिससे तुम ककड़-पत्थर इकट्ठे कर पाते हो । तुम्हे देख के राना भी आता है, हसीं भी आती है । हँसी आती है कि कैसा पागलपन है । इतने श्रम से तो मंदिर बन जाता, इसे तुमने धर्मशाला बनाने में गँवाया । इतने श्रम से परमात्मा उत्तर आता, भिक्षापात्र ले के तम ककड़-पत्थर इकट्ठे करते रहे । इतने श्रम से तो अमृत उपलब्ध हो जाता, इससे तुम गदे नदी-नालों का पानी ही इकट्ठा करते रहे ।

मौत जब आती है तब तुम्हे पता चलेगा, लेकिन तब बहुत दर हो जाती है ।

तुमसे मैं कहता हूँ जागो अभी ।

मौत तो जगाती है, पर तब समय नहीं बचता - परमात्मा का स्मरण करने

का भी समय नहीं बचता । मौत आती है तब पता चलता है 'अरे ! यह तो गँवाना हो गया ।'

यह सब पड़ा रह जाएगा जो इकट्ठा किया, चले तुम अकेले । अकेले आये /
अकेले चले । पुनी पर खीची लकीरे हो गयी सारी जिदगी ।

'वाए नादानी कि वक्ते-मर्ग ये सावित हुआ

ख्वाब था जो कुछ कि देखा, जो सुना अफसाना था ।'

मरते वक्त ।

'वाए नादानी कि वक्ते-मर्ग ये सावित हुआ ।'

यह मूरता सिद्ध हुई मरते वक्त, यह नादानी पता चली मरते वक्त, यह नासमझी ख्याल मे आयी मरने वक्त -

'ख्वाब था जो कुछ कि देखा'

जो देखा, वह सपना था

'जो सुना अफसाना था ।'

और जो वात मूरते रहे, वह सिर्फ कहानी थी । हाथ खाली रह गये ।

अस्मर तो ऐसा है कि ले के तो तुम कुछ न जाओगे, जो ले के आये थे, शायद उसे भी गवा के जाओ ।

वच्चे पैदा होते हैं, मुट्ठी बैंधी होती है, मरते वक्त मुट्ठी खाली होती है, खुली होती है । बच्चा कुछ ले के आता है - कोई ताज़गी, कोई कमल के फूलों जैसा निर्दीप भाव, कुछ भोलापन - वह भी गदा हो जाता है । बच्चा आता है दर्पण को तरह ताजा-नया, धूल जम जाती है जिदगी की, वह भी खो जाता है ।

हम जिदगा मे कमते नहीं, गँवते हैं - इडा अजीब सौदा करते हैं ।

जो मौत के पहले जाग जाए वही धार्मिक हो जाता है । जो मौत तुम्हे दिखायेगी, वह तुम अपनी ममझदारी में देख लो, अपने होश मे देख लो, मौत को दिखाने की जरूरत न पड़े, तो तुम्हारी जिदगी मे एक क्राति घटित हो जानी है ।

'ठीक ऐसा ही है, जैसे ब्रजगोपियों की भक्ति ।'

'इस अवस्था में भी गोपियों मे माहात्म्यज्ञान की विस्मृति का अपवाद नहीं ।'

इसे समझना ।

'उसके बिना, भगवान को भगवान जाने बिना किया जाने वाला ऐसा प्रेम जारों के प्रेम के समान है ।'

'उसमे, जार के प्रेम में, प्रियतम के सुख से सुखी होना नहीं है ।'

'जैसे ब्रजगोपियों की भक्ति ।'

कृष्ण के प्रेम मे, कथा है, सोलह हजार गोपियों की । सत्या तो सिर्फ असच्चय

का प्रतीक है। लेकिन गोपियों के प्रेम को समझना ज़रूरी है, क्योंकि भक्त वैसी ही दशा में फिर पहुँच जाता है। कृष्ण का होना शरीर में आवश्यक नहीं है। यह तो भक्त का भाव है जो कृष्ण को मौजूद कर लेता है। कृष्ण के होने का सवाल नहीं है, ये तो हजारों गोपियों की प्रार्थनाएँ हैं, जो कृष्ण को शरीर में बाँध लेती हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

राधा कृष्ण के साथ नाची, मीरा को जरा भी तकलीफ न हुई, कृष्ण के बिना भी वैसा ही नाच नाची, और कृष्ण के साथ ही नाची। और अगर गीर करो, तो मीरा की गहराई राधा से भी ज्यादा मानूम पड़ती है, क्योंकि राधा के लिए तो कृष्ण सहारे के लिए मौजूद थे, मीरा के लिए तो कोई भी मौजूद न था। मीरा के भगवान तो उसके भाव का ही साकार रूप थे। मीरा के भगवान तो मीरा ने अपने को ही ढाल के बनाये थे, अपने को ही निछावर करके निर्मित किये थे।

कृष्ण मौजूद हो और तुम राधा बन जाओ, तुम्हारी कोई खूबी नहीं, कृष्ण की खूबी हांगी। कृष्ण मौजूद न हो और तुम मीरा बन जाओ, तो तुम्हारी खूबी है, कृष्ण को आना पड़ेगा।

भक्त खीचता है भगवान का रूप में। भक्त भगवान को गुणों के जगत में पृथ्वी पर ले आता है।

कैसी थी ब्रजगोपियों की भक्ति?

एक क्षण को भी विस्मरण हो जाए तो रोनी है। एक क्षण का भी कृष्ण न दिखायी पड़े तो तड़फनी है। लेकिन ऐमा नो साधारण प्रेम में भी कभी हो जाता है। प्रेमी न हो, प्रेयसी तड़फती है, प्रेयसी न हो तो प्रेमी तड़पता है।

फर्क क्या है ब्रज की गोपियों की भक्ति में और साधारण प्रेमियों की भक्ति में? फर्क इतना है कि ब्रजगोपिया कृष्ण के प्रेम में है, लेकिन परिपूर्ण होशपूर्वक कि कृष्ण भगवान है। वह प्रेम किसी व्यक्ति का प्रेम नहीं, भगवता का प्रेम है। अन्यथा फिर माध्यारण प्रेम हो जाएगा।

कृष्ण को भी तुम ऐसे प्रेम कर मकते हो जैसे वे शरीर हैं, नम्हारे जैसे ही एक व्यक्ति है। तब कृष्ण मौजूद भी हो तो भी तुम चूक गये।

रुक्मणी कृष्ण की पत्नी है, लेविन रुक्मणी का नाम कृष्ण के साथ अक्सर लिया नहीं जाता — लिया ही नहीं जाता। मीता का नाम राम के साथ लिया जाता है। पार्वती का नाम शिव के साथ लिया जाता है। कृष्ण का नाम रुक्मणी के साथ और रुक्मणी का नाम कृष्ण के साथ नहीं लिया जाता। और राधा उनकी पत्नी नहीं है, यद रखना। राधा का नाम लेना बिलकुल गैरकानूनी है, कृष्ण-राधा कहना, राधा-कृष्ण कहना बिलकुल गैरकानूनी है, नाजायज है, नियम के

बाहर है । वह उनकी पत्नी नहीं है । पर क्या बात है, रुक्मणी कैसे विस्मृत हो गयी? रुक्मणी कैसे अलग-अलग पड़ गयी?

रुक्मणी पत्नी थी और कृष्ण मे भगवान को न देख पायी, पुरुष को ही देखती रही – वह वही चक हो गयी । वही राधा करीब आ गयी जहाँ रुक्मणी चूक गयी ।

सीराष्ट्र में एक जगह है – तुलसीश्याम । वहाँ ध्यान का एक शिविर हुआ । तो जब मैं वहाँ गया तो जिस तलहटी मे शिविर हुआ था वहाँ कृष्ण का मंदिर है । और ऊपर पहाड़ी की चोटी पर एक छोटा-सा मंदिर है, तो मैंने पूछा कि वह मंदिर किसका है । कहा, ‘वह रुक्मणी का है ।’

‘उतने दूर! कृष्ण का मंदिर इधर मील-दो-मील के फासले पर ।’

पुजारी उत्तर न दे सके । उन्होंने कहा कि यह तो पता नहीं ।

रुक्मणी दूर पड़ती गयी । वह कृष्ण को पुरुष ही मानती रही, पुरुषोत्तम न देख पायी, पुरुष ही दिखायी पड़ता रहा, पति ही दिखायी पड़ता रहा । गहन ईर्ष्या मे जली रुक्मणी, जैमा पत्निर्यां अक्सर जलती हैं । वह मंदिर भी इस ढग से बनाया गया है कि वहाँ से वह नजर रख सकती है कृष्ण पर । बिलकुल ठीक ढग से बनाया है, जिसने भी बनाया है बड़ी होशियारी से बनाया है । पत्नी वहाँ दूर बैठी है और देख रही है । राधा और गोपियाँ और कृष्ण के पास प्रेमियों का और प्रेयसियों का इनना बड़ा जाल रुक्मणी जली । बड़े दुख मे पड़ी । कृष्ण की मगवत्ता न देख पायी । तो प्रेम साधारण हो गया – प्रेम रह गया, भक्ति न बन पायी ।

प्रेम कब भक्ति बनता है?

जैसे ही प्रेमी मे भगवान दिखायी पड़ता है, वैसे ही प्रेम भवित बन जाता है । कृष्ण का होना ज़रूरी थाड़े ही है । क्योंकि कृष्ण के होने से अगर यह बात होती तो रुक्मणी का भी भक्ति उपलब्ध हो गयी होती ।

तो, मैं तुमसे कहता हूँ, इसमे उलटा भी हो सकता है । तुम अपने प्रेमी मे, अपने पति मे, अपनी पत्नी मे, अपने बेटे मे, अपने मित्र मे, कही वही भूल तो नहीं कर रहे हो जो रुक्मणी ने की? सोचना । कही वही भूल तो नहीं हो रही है?

मैं तुमसे कहता हूँ, वही भूल हो रही है, क्योंकि उसके सिवाय कोई भी नहीं है । ‘वही’ भव मे छिपा है । जरा खोदो । जरा गहरे उतरो । जरा दूसरे मे, डुबकी लो । जरा अनन्यता के भाव को जगने दो । और तुम अचानक पाओगे वही भूल, रुक्मणी की भूल, सारे ससार से हो रही है । सभी के पास कृष्ण खड़ा है – सभी के पास भगवान खड़ा है । भीतर भी वही है, बाहर भी वही है ।

लेकिन बाहर तुम्हारी आँखे देखने की आदी हैं, कम-से-कम बाहर तो उसे देखो । एक दफा पुरुष खो जाए और परमात्मा दिखायी पड़े, पुरुष खो जाए, पुरुषोत्तम दिखायी पड़े ।

तो नारद कहते हैं, 'जैसे ब्रजगोपियों की भक्ति इस अवस्था में भी गोपियों में माहात्म्यज्ञन की विस्मृति का अपवाद नहीं है ।'

हालांकि वे दीवानी थीं, पागल थीं प्रेम में, लेकिन एक क्षण को भी भूली नहीं कि कृष्ण भगवान है, उतनी बेहोशी में भी होश रहा, अपवाद नहीं हैं, यह बात तो कभी न भूली कि कृष्ण भगवान हैं, यह बात तो याद ही रही, लड़ी भी, झगड़ी भी, रुठी भी, लेकिन यह बात तो याद रही कि कृष्ण भगवान है ।

उतनी ही बात प्रेम को भक्ति की ऊँचाई पर उठा देती है ।

'उसके बिना, भगवान का भगवान जाने बिना, किया जाने वाला प्रेम जारो के प्रेम के समान है ।

'उसमें जार के प्रेम में प्रियतम के सुख में सुखी होना नहीं है ।'

थोड़ा आगे बढ़ो । थोड़े गहरे जाओ ।

'हरम से कुछ आगे बढ़े तो देखा

जबी के लिए आस्ता और भी है ।'

जब मस्जिद से थोड़ा आगे बढ़े तो देखा कि सिर झुकाने के लिए जगहे और भी हैं, मस्तक नवाने के लिए और भी जगहे हैं ।

'हरम में कुछ आगे बढ़े तो देखा

जबी के लिए आस्ता और भी हैं

सितारों के आगे जहाँ और भी हैं

अभी इश्क के इम्तहा और भी हैं ।'

प्रेम जब तक भक्ति न बन जाए तब तक जानना 'अभी इश्क के इम्तहा और भी हैं', अभी और भी परीक्षाएँ पार करती हैं प्रेम को । प्रेम पे मत रुक जाना ।

प्रेम कली है, भक्ति फूल है । प्रेम पे मत रुक जाना ।

'अभी इश्क के इम्तहा और भी है

मिनारा के आगे जहा और भी है ।'

जब तक प्रेम तुम्हारा भक्ति न बन जाए, जब तक प्रेमी मे तुम्हे भगवान न दिखायी पड़े जाए - तब तक रुकना मत, तब तक मस्जिद मदिरों में ठहर मत जाना ।

'हरम के आगे बढ़े तो देखा

जबी के लिए आस्ता और भी हैं ।'

मंदिर-मस्जिद से पार जाना है। सीमा से पार जाना है। सम्प्रदाय से पार जाना है। मत-मतान्तर से पार जाना है।

प्रासादिक दिखायी पड़ती है बात कि हम कही मंदिर-मस्जिदों में, आकारों में, सीमाओं में, गुणों में उलझे हैं—और इसलिए वह जो उनके भीतर छिपा है, हमारे हाथ से चूका जा रहा है, पकड़ में नहीं आता। खोल ही दिखायी पड़ती है। ऊपर का सायोगिक असार ही दिखायी पड़ता है, भीतर का सार, स्वभाव, स्वरूप दिखायी नहीं पड़ता।

‘उसके विना, भगवान को जाने बिना, किया जाने वाला ऐसा प्रेम जारों के प्रेम के समान है।’

‘उसमें, जार के प्रेम में, प्रियतम के सुख से सुखी होना नहीं है।’
फर्क क्या है?

जब तुम प्रेम करते हो—साधारण प्रेम, जिसे हम प्रेम कहते हैं—तो तुम अपने सुख की फिक्र कर रहे हो, तुम प्रेमी का उपयोग कर रहे हो। भक्ति प्रेमी के सुख की चिता करती है, अपने को समर्पित करती है। प्रेम में तुम प्रेमी का उपयोग करते हा साधन की तरह, अपने सुख के लिए। भक्ति में तुम साधन बन जाते हो प्रेमी के, उसक सुख के लिए।

भक्ति समर्पण है। भक्ति किर भगवान के लिए जीना है।

कबीर ने कहा है, जैसे बाँस की पोली पोगरी खुद गीत नहीं गाती, फिर परमात्मा के ही गीत उससे बहते हैं। बाँस की पोगरी तो सिर्फ पोली है, राह देती है, जगह देती है, स्थान देती है, रुकावट नहीं देती।

तो कबीर ने कहा है, ‘अगर गीत मे कही कोई अडचन आती हो तो मेरी बाँस की पोगरी की भूल समझना, कही कोई गडबड होगी। तुम तो गीत ठीक ही ठीक गाते हो, अडचन आती होगी, बाधा पड़ती होगी, मेरे कारण पड़ जाती है। कसूर हो तो मेरा, भूल-चूक हो तो मेरी, जो भी ठीक हो तेरा। दुखी होता हूँ तो मैं अपने कारण, सुखी होता हूँ तो तेरे कारण। बँधता हूँ तो अपने कारण, मुक्त होता हूँ तो तेरे कारण। नरक बनाता हूँ तो मैं स्वर्ग तो सब तेरा प्रसाद है।’

प्रेम अपने सुख की तलाश है, और इसलिए प्रेम दुख मे ले जाता है। जो अपने सुख की तलाश कर रहा है, वह ‘मैं’ को पकड़े हुए है। और ‘मैं’ सारे दुखों का निचाड है। वही तो कांटा है, चुभता है। जिसने प्रेमी के सुख को सब कुछ माना, जिसने सब प्रेमी के सुख पर निछावर किया, उसके जीवन में फिर कोई दुख नहीं।

तुम जब तक अपना सुख खोजोगे, दुख पाओगे। जिस दिन तुम परमात्मा का सुख खोजने लगे कि वह जिसमें सुखी हो, वही मेरा सुख।

जीसस को सूली लगी, एक झण को कंप गये और उन्होंने कहा, ‘हे भगवान

‘यह मुझे क्या दिखला रहा है?’ फिर सम्भल गये और कहा, ‘तेरी मर्जी पूरी हो।’ उसी क्षण क्राति घटी। उसी क्षण जीसम का साधारण मनुष्य रूप खो गया, परमात्म-रूप प्रगट हुआ। मूली भी स्वीकार हो गयी तो सिंहासन हो गयी।

जीसम की सूती से ऊँचा सिंहासन तुमने कही देखा? जीसस की सूती से बहुमूल्य सिंहासन तुमने कही देखा?

मृत्यु महाजीवन का द्वार बन गयी। इधर अहकार गया, उधर परमात्मा प्रविष्ट हुआ।

अपने सुख को खोजने का अर्थ है अहकार अभी भी खोज रहा है। उसके सुख को खोजना जब शुरू हो जाए, भक्त तब ऐसे जीने लगता है जैस वाँस की पोगरी, बाँसुरी बन जाता है। सब न्यर 'उसी' के है। फिर कोई दुख नहीं है। फिर कोई नरक नहीं है। फिर अँधेरा भी रोशन है। फिर मौत भी और नये जीवन की शुरुआत है। फिर काटो मे भी फूल दिखायी पड़ने लगते हैं, काँटे भी फूल हो जाते हैं। फिर दुख अनुभव मे आता ही नहीं। फिर हँरानी होती है यह देख कि लोग दुखी क्या हों रहे हैं।

सब उपलब्ध है। महोन्सव की तैयारियाँ हैं और लोग दुखी हो रहे हैं। परमात्मा गीत गाने को तैयार है। उसके ओठ फड़क रहे हैं। तुम्हारी बाँसुरी तैयार नहीं है। तुम खाली नहीं हो, तुम भरे हो।

अहकार मे खाली होते ही ‘उसका’ प्रवेश हो जाता है।

आज इतना ही।

छठदर्शन प्रवचन

विनायक १६ अमरवरो, १९७५, श्री राजनीश लाल्यम, पुनरा

प्रसादरपर्याप्ति है भक्षिता

पहला प्रश्न जब भी किसी को विराट का अनुभव होता है, वह किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्त होता ही है । क्या आप बुद्धपुरुषों के देखे ऐसा नहीं है ?

अनुभव तो वह ऐसा है कि छिपाये छिपेगा नहीं, प्रगट होगा ही । जहाँ तक अनुभोक्ता का सम्बद्ध है, प्रगट होगा ही । लेकिन जहाँ तक तुम्हारा सम्बद्ध है, तुम पर निर्भर है प्रगट हो या अप्रगट रह जाए ।

बुद्ध ने तो कह दिया है जो जाना, तुमने सुना या नहीं .., बुद्ध की तरफ से प्रगट हो गया, तुम्हारी तरफ प्रगट हो भी सकता है, प्रगट न भी हो ।

वर्षा तो होती है, झील, सरोवर, खाई, खड़े भर जाते हैं, पहाड़ खाली के खाली रह जाते हैं ।

तुम्हारा घडा उलटा रखा हो, मेघ कितने ही गरजें, कितने ही बरसे, तुम खाली रह जाओगे, तुम्हारे लिए वर्षा हुई ही नहीं । नहीं कि वर्षा नहीं हुई, वर्षा तो हुई, तुम्हारे लिए नहीं हुई । और जब तक तुम्हारे लिए न हो तब तक हुई या न हुई, क्या फर्क पड़ता है ।

बुद्धपुरुष चुप भी रह जाएं तो उनकी चुप्पी में भी वही प्रगट होता है ।

बोलना जरूरी नहीं है – बोलना मजबूरी है । बोला जाता है करुणा के कारण, क्योंकि मौन को तो तुम समझ ही न पाओगे । शब्द ही छूट जाते हैं तो मौन तो कैसे पकड़ में आएगा ? कह कह के भी, तुम्हारी पकड़ नहीं बैठ पाती, अनकहे को तो तुम कैसे पकड़ पाओगे ?

बोलना जरूरी नहीं है, मजबूरी है । बुद्धों का वस चले तो चुप रह जाएं । लेकिन तुम्हें देख कर, तुम्हारे लड्डाले पैरों को देख कर, अँधेरे में तुम्हें टटोलते देख कर, चिरलाते हैं, जितने जोर से बोल सकते हैं उतने जोर से बोलते हैं – किर भी तुम्हारे बहरेपन में आवाज पहुँचती है, यह सदिग्द है ।

करोड़ों सुनते हैं, कोई एक सुन पाता है । सुन सभी लेते हैं, क्योंकि तुम बहरे नहीं हो, कान तुम्हारे काम करते हैं, फिर भी चूक जाते हो । क्योंकि सुनना एक बात है, और सुन लेना बिलकुल दूसरी ।

शब्द बोले जाते हैं तो कानों पर तररें पैदा होती हैं, लेकिन हृदय अछूता रह जाता है। मस्तिष्क के पास तो दो कान हैं, आवाज एक से जाती है, हूसरे से निकल जाती है। हृदय के पास एक ही कान है, आवाज जाती है तो फिर निकल नहीं पाती, बीज बन जाती है, गर्भस्थ हो जाता है हृदय। और जब तक सुनी हुई वाणी तुम्हारे भीतर गर्भ न बन जाए, जैसे सीप के भीतर मोती निर्भित होता है, ऐसे सुना हुआ शब्द जब तक तुम्हारे भीतर मोती न बनने लगे, तब तक तुमने सुना, फिर भी सुना नहीं, देखा, फिर भी देखा नहीं।

जीसस बार-बार अपने शिष्यों को कहते हैं, 'आँखें हो तो देख लो ! कान हो तो सुनो ! हृदय हो तो समझो !'

ऐसा नहीं कि जीसस बहरे और अधेर लोगों से बोल रहे थे, तुम्हारे ही जैसे आँख वाले और कान वाले लोग थे। फिर भी बार-बार जीसस दोहराते हैं। कारण साफ है।

सत्य जब अनुभव में आता है किसी के तो बात कुछ ऐसी है कि छुपाये भी नहीं छुप सकती, बताने की तो बात ही अलग। साधारण प्रेम नहीं छुपता। किसी के जीवन में साधारण प्रेम आ जाए तो चाल बदल जाती है, चाल में एक नृत्य समा जाता है, व्यक्तित्व की गध बदल जाती है, हजार-हजार कमल खिल जाते हैं, बोलता है तो एक साधुर्य आ जाता है, साधारण वाणी में मधु बरसने लगता है।

प्रेमी की आँखें देखो

— बिना शराब पिये शाराबी हो गया होता है।

एक मस्ती धेर लेती है।

जैसे प्रकृति पर जब वसत उत्तरता है,

ऐसा जब किसी के जीवन में प्रेम उत्तरता है,

तो हृदय वसत से भर जाता है।

सब तरफ फूल खिल जाते हैं।

मब तरफ पश्चियों की चहचहाहट शुरू हो जाती है।

भीतर कोई अवरुद्ध झरने मुक्त हो जाते हैं।

पख लग जाते हैं—अनत आकाश में उड़ने के।

साधारण प्रेम में ऐसा ही जाता है, तो जब परमात्मा का प्रेम बरसता है किसी पर, उस अमाधारण प्रेम की घटना घटती है, जब बूँद में सागर उत्तरता है, आँगन में आकाश आ जाता है, कबीर ने कहा है, जब बैंधेरे में हजार-हजार सूरज का प्रकाश आता है, हजारों सूर्य भी मात हो जाएं, ऐसे प्रकाश की वर्षा होती है, मृत्यु में अमृत का आनंद बरसता है—तो कैसे छिपाये छिपेगा ?

मुर्दा जिदा हो जाए, छिपाये छिपेगी यह बात ? मृत्यु में अमृत उत्तर आए,

छिपाये छिपेगी यह बात ? कोई उपाय नहीं है छिपने का । छिपाये तो छिपती ही नहीं, मगर मजा यह है, दुर्भाग्य यह है, बताये भी प्रगट नहीं हो पाती । छिपाये छिपती नहीं और बताये प्रगट नहीं हो पाती । क्योंकि दो हैं । बसत आ गया, इतना ही थोड़े काफी है, तुम्हारे भीतर भी तो बसत को समझने की कोई समझ होनी चाहिए ।

एक बहुत बड़े चित्रकार टरनर के चित्रों की प्रदर्शनी हो रही थी । बड़ा शोरगुल था । सारा नगर इकट्ठा था चित्रों को देखने के लिए । टरनर द्वारा पर ही खड़ा था, लोगों की प्रतिक्रियाएँ सुन रहा था ।

एक महिला ने कहा, 'बड़ा शोरगुल मचाया हुआ है, मुझे तो कुछ इसमें दिखायी नहीं पड़ता । कुछ सार नहीं मालूम होता इन चित्रों में । ये चित्र तो ऐसे लगते हैं जैसे बच्चों ने रंग भर हो । मुझे इनमें कोई बड़ी कुशलता नहीं दिखायी पड़ती । इतना शोरगुल क्यों मचाया हुआ है ? '

उसके साथ जो महिला थी, वह टरनर को पहचानती थी । उसने उससे कहा, 'चूप ! टरनर मामने खड़ा है ।'

और दूसरी महिला ने टरनर से कहा कि तुम्हारा सूर्योदय का चित्र मुझे बहुत पसंद आया है, लेकिन ऐसा सूर्योदय भैने कभी देखा नहीं । मतलब यह था कि 'ऐसा सूर्योदय होता नहीं जैसा तुमने बनाया है । यह किसी कल्पना की बात है ।'

टरनर ने कहा, 'माना, लेकिन क्या न तुम चाहोगी कि मेरी आँखें तुम्हें उपलब्ध हो और ऐसा सूर्योदय तुम्हें दिखायी दे सके ? '

बड़े माधुर्य से बड़ी गहरी चोट टरनर ने की 'क्या तुम न चाहोगी कि तुम्हें मेरी जैसी आँखें मिल जाएँ और ऐसा सूर्योदय दिखायी दे सके ? '

सूर्योदय देखना हो तो सूर्योदय देखने वाली आँखें भी तो चाहिए ।

कहते हैं, अगर कवियों ने प्रेम के गीत न गाये होते तो लोगों को प्रेम का पता ही न चलता । यह बात मुझे कुछ समझ में आती है ।

तुम थोड़ा सोचो, अगर कभी तुमने प्रेम का कोई गीत न सुना होता और प्रेम की कोई कहानी न सुनी होती तो क्या तुम्हें तुम्हारी ज़िंदगी से पता चल सकता था कि प्रेम है ? शादी पता चलती, विवाह पता चलता, बाल-बच्चे पैदा होते, लेकिन प्रेम, ?

प्रेम का पता चलने के लिए पारखी की आँख चाहिए ।

बड़ी मुश्किल से पैदा होता है चमन में कोई आँख वाला, कोई दीदाबर, कोई द्रष्टा !

लेकिन कविताएँ सुन के भी, प्रेम के गीत और प्रेम की कहानियाँ सुन के

भी, तुम्हें प्रेम का शब्द ही याद हो जाता है, तुम उसे दोहराने लगते हो, तुम वक्त-बेवक्त उसका उपयोग करने लगते हो। लेकिन क्या शब्द सुन के ही तुम्हें प्रेम का अनुभव हो सकता है? क्या यह अनुभव ऐसा है कि उधार हो जाए?

नहीं, उधार यह नहीं हो सकता।

तो तुम्हारे जीवन में जब तक कोई अनुभव का सूत्र न हो, तब तक बुद्ध खड़े रहें, तुम्हें दिखायी न पड़ेंगे। तुम्हे वही दिखायी पड़ेगा जो तुम्हें दिखायी पड़ सकता है। मीरा नाचती रहे, तुम्हें वही दिखायी पड़ेगा जो तुम्हे दिखायी पड़ सकता है। तुम्हारी आँखें ही तो तुम्हे खबर देंगी, और तुम्हारे कान ही तो व्याख्या करेंगे, और तुम्हारी समझ ही तो परिभाषा बनायेंगी।

मत्य का अनुभव जब होता है तब तो वह प्रगट हो ही जाता है, लेकिन तुम नहीं समझ पाते।

बड़ी प्रसिद्ध पक्षियाँ हैं

‘या रव न वह समझे हैं न समझेंगे मेरी बात

दे और दिल उनका, जो न दे मुझको जबा और।’

सभी बुद्धों के मन में ऐसा भाव रहा होगा कि हे, भगवान्

‘या रव न वह समझे हैं न समझेंगे मेरी बात

दे और दिल उनको, जो न दे मुझको जबा और।’

‘या तो मेरी जबान बदल, ताकि मैं उन्हे समझा सकूँ, और या उन्हें और दिल दे, ताकि वे समझ सके।’

हजार ढग से बुद्धों ने समझाने की कोशिश की है, लेकिन तुम्हारे पास कोई समानातर अनुभव चाहिए न सही सूरज का, किरण का ही सही, न सही सूरज का, मिट्टी के छोटे-से दीये का ही सही — पर कोई समानातर अनुभव चाहिए।

दीया भी देखा हो तो सूरज का अनुभान किया जा सकता है। दीया भी न देखा हो तो सूरज शब्द कोरा शब्द रह जाता है — चली हुई कारतूस जैसा, खाली। उसे तुम याद कर ले मिलने हो, वक्त-बेवक्त उपयोग भी कर सकते हो, लेकिन उसकी कोई जड़े तुम्हारे भीतर न होगी — उखड़ा हुआ पौधा होगा, सूखा हुआ पौधा होगा, गुलदस्ते में सजा के रख सकते हो, उसमें कभी फूल न आएंगे, तुम घोखे में रह सकते हो, लेकिन तुम्हारे जीवन में उस घोखे के कारण बाषा ही पड़ेगी, क्राति घटित न होगी।

ठीक पूछा है जब भी किसी को विराट अनुभव में आता है तो अभिव्यक्ति तो होती ही है।

बहुत बुद्धपुरुष चुप भी रह गये हैं, पर उनकी चुप्पी भी बड़ी बोलती हुई

थी। वह खामोशी भी गीत गाती हुई थी। जिनको योड़ी भी समझ थी उन्होंने उन चुप रहने वाले लोगों को भी खोज लिया है और उनके पदचिह्नों पर यात्रा कर ली है।

कोई नाचा है। किसी ने बांसुरी बजा कर कहा है। कोई बोला है। किसी ने तर्कनिष्ठ भाषा का उपयोग किया है। जीसस और बुद्धों ने छोटी-छोटी कथाएँ कही हैं। जो जिससे बन सका...।

सत्य को पाने के पहले जिसकी जैसी तैयारी थी, फिर जब सत्य उतरा तो उसके पहले जो-जो तैयारी थी उस सबका उपयोग किया है, हर तरह से उपयोग किया है। लेकिन ज़रूरी नहीं है कि तुम उन्हे पहचान पाये होओ।

बुद्ध जिन गाँवों से गुज़रे उनमें हजारों लाखों लोग थे, जिन्होंने उन्हें नहीं पहचाना, बुद्ध गाँव से गुज़रे, जो उनके दर्शन को भी न गये, जो उन्हें सुनने भी न गये, जो उन्हें सुनने भी गये तो खाली हाथ ही लौटे, सोचते लौटे कि सब बातें हैं, हवा की बातें हैं। उनके कहने में भी सच्चाई है।

जो तुम्हारी पकड़ में न आये, वह हवा की बात है, पानी का बबूला है।

सत्य तो सत्य तभी होता है जब तुम्हारे भीतर उसे आद्वार पिल जाए।

लेकिन बुद्धपुरुष कहते हैं, उनकी कहणा से हजार उपाय खोजते हैं। कहने में उन्हें कुछ रस नहीं है, तुम समझ लो, इसमें ज़रूर रस है। यहीं तो फर्क है।

एक दार्शनिक भी कहता है, उसे कहने में रस है, तुम समझो-न-समझो, इसमें सबाल नहीं है – उसे अपनी ही आवाज सुनने में मजा आ रहा है। बोल के वह अपने अहकार को फैला रहा है।

विचारक भी लिखता है, बोलता है, लेकिन तुमसे उसे प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन अपने अहकार की सजावट ही है।

कवि भी गाना है, लेकिन गाने में मजा भी अपनी ही आवाज सुनने का है। यहीं तो कवि और ऋषि का फर्क है। ऋषि गाता है ताकि तुम सुन सको। ऋषि गाता है ताकि तुम्हारे हृदय में कुछ हिलोरे पैदा हो सके, ताकि तुम्हारा सोधा प्राण जग जाए। कवि गाता है, ताकि तुम्हारी तालियों की आवाज उसके अहकार में नयी सजावट बने, नया शुगार हो, मगर तुम्हारी तालियों को सुनने के लिए ही गाता है।

सत भी बोलते हैं – इसलिए नहीं कि तुम्हारी तालियाँ सुनें। तुम्हारी प्रशसा से कोई भी प्रयोजन नहीं है। बस्तुत जब भी तुम उनकी प्रशसा करते हो और ताली बजाते हो, तब वे योड़ा जांकते हैं। क्योंकि यह बात ताली सुनने के लिए या प्रशसा सुनने के लिए नहीं कही गयी थी – यह कही गयी थी ताकि तुम बदलो, तुम्हारे जीवन में क्रांति का सूत्रपात हो।

‘न सताइश की तमन्ना न सिले की पर्वा
गर नहीं है मेरे अशआर में मानी न सही।’

— न तो कोई पुरस्कार चाहिए, न कोई प्रशसा।

‘न सताइश की तमन्ना न मिले की पर्वा।
गर नहीं है मेरे अशआर में मानी न सही।’

इसकी भी चिंता नहीं है सतों को कि वे जो कह रहे हैं, वह सार्थक भी हा, क्योंकि सार्थक बनाने के लिए तो उसे तुम्हारे तत्त्व पर उतारना चाहिए। और जितना ही सत्य तुम्हारे तत्त्व पर उतारा जाता है उतना ही मरता जाता है, जब वह ठीक तुम्हारे तत्त्व पे आ जाता है, व्यर्थ हो जाता है।

इसलिए अगर किसी को मार्थक बचन ही बोलने की आकांक्षा हो तो सत्य नहीं बोला जा सकता। सत्य तो विरोधाभासी है। सत्य का तो बोलने का एक ही ढंग है कि तुम सार्थक होने की चिंता मत करना।

तकरीत है सत्य, तो सार्थक कैसे होगा?

विरोधाभासी है सत्य, तो सार्थक कैसे होगा?

और जो तुम्हारे लिए मार्थक हो सके वह बिलकुल ही व्यर्थ हो गया। जो तुम्हारी बिलकुल ही समझ मे आ जाए, वही सार्थक हो मरता है। और जो इतना सार्थक हो जाए कि तुम्हारी समझ मे बिलकुल आ जाए, वह तुम्हे ऊपर न उठा सकेगा।

तो बुद्धपुरुषो की चेष्टा क्या है?

— कुछ समझ में आये, कुछ समझ के पार रह जाए।

जो समझ मे आये, वह सहारा बने आस्था का, ताकि जो समझ में नहीं आया है, उसको तरफ तुम कदम बढ़ाओ, जरा-सा समझ मे आये और बहुत-सा समझ के पार रह जाए, वह जो थोड़ा-सा समझ में आता है, धूधला-सा समझ मे आता है, वह तुम्हारे लिए मार्ग बन जाए, उसके सहारे तुम और यात्रा करने के लिए और उत्सुक हो जाओ।

सत तो प्रगट हो जाते हैं — अपनी तरफ से, तुम्हारी तरफ से अप्रगट रह जाते हैं — इतने अप्रगट रह जाते हैं कि इतिहास मे उनका कोई उल्लेख भी नहीं होता।

जीसस का कोई उल्लेख नहीं है, सिवाय बाइबिल के कहीं और। बाइबिल तो उनके ही शिष्यों की किताब है, इसलिए भरोसे की नहीं है। हजारों लाग है जो शक करते हैं कि जीसस कभी हुए भी

कृष्ण कभी हुए — शक की बात है।

इतने विराट पुरुष हुए, इतिहास मे इनको कोई छाप नहीं छूट जाती, क्योंकि इतिहास तुम लिखते हो, जब तुम पर ही छाप नहीं छूटती तो तुम्हारे लिखे पर

कहाँ से छाप छूटेगी । तुम्हारे लिखे पे छाप छूटती है चरोज खा की, तैमूरलग की, राजनेताओं की, उपद्रवियों की, हत्यारों की, डाकुओं की, उनकी तुम्हारे लिखे पे छाप छूटती है । इन पे कोई शक नहीं करता कि चरोज खा कभी हुआ या नहीं, तैमूरलग कभी हुआ कि नहीं । कोई शक का सवाल ही नहीं है । करोड़ों प्रमाण हैं उनके होने के ।

कृष्ण ? काइस्ट ? — कोई प्रमाण नहीं मालूम पड़ता, मान लो, भरोसे की बात है, न मानो तो कोई मना नहीं सकता ।

क्या कारण होगा ? इतिहास इतना अछूता कैसे रहे जाता है ?

क्योंकि इतिहास तुम लिखते हो । तुम्हारा हृदय ही अछूता रह जाता है । तुम पर ही निशान नहीं बनते उनके, तो तुम्हारे लिखे पर कैसे बनेगे ? व्यर्थ की तो छाप बन जाती है, क्योंकि व्यर्थ तुम्हें सार्थक है । सार्थक की छाप ही नहीं बनती, क्योंकि सार्थक तुम्हें बिलकुल व्यर्थ है ।

बुद्ध का क्या करियेगा ? युद्ध मे काम आ नहीं सकते । तलवार बना नहीं सकते उनसे ।

बुद्ध की खोजों का क्या करियेगा ? अणु-बम तो बन नहीं सकता उनसे । तुम्हारे किसी काम की नहीं है । ख्याली बातें हैं, हवा की हैं ।

व्यवन्द्रष्टा है इस तरह का व्यक्ति । तुम उसे माफ कर देते हो, इतना ही बहुत । तुम अपनी राह चले जाते हो । कभी फुर्त हुई, उसकी दो बात भी सुन लेते हो, लेकिन उसकी बातों के कारण तुम अपने को बदलने की तैयारी नहीं करते । सुन लेते हो औपचारिकता से, शिष्टाचार से, लेकिन कही भी तुम पर कोई छाप नहीं पड़ती । किसी पे पड़ जाती है तो तुम उसको पाशल समझते हो । किसी पे पड़ जाती है तो तुम समझते हो कि गया काम से, यह एक और आदमी खराब हुआ ।

जीवन मे जो भी महत्वपूर्ण है, वह तुम्हे सार्थक दिखायी ही नहीं पड़ता । तुम कितने ही ऊँचे आकाश में उड़ो, तुम्हारी नजर चील की तरह कचरा-धरो पे पड़े मरे चूहो में लगी रहती है । तुम बुद्धों के पास भी बैठो तो भी तुम्हारी नजर बुद्धो पे नहीं होती ।

एक सज्जन मेरे पास आये । मिल के गये । महीने-भर बाद वे फिर आये । बड़े प्रसन्न थे । कहने लगे, 'आपकी बड़ी कूपा है । चमत्कार हो गया । मुकदमा कई सालों से उलझा था, आपके दर्शन किये, जीत गया ।'

मेरे दर्शन से इनके मुकदमे का क्या सम्बन्ध ? लेकिन जब आये होगे तो वे इसीलिए आये होगे कि मुकदमा जीतना था ।

बुद्धपुरुषों के पास भी तुम जाओ तो तुम्हारी नजर तो मरे चूहो पर ही लगी

रहती है। कही मुकदमा हार जाते तो फिर कभी दुबारा मेरे पास न आते : ' वह आदमी किसी काम का नहीं, उलटा उपद्रव है । '

तो मैंने उनसे कहा, ' भूल हो गयी । सयोग को चमत्कार मत समझ लेना । और अब दुबारा मुकदमा जीतना हो तो यहाँ मत आना । '

मुकदमे से मेरा क्या सम्बंध हो सकता है ? तुम्हारी पूरी जिदगी बेकार है, तुम सब मुकदमे हार जाओ तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता । तुम्हारी जिदगी पूरी हारी हुई है । तुम जिसे जिदगी कहते हो वही व्यर्थ है ।

सार्थक तुम्हारी समझ के मापदण्ड पे कसा जाता है ।

ध्यान रखना—

' न सत्ताइश की तमचा न सिले की पर्वा

गर नहीं है मेरे अशआर मे मानी न सही ।'

बुद्धपुरुष सार्थक की चिता करे तो बोल ही नहीं सकते, क्योंकि तब मेरे चूहा की चर्चा करनी पड़ेगी । सत्य की परवाह करते हैं, सार्थक की नहीं । और सत्य तुम्हे निरर्थक दिखायी पड़ेगा, यह पक्का है ।

बड़ी हिम्मत चाहिए सत्य की खोज के लिए, क्योंकि वह अर्थ के पार जाने की चेष्टा है । जिन-जिन चीजों से तुम्हे उपयोगिता मालूम होती है—धन है, पद है, प्रतिष्ठा है—सत्य न तो पद बनेगा, न प्रतिष्ठा, न धन, सिंहासन तो बन ही नहीं सकता, सूली भला बन जाए, धन तो बनेगा ही नहीं, पद तो बनेगा ही नहीं, विपरीत भला हो जाए । तो सत्य तुम्हें कैसे सार्थक मालूम हो सकता है ?

सत्य तो ऐसा है, जैसे वृक्षों पे फूल है, पक्षियों के गीत हैं, झरनों का कलरव है—कोई अर्थ तो नहीं है ।

पश्चिम के एक बड़े महत्वपूर्ण कवि कर्मिगत से किसी ने पूछा कि तुम्हारी कविताओं का माना ही क्या है, अर्थ क्या है । उसने कहा, ' कोई अर्थ नहीं । फूलों से पूछो, क्या है । पक्षियों से पूछो, क्या अर्थ है । आकाश से पूछो, क्या अर्थ है उसका । और अगर आकाश व्यर्थ हो के शान से है और फूल व्यर्थ हो के गीरव से खिलते हैं, शरमाते नहीं, छिपते नहीं, तो मेरी कविताओं को ही अर्थ बताने की क्या ज़रूरत है ? '

जिननी सत्य के करीब कोई बात पहुँचने लगेगी, उतनी ही तुम्हारी सार्थकता के बेरे के बाहर हो जाएगी । अर्थ है कोई, लेकिन उस अर्थ को जानने के लिए तुम्हारी आत्मा को पूरा रूपान्तरित होना पड़ेगा, तुम्हारे अर्थ की परिभाषा ही बदलनी पड़ेगी ।

बुद्धपुरुष प्रगट होते हैं—तुम्हारे लिए नहीं प्रगट हो पाते ।

तुम इसकी चिता भी मत करो कि वे प्रगट होते हैं या नहीं—तुम इसकी ही चिता करो कि तुम्हारे लिए प्रगट हो पाते हैं या नहीं ।

अपने हृदय को खोलो ।
 बद द्वार-दरवाजे तोडो ।
 घबडाओ मत, खुले मे आओ ।
 छिपो मत अधकार मे ।
 आदत अधकार की छोडो ।
 थोड़ी रोशनी मे आओ ।

मौखिक तिलमिलाएँ भी प्रारम्भ मे तो घबडाओ मत । पुराने अधकार की आदत हो गयी है, स्वाभाविक है कि थोड़ी तिलमिलाहट होगी, थोड़ी अँडचन होगी, थोड़ी कठिनाई होगी, थोड़ी तपश्चर्या होगी । मगर यह तपश्चर्या करने जैसी है, क्योंकि जो मिलेगा वह अनत है, जो मिलेगा वह विराट है । और जब तक वह न मिल जाए तब तक तुम्हारा जीवन एक कोरा शून्य है, एक रिक्तता है, एक खालीपन है ।

१४ दुसरा प्रश्न आये थे दर पे तेरे सिर झुकाने के लिए,
 उठता नही है सिर अब बापस जाने के लिए,
 दर्द दिया है तो दवा भी तु ही दे,
 ऐसा न हो कि कहानी बन जाये जमाने के लिए ।

ठीक है । घबडाने की कोई बात नही है ।
 दर्द ही दवा बन जाता है ।

दर्द के अधूरे होने मे पीड़ा है, पुरे हो जाने मे दवा है ।

इसे थोड़ा समझना । कठिन होगा समझना, क्योंकि हमारे तर्क की कोई भी कोटियां काम मे नही आएँगी ।

लेकिन आन्तरिक जीवन के बहुमूल्य सत्यो मे एक सत्य है कि अगर तुम्हारा प्रश्न पूरा हो जाए तो प्रश्न मे ही उत्तर निकल आता है ।

और तुम्हारी प्यास अगर समग्र हो जाए तो प्यास मे ही झरने फूट पढ़ते हैं और तृप्ति आ जाती है ।

दर्द पूरा हो जाए, दर्द इतना हो जाए कि तुम दर्द के जानने वाले अलग न रह जाओ, भेद न बचे, दर्द ही बचे, तुम न बचो तो दवा हो जाता है । इसी को तपश्चर्या कहते हैं ।

तपश्चर्या का अर्थ धूप मे खड़ा हो जाना नहीं है, न भूखे हो कर उपवास कर लेना है ।

तपश्चर्या का अर्थ है जीवन के खालीपन की पीड़ा को उसकी समग्रता मे अनुभव करना, जीवन की अर्थहीनता को उसकी पूरी त्वरा मे अनुभव करना ।

जीवन की ही यह जिसको भाग-दोड़ हम समझ रहे हैं, अभी बड़ी उपयोगी मालूम होती है, एक ख़्वाब से ज्यादा न रह जाए तो अचानक हम पाएँगे हाथ खाली हैं। अबडाहट पकड़ेगी। रोआँ-रोआँ कैप जाएगा। लगेगा, यह जो जिये अब तक नाहक ही जिये, यह जो समय गया व्यर्थ ही गया। पीड़ा उठेगी। गहन पीड़ा उठेगी। इस पीड़ा को झेलने का नाम ही तपश्चर्या है।

और जल्दी दवा मत माँगना, क्योंकि जल्दी दी गयी दवाएँ शामक होगी, वे तुम्हारी पीड़ा को सुला देंगी, तुम फिर बापस दुनिया में लौट जाओगे बैसे-के-बैसे।

दवा माँगना ही मत। दर्द को भोगने के लिए तैयार रहना। अगर तुम भोगने की पूरी तत्परता दिखा सको तो दद में ही दवा छिपी है।

‘इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया

दर्द की दवा पायी, दर्द बेदवा पाया।’

प्रेम से, भक्ति से —

‘तबियत ने जीस्त का मजा पाया’

पहली दफा जीवन का आनंद आना शुरू हुआ। लेकिन यह आनंद कोरा आनंद नहीं है, इस आनंद की बड़ी गहन पीड़ा भी है। अगर तुमने प्रेम में सिर्फ़ सुख ही खोजा तो तुम प्रेम से विचित रह जाओगे, क्योंकि प्रेम का दुख भी है।

गुलाब की ज्ञाड़ी पर फूल ही नहीं हैं, कौटे भी हैं। फूल-ही-फूल माँगे तो फिर तुम जा के फूल बेचने वाले से फूल खरीद लेना, ज्ञाड़ी लगाने की ज्ञास्त में मत पड़ना। वहाँ तुम्हें फूल मिल जाएँगे बिना कटाए के, मगर वे मरे हुए फूल हैं। जिदा फूल चाहिए तो कटाए भी होगे।

और गुलाब का फूल कटाए में ही शोभा देता है।

रात के घने अँधेरे में जब चैतन्य का दीया जलता है तो उसी विपरीतता में उसकी प्रतीति की सघनता है।

‘इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया

दर्द की दवा पायी’

अब तक जो दर्द थे जिदगी के — हजार दर्द हैं जिदगी के — वे ही तुम्हें मेरे पास ले आये। हजार-हजार तकलीफ़ हैं, चिंताएँ हैं, उलझने हैं। हजार दर्द हैं जिदगी के।

अगर तुम भक्ति और प्रेम के रास्ते पर चले तो दर्द की दवा मिल जाएगी। इन सभी दर्दों की दवा मिल जाएगी। ये सब दई खो जाएँगे। ‘दर्द की दवा पायी’ — और तब एक नया दर्द शुरू होगा — ‘दर्द बेदवा पाया।’ और अब एक ऐसा दर्द शुरू होगा जिसकी कोई दवा नहीं है।

इन सभी दर्दों की तो दवा है। अगर चिंता है तो ध्यान से खो जाएगी।

तनाव है, ध्यान से मिट जाएगा। कोध है, लोभ है, भोग है – इन सभी ददों की दवा है। सिफेर एक परमात्मा का दर्द है, जिसकी कोई दवा नहीं।

तो तुमसे मैं सारे दर्द छोन लूँगा और एक दर्द दूँगा, जिसकी फिर कोई दवा नहीं है। सौदा महँगा है। महँगा सौदा है। जुआरी चाहिए। दुकानदार इस काम को नहीं कर सकते। वे कहेंगे, 'यह क्या हुआ, छोटे-छोटे दर्द ले लिये और यह बड़ा दर्द दे दिया। छोटे-छोटे दर्द ले लिये, जिनकी नो दवा थी, और यह दर्द दे दिया, जिसकी कोई दवा नहीं है।'

लेकिन घबड़ाना मत।

'इश्क से तबियत ने जीस्त का मजा पाया दर्द की दवा पायी, दर्द बेदवा पाया।'

'इश्रते कतरा है दरिया मे फना हो जाना।'

बूद का गौरव यही है, ऐश्वर्य यही है कि वह सागर में खो जाए, मिट जाए।

'इश्रत कतरा है दरिया मे फना हो जाना

दर्द का हृद से गुज़रना है दवा हो जाना।'

यह जो बेदवा-दर्द है, अगर यह हृद से गुज़र जाए – हृद से गुज़र जाने का अर्थ है, तुम इसमे मिट ही जाओ, तुम ही हृद हो, तुम ही सीमा हो, ऐसा कोई भीतर रह ही न जाए जिसको दर्द ही रहा है, दर्द ही बस रह जाए –

'दर्द का हृद से गुज़रना है दवा हो जाना।'

परमात्मा की पीड़ा ऐसी है कि उसका कोई इलाज नहीं, पीड़ा मे ही इलाज छिपा है। क्योंकि परमात्मा आखिरी पीड़ा है, उसके आगे इलाज हो भी नहीं सकता। वही पीड़ा है, वही इलाज है। वही रोग है, वही औषधि है। क्योंकि उसके पार फिर कुछ भी नहीं।

तो घबड़ाओ मत।

दर्द की तैयारी चाहिए।

तो जब परमात्मा के आनंद को माँगने चले हो तो यह सौदा करने जैसा है। जितना दर्द उठाने की तैयारी दिखाओगे, उतना ही परमात्मा का आनंद उपलब्ध होगा।

तुम्हारे दर्द को ज्ञेल लेने की तैयारी, तुम्हारी परीक्षा है, तुम्हारी कसीटी है, और तुम्हारी भूमिका भी है।

दर्द निखारता है। दर्द साफ करता है।

दर्द ऐसे है जैसे कि कोई सोने को आग में धरता है, तो जो व्यर्थ है जल जाएगा, स्वर्ण बच रहेगा खालिस। दर्द में वही जलेगा जो व्यर्थ है, जो जल ही जाना था, कूड़ा-कर्कट था। तुम्हारे भीतर जो भी सोना है वह बच जाएगा।

यह अग्नि गुज़रने जैसी है।

भवित अस्ति है ।

यह भीतर की आग है ।

तीसरा प्रश्न आपके प्रवचन सुनते हुए कभी-कभी प्रेम-विभोर हो कर मेरी आँखें आँसू बहाने लगती हैं। लेकिन तभी अचेतन में अहकार को रस भी आता लगता है कि मैं अहोभाव के आँसू बहा रहा हूँ। क्या इससे अद्वैत का रुद्धा-सूखा मार्ग अच्छा नहीं है, जहाँ अशु बहाने वाला बचता ही नहीं ?

बारीक है सबाल, थोड़ा समझना पड़े। नाजुक है ।

थोड़ा ध्यान करना जब भवित तक मेरे अहकार बच जाता है तो अद्वैत में तो मिट ही न सकेगा। जब आँसू भी उसे नहीं बहा सकते तो रुद्धे-सूखे मार्ग पर तो बड़ा अकड़ के खड़ा हो जाएगा। जब आँसू भी उसे पिछला नहीं सकते, और आँसुओं से भी वह अपने को भर लेता है, तो जहाँ आँसू नहीं है वहाँ तो मिटने का उपाय ही न रह जाएगा।

समझें ।

अहकार का आँसुओं से विरोध है। इसलिए तो हम पुरुष से कहते हैं, 'रो मत। क्या स्त्री जैसा व्यवहार कर रहे हो !' पुरुष को हम अहकारी बनाते हैं। छोटा बच्चा भी रोने लगता है तो कहते हैं, 'चुप ! लड़का है या लड़की ?' पुरुषों की दुनिया है। अब तक पुरुष काबू रहे हैं दुनिया पर, तो उन्होंने अपने लिए अहकार बचा लिया है। पुरुष होने का अर्थ है 'रोना मत'। यह अकड़ है। 'स्त्रियाँ रोती हैं। कमज़ोर रोते हैं, शक्तिशाली कहीं रोते हैं।

अहकार का आँसुओं से कुछ विरोध है।

तुम अगर सिकन्दर को रोते देखो तो तुम उसको बहादुर न कह सकोगे। नेपोलियन को अगर तुम रोते देख लो तो तुम कहोगे 'अरे, नेपोलियन, और रो रहे हो !' यह तो कायरो की बात है, कमज़ोरो की बात है। यह तो स्त्रैण चित्त का लक्षण है।'

अहकार का आँसुओं से विरोध है। तो जब आँसू भी अहकार को नहीं मिटा पाते तो ऐसा मार्ग जहाँ आँसुओं की कोई जगह नहीं है, वह तो मिटा ही न पाएगा, वहाँ तो अहकार और अकड़ जाएगा।

भक्तों में तो कभी-कभी तुम्हे विनम्रता मिल जाएगी, अद्वैतवादियों में तुम्हे कभी विनम्रता नहीं मिलेगी। मुश्किल है, बहुत मुश्किल है। बड़ी अकड़ मिलेगी। आँसू ही नहीं हैं।

थोड़ा सोचो हरा वृक्ष होता है तो ज़ुक सकता है, सूखा वृक्ष होता है तो झक नहीं सकता।

विनम्रता तो मुकने की कला है। अगर आँखों ने घोड़ी हरियाली रखी है तो शुक सकोगे। अगर आँख बिलकुल सूख गये और सूखे दरख़त हो गये तुम, तो अँखना असम्भव है, टूट जला जाओ, शुक न सकोगे।

अहकारी वही तो कहते हैं कि टूट जाएंगे, मगर शुकेंगे नहीं, मिट जाएंगे, मगर अकड़े रहेंगे।

अद्वैत लूँखा-सूखा रास्ता है—तर्क का, बुद्धि का, विचार का। अगर शाब्द, प्रेम और भक्ति के रास्ते पर भी तुम पाते हो कि अहकार इतना कुशल है कि अपने को भर लेता है, तो फिर अद्वैत के रास्ते पर तो बहुत भर लेंगा। क्योंकि भक्ति की तो पहली शर्त ही यही है समर्पण। भक्ति तो पहली ही चोट में अहकार को मिटाने की चेष्टा करती है, अद्वैत तो अतिम चोट में मिटायेगा। तुम पूरा रास्ता तय कर सकते हो अद्वैत का अहकार के साथ। अखीर में अहकार गिरेगा। भक्ति तो पहले ही चरण पर कहती है अहकार छोड़ो तो ही प्रवेश है।

वैष्णव भक्तों की एक कथा है कि एक भक्त वृद्धावन की यात्रा को आया—रोता, गीत गाता, अशु-विभीर, लेकिन मंदिर पर ही उसे रोक दिया गया, द्वार पर पहरेदार ने कहा, 'रुको! अकेले भीतर जा सकते हो। लेकिन यह गठरी जो साथ ने आये हो, इसे बाहर छोड़ दो।'

उसने चौक के चारों तरफ देखा, कोई गठरी भी उसके पास नहीं है। वह रुहने लगा, 'कौसी गठरी, कौन-सी गठरी? मैं तो बिलकुल खाली हाथ आया हूँ।'

उस द्वारपाल ने कहा, 'भीतर देखो, बाहर मत। गठरी भीतर है, गाँठ भीतर है। जब तक तुम्हे यह ख्याल है कि मैं हूँ तब तक, तब तक भक्ति के मंदिर में प्रवेश नहीं हो सकता। भक्ति की तो पहली शर्त है, तू हूँ, मैं नहीं हूँ। भक्ति का प्रारम्भ है तू हूँ, मैं नहीं। और भक्ति का अंत है कि न मैं हूँ, न तू हूँ।'

अद्वैत की तो बहुत गहरी खोज यही है कि मैं हूँ, तू नहीं, और अतिम अनुभव है न मैं हूँ, न तू। इसलिए तो अद्वैत कहता है अह बह्यास्मि। अनलहृक मैं हूँ। मैं बहा हूँ। मैं सत्य हूँ।

अद्वैत के रास्ते पर तो वे ही लोग सफल हो सकते हैं जो अहकार के प्रति बहुत सजग हो सके, क्योंकि वहाँ आँख भी साथ देने को न होंगे, सिर्फ सजगता ही साथ देगी, वहाँ प्रेम भी मुकाने को न होगा, वहाँ तो बोधपूर्वक ही शुकोगे तो ही शुकोगे।

तो, अद्वैत दो बहुत ही समझपूर्वक चलने का यार्द है। सौ अलेंगे, एक मुस्किल से पहुँच पाएंगा। भक्ति मे नासमझ भी चल सकता है, क्योंकि भक्ति बहूती है, सिर्फ गठरी छोड़ दो। कोई तर्क का जाल नहीं है, कोई विचार का सबाल नहीं है। प्रेम मे डूब जाओ।

जग्नाती भी चल सकता है भक्ति के मार्ग पर ।

तो जिस मिश्न ने पूछा है कि आसू बहने लगते हैं तो एक अहंकार पकड़ता है भीतर कि अहो, ज्ञन्यभाग, कि मैं कैसे भक्ति के रस में डूब रहा हूँ ! — तीक पूछा है । ऐसा होगा, स्वाभाविक है । उससे चबड़ाओं मत । उस अहोभाव को भी परमात्मा के चरणों पे समर्पित कर दो । तत्क्षण कहो कि खूब, फिर उसकाया, इसे भी उम्हात ! अहोभाव मेरा क्या, तेरा प्रसाद है ! अब मुझे और धोखा न दे ! अब मुझे और खेल न दिला ।

जैसे भी यह अहंकार बने, उसे तत्क्षण जैसे ही याद आ जाए, तत्क्षण परमात्मा के चरणों में रख दो । जल्दी ही तुम पाओगे अगर तुम रखते ही गये, अहंकार के बनने का कारण ही खरम हो गया ।

अहंकार सग्रहीत हो तो ही निर्मित होता है । पल-भल उसे चढ़ाते जाओ । परमात्मा के चरणों में और सबूं फूल चढ़ाये, बेकार, धूप-दीप बाली, बेकार, आरती उतारी, व्यर्थ—बस अहंकार प्रतिपल बनता है, उसे तुम चढ़ाते जाओ । वही तुम्हारे भीतर उगने वाला फूल है, उसे चढ़ाते जाओ । जन्दी ही तुम पाओगे उसका उगना बद हो गया । क्यो ? उसका सग्रहीत होना ज़रूरी है ।

और आसू बडे सहयोगी हैं । होश रहना पड़ेगा । थोड़ा जागरूक रहना पड़ेगा । नहीं तो अहंकार बड़ा सूक्ष्म है और बड़ा कुशल है, बड़ा चालाक है । साध-शान रहना पड़ेगा ।

साधधानी तो सभी मार्गों पर ज़रूरी है, भक्ति के मार्ग पर सबसे कम ज़रूरी है, लेकिन ज़रूरी तो है ही । अद्वैत के मार्ग पर बहुत ज्यादा ज़रूरी है । न्यूनतम् साधधानी से भी काम चल सकता है भक्ति के मार्ग पर, लेकिन विलक्षुल दिना साधधानी के काम नहीं चल सकता है ।

चबड़ाओं मत । जो हो रहा है, विलक्षुल स्वाभाविक है, सभी को होता है । यात्रा के प्रारम्भ में यह अड़चन सभी को आता है ।

अहंकार की आदत है कि जो भी मिल जाए उसी का सहारा खोज के अपने को भर लेता है । धन कमाओ तो कहता है, देखो, कितना धन कमा लिया । ज्ञान इकट्ठा कर लो तो कहता है, कितना ज्ञान पा लिया । त्याग करो तो कहता है, देखा कितना त्याग कर दिया । ध्यान करो तो कहता है, देखो, कितना ध्यान कर लिया । मेरे जैसा ध्यानी कोई भी नहीं है । आसू बहाओ तो जिनती कर लेता है, मैंने कितने आसू बहाए, दूसरों ने कितने बहाए, मेरा नवर एक है, बाकी नवर दो हैं ।

इस अहंकार की तरकीब के प्रति होश रहना भर ज़रूरी है, कुछ और करने की ज़रूरत नहीं है । उसे भी चढ़ा दो परमात्मा को ।

भक्ति को एक सुविद्धा है । परमात्मा भी है उसके चरणों में तुम चढ़ा उकते हो । भक्ति को एक सुविद्धा है कि अहकार के विपरीत वह परमात्मा का सहारा ले सकता है । अहलवादी को वह सुविद्धा भी नहीं है । वह बिलकुल अकेला है, कोई सर्वी-साथी नहीं है । भक्त अकेला नहीं है ।

इसलिए अगर भक्ति के मार्ग पर भी तुम्हे बड़वन आ रही है तो यह मत सोचना कि अद्वैत का मार्ग तुम्हें आसान होगा, और भी कठिन होगा । इस भूल में मत पड़ना ।

अहकार की एक ही घबड़ाहट है, और वह घबड़ाहट यह है कि कही मर न जाऊँ । अहकार मरेगा ही । वह कोई शाश्वत सत्य नहीं है, वह क्षणभगुर है । तुम कभी न मरोगे, तुम्हारा अहकार तो मरेगा ही ।

जितनी जल्दी तुम यह बात समझ लो, उतना ही भला है ।

‘उम्र फानी है तो फिर मौत से डरना कैसा ?’

एक बात तो पक्की है कि मौत निश्चित है और जिंदगी आज है कल नहीं होगी-द्वा की लहर है, आयी और गयी, सदा टिकने वाली नहीं है ।

‘उम्र फानी है तो फिर मौत से डरना कैसा

इक-न-इक रोज यह हगामा हुआ रखा है ।’

किसी भी दिन यह घटना घटने वाली है मौत होगी ही ।

‘इक-न-इक रोज यह हगामा हुआ रखा है ।’

तो जो होने ही चाहा है, उसे स्वीकार कर लो ।

लड़ो मत, बहो । यह लड़ाई छोड़ दो कि मैं बर्चू । स्वीकार ही कर ला कि मैं नहीं हूँ ।

जो मौत करेगी, भक्त उसे आज ही कर लेता है । जो मौत में जबरदस्ती किया जाएगा, भक्त उसे स्वेच्छा से कर लेता है । वह कहता है, ‘जो मिटना ही है वह मिट ही गया, आज मिटा, कल मिटा—क्या कर्क पड़ता है । मैं खूब ही उसे छोड़ देता हूँ ।’

अपनी मौत को स्वीकार कर नो तो तुम अमृत को उपलब्ध हो जाओगे । इधर तुमने मौत को स्वीकार किया कि उधर तुम पाओगे तुम्हारे भीतर कोई छिपा है—तुमसे ज्यादा गहरा, तुमसे ज्यादा ऊँचा, तुमसे ज्यादा बड़ा । तुम मिटे कि उस ऊँचाई और गहराई और उस विराट का चलना शुरू हो जाता है ।

तुमने तिनके का सहारा ले रखा है । तिनके के सहारे के कारण तुम भी छोटे हो गये हो । तुमने गलत सग पकड़ लिया है । गलत से तादात्म्य हो गया है ।

मौत को स्वीकार कर लो ।

मौत को स्वीकार करते ही अहकार नहीं बचता । जैसे ही तुमने सोचा,

समझा कि मौत निश्चित है — होगी ही, आज हो कल हो परसो हो, होगी ही; इससे बचने का कोई उपाय नहीं है, कोई कभी बच नहीं पाया। आग-भाग के कहाँ जाओगे? आग-भाग के सभी उसी में पहुँच जाते हैं, मौत के ही मुह में पहुँच जाते हैं।

अगीकार कर ली! उस अगीकार में ही अहकार भर जाता है।

‘मुझे अहसास कम था वर्ना दोरे जिंदगानी में

मेरी हर सांस के हमराह मुझमें इकिलाब आया।’

— मुझे होश कम था, मुझे अहसास कम था, होश कम था, सावधानी नहीं थी, जागरूकता नहीं थी,

‘वर्ना दोरे जिंदगानी में

वर्ना जिंदगी-भर,

‘मेरी हर सांस के हमराह मुझमें इकिलाब आया।’

— हर सांस के साथ क्राति की समावना आती थी और मैं चूकता गया। हर सांस के साथ क्राति घट सकती थी, अहकार छूट सकता था और परमात्मा के जगत में प्रवेश हो सकता था — लेकिन होश कम था।

इस होश को थोड़ा जगाओ।

वह इकलाब, वह क्राति तुम्हारी भी हर श्वास के साथ आती है, तुम चूकते चले जाने हो।

अहकार को जब तक तुम पकड़े हो, चूकते ही चले जाओगे। जिस दिन छोड़ा अहकार का उसी क्षण क्राति घट जाती है।

उसी क्राति की तलाश है! उस क्राति के बिना कोई तृप्ति न होगी। उस क्राति के बिना तुम थरथराते ही रहोगे भय में, धबड़ते ही रहोगे चिंताओं में, डरते ही रहोगे।

मौत जब तक होने वाली है तब तक कोई निश्चित हो भी कैसे सकता है। अगर तुमने स्वीकार कर लिया तो मौत हो ही गयी, फिर चिंता का कोई कारण नहीं।

इसे थाड़ा करके देखो। यह बात करने की है। यह बात सोचने-भर की नहीं है। इसे करोगे तो ही इसका स्वाद मिलेगा।

चौथा प्रश्न पृथ्वी पर अभी भी असंख्य मदिर, मस्जिद, गिरजे और गुहाएँ हैं, जहाँ विद्युतिहित पूजा-प्रार्थना चलती है। क्या आपके देखे, वे सबके सब व्यर्थ ही हैं?

अगर व्यर्थ न होते तो पृथ्वी पर स्वर्ग उत्तर आया होता। अगर व्यर्थ न होते

— इतनी पूजा, इतनी प्रार्थना, इतने मंदिर, इतने गिरजे, इतने मस्जिद — अगर वे सब सब होते, अगर वे प्रार्थनाएं बास्तविक होती, हृदय से आविर्भूत होतीं, तो पृथ्वी स्वर्ग बन गयी होती। लेकिन पृथ्वी नरक है। अरूर कहीं-न-कहीं चूक हो सही है।

या तो परमात्मा नहीं है, इसलिए प्रार्थनाएं व्यर्थ जा रही हैं, या प्रार्थनाएं ठीक नहीं हो रही हैं, और परमात्मा से सम्बन्ध नहीं जुड़ पा रहा है। बस दो ही विकल्प हैं। अब इसमें तुम चुन लो, जो तुम्हें चुनना हो।

एक विकल्प है कि परमात्मा नहीं है, इसलिए प्रार्थनाएं कितनी ही करो, क्या होने वाला है! है ही नहीं कोई वहाँ सुनने को, आकाश खाली और कोरा है, चिल्लाओ-चौखा — तुम पागलपन कर रहे हो। यह समय व्यर्थ ही जा रहा है, इसका कुछ उपयोग कर लेते, कुछ काम में आ जाता।

और या किर, परमात्मा है, प्रार्थना करने वाला प्रार्थना नहीं कर रहा है, धोखा दे रहा है।

मैं दूसरा ही विकल्प स्वीकार करता हूँ। मेरे देखे परमात्मा है, प्रार्थना नहीं है — इसलिए सम्बन्ध टूट गये हैं, बाच का सेतु गिर गया है।

कुछ लोगोंने तो प्रार्थना भी प्रांक्सी से करनी शुरू कर दी है, पुजारी कर देता है। हिन्दुओं ने वह तरकीब खोज ली है। वे खुद नहीं जाते। गरीब-गुरुजे चले भी जाएं, पर जिनके पाम थोड़ी सुविधा है, वे पुजारी रख लेते हैं। मंदिर में एक व्यवसायी पुजारी है, वह पूजा कर देता है। यह प्रार्थना प्रांक्सी से है।

यह भी खब धोखा हुआ! किसको धोखा दे रहे हो? उस पुजारी को प्रार्थना से कुछ लेना-देना नहीं है। उसको सौ रुपये महीने मिलते हैं तनखाह, उसको तनखाह से मनलब है। वह प्रार्थना करता है, क्योंकि सौ रुपये लेने हैं। यह व्यवसाय है। अगर उसे कोई ढेढ़ सौ रुपये देने वाला मिल जाए तो इसी भगवान के खिलाफ भी प्रार्थना कर सकता है, कोई अड़चन नहीं है।

मुला नसरहीन एक सम्भाट के घर नौकर था, रसोइये का काम करता था। भिड़ी बनाई थी उसने। सम्भाट ने बड़ी प्रशंसा की। उसने कहा कि मालिक, भिड़ी तो सम्भाट है। जैसे आप सम्भाट है, शहनशाह हैं, ऐसे ही भिड़ी भी शाक-संज्ञियों में सम्भाट है।

दूसरे दिन भी भिड़ी बनायी। तीसरे दिन भी भिड़ी बनायी। चौथे दिन सम्भाट ने थाली फेंक दी। उसने कहा कि नालायक, रोज़ भिड़ी! तो मुला ने कहा, 'मालिक! यह तो जहर है! यह तो गधों को भी खिलाओ, तो न खाएं।'

सम्भाट ने कहा कि नसरहीन, चार दिन पहले तूने कहा था, यह शाक-संज्ञियों में सम्भाट है। और अब जहर है।

उसने कहा, 'मात्रिक ! हम आपके नौकर हैं, शिडी के नहीं । हम तो आपको देख के कहते हैं । जो आप कहते हैं वही हम कहते हैं । हम आपके नौकर हैं । शिडी से हमें कुछ लेना-देना नहीं है ।'

तो उस पुजारी से तुम जो चाहो करवा लो । वह तुम्हारा नौकर है, परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है ।

आदमी बड़ी चालाकियाँ करता है ।

तिब्बती लामा एक चाक बना लिये हैं — प्रेयर-हूल । उसके आरें पर, स्पोक्स पर मंत्र लिखे हैं । उसको बैठे-बैठे घुमा देते हैं हाथ से । जैसे चरखे का चाक होता है, हाथ से घुमा हिया, वह कोई पचास-सौ चक्कर लगा के रुक जाता है । वे सोचते हैं कि इतने मनों का लाभ हो गया, इतनी बार मंत्र कहने का लाभ हो गया ।

एक लामा मुझसे मिलने आया था । मैंने कहा कि तू बिलकुल पागल हैं ! इसमें प्लग लगा दे और बिजली में जोड़ दे । यह चलता ही रहेगा, तू सो, बैठ, जो तुम्हे करना हो, कर । यह भी अझट क्यों कि इसको बार-बार हाथ से घुमाना पड़ता है, तू काम दूसरा करता है । फिर घुमाया, फिर घुमाया ! और जब छोड़ा ही देना है, तो तूने प्लग लगाया, इसलिए तुझी को लाभ मिलेगा, जैसे चक्कर लगाने से मिलता है । जो प्लग लगायेगा उसको मिलेगा ।

हम किसको घोषा दे रहे हैं ?

लोग प्रार्थनाएँ कर रहे हैं, लेकिन प्रार्थनाओं का कोई सम्बंध परमात्मा से है ?

कोई माँग रहा है कि बेटा नहीं है, मिल जाए । कोई माँग रहा है कि धन नहीं है, मिल जाए । कोई माँग रहा है, अदालत में मुकदमा है, जीत जाऊँ ।

तुम परमात्मा की सेवा लेने गये हो, परमात्मा की सेवा करने नहीं । तुम परमात्मा को भी अपना नौकर-चाकर बना लेना चाहते हो तुम्हारा मुकदमा जिताये, तुम्हे बच्चा पैदा करे, तुम्हारे लड़के की शादी करवाए । लेकिन तुम परमात्मा को धन्यवाद देने नहीं गये हो कि तूने जो दिया है वह अपरम्पार है । तुम माँगने गये हो ।

जहाँ माँग है वहाँ प्रार्थना नहीं ।

इसे तुम करोटी समझो कि जब भी तुम माँगोगे, तब प्रार्थना झूठी हो गयी । क्योंकि जब तुम धन माँगते हो तो धन परमात्मा से बड़ा हो गया । तुम परमात्मा का उपयोग भी धन पाने के लिए करना चाहते हो ।

विवेकानन्द के मिता मरे । श्राहोदिल आदमी थे । बड़ा कर्ज छोड़ के मरे । वर में तो कुछ भी न था, खाने को भी कुछ छोड़ नहीं गये थे । तो रामकृष्ण ने विवेकानन्द को कहा कि तू परेशान मत हो । तू माँ से क्यों नहीं कहता ? मदिर में जा और कह दे, वे सब पूरा कर देंगी ।

वे द्वार पर बैठ गये, विवेकानंद को भीतर भेज दिया। घटे-भर बाद विवेकानंद लौटे, आँख से आँसू बह रहे हैं, बड़े अहोग्राव में! रामकृष्ण ने कहा, 'कहा?' विवेकानंद ने कहा, 'बरे! वह तो मैं भूल ही गया।'

फिर दूसरे दिन भेजा। फिर वही। फिर तीसरे दिन भेजा। विवेकानंद ने कहा, 'यह मुझसे न हो सकेगा। मैं जाता हूँ और जब खड़ा होता हूँ प्रतिमा के समक्ष, तो मेरे दुख-नुख का कोई सवाल ही नहीं रह जाता। मैं ही नहीं रह जाता तो दुख-नुख का सवाल कहाँ! पेट होगा भूखा, लेकिन मेरा शरीर से ही सम्बन्ध टूट जाता है। और उस महिमा के सामने क्या छोटी-छोटी बातें करनी हैं! चार दिन की जिदी है, भूखे भी गुजार देंगे। यह शिकायत भी कोई परमात्मा से करने की है! आप मुझे, परमहस देव, अब दुबारा न भेजें। क्षमा करें, मैं न जाऊँगा।'

रामकृष्ण हँसने लगे। उन्होने कहा, 'यह तेरी परीक्षा थी। मैं देखता था कि तू माँगता है या नहीं। अगर माँगता तो मेरे लिए तू अच्छं हो गया था। वयोग्नि प्रार्थना फिर हो ही नहीं सकती, जहाँ माँग है। तूने नहीं माँगा, बार-बार मैंने तुझे भेजा और तू हार के लौट आया — यह खबर है इस बात की कि तेरे भीतर प्रार्थना का खुलेगा आकाश। तेरे भीतर प्रार्थना का बीज टूटेगा, प्रार्थना का वृक्ष बनेगा। तेरे नीचे हड्डारो लोग छाया में बैठेंगे।'

माँग रहे हैं लोग — मदिरों में, मस्जिदों में, गुद्धारों में, शिवालयों में — प्रार्थना नहीं हो रही है।

मदिर-मस्जिद में जाता ही गलत आदमी है। जिसे प्रार्थना करनी हो वह कही भी कर लेगा। जिसे प्रार्थना करने का डग आ गया, सलीका आ गया, वह जहाँ है वही कर लेगा।

यह सारा ही सासार उसका है, उसका ही मदिर है, उसकी ही मस्जिद है।

हर चट्टान में उसी का द्वार है।

और हर बृक्ष में उसी की खबर है।

कहीं जाना है और?

'तेरे कूचे में रह कर मुझको मर मिटना गवारा है

मगर दौरो-हरम की खाक अब छानी नहीं जाती।'

पक्षत तो कहता है, अब क्या मदिर और मस्जिद की खाक छानूँ, क्षेरी गन्नी में रह के मर जाएँगे, बस पर्याप्त है।

और सभी तो गलियाँ उसकी हैं।

मैं यह नहीं कर रहा हूँ, मंदिर मत जाना। क्योंकि मदिर भी उसका है, चले गवे तो कुछ हज़र नहीं। लेकिन विशेष रूप से जाने की कोई जरूरत भी नहीं है। क्योंकि जहाँ तुम बैठे हो, वह जगह भी उसी की है। उससे बाली तो कुछ भी नहीं।

यह स्मरण आ जाए तो जब आँख बद की, तभी मंदिर खुल गया;

जब हाथ जोड़े तभी मंदिर खुल गया,

जहाँ सिर झुकाया वही उसकी प्रतिमा स्थापित हो गयी ।

ज्ञेन फकीर इकूल एक मंदिर में ठहरा था । रात सर्द थी, बड़ी सर्द थी ।

तो बुद्ध की तीन प्रतिमाएँ थीं लकड़ी की, उसने एक उठा के जला ली । रात में ताप रहा था आँच, मंदिर का पुजारी जग गया आवाज सुन के, और आग और धूआँ देख के । वह भगवान हुआ आया । उसने कहा, 'यह क्या किया ?' देखा तो मूर्ति जला डाली है । तो वह तो विश्वास ही न कर सका । यह बौद्ध भिक्षु है और इसी भरोसे इसको ठहर जाने दिया मंदिर में और यह तो बड़ा नासमझ निकला, नास्तिक भालूम होता है । तो अबूत गुस्से में आ गया । उसने कहा, 'तूने बुद्ध की मूर्ति जला डाली है । भगवान की मूर्ति जला डाली है ।'

तो इकूल बैठा था, राख तो हो गयी थी, मूर्ति तो अब राख ही थी । उसने बड़ी एक लकड़ी उठा के कुरेदना शुरू किया राख को । उस पुजारी ने पूछा, 'अब यह क्या कर रहे हो ?' तो उसने कहा कि मैं भगवान की अस्थियाँ खोजता हूँ । वह पुजारी हँसने लगा । उसने कहा, 'तुम बिलकुल ही पागल हो – लकड़ी की मूर्ति मे कही अस्थियाँ हैं ।'

तो उसने कहा, 'फिर ऐसा करो, अभी दो मूर्तियाँ और हैं, ले आओ । रात बहुत बाकी है और रात बड़ी सर्द है, और भीतर का भगवान बड़ी सर्दी अनुभव कर रहा है ।'

पुजारी ने तो उसे निकाल बाहर किया क्योंकि कही यह और न जला दे । लेकिन उस मुबह पुजारी ने देखा कि बाहर वह सड़क के किनारे बैठा है और मील का जो पत्थर लगा है, उस पे उसने दो फूल चढ़ा दिये हैं और प्रार्थना मे लीन है । तो वह गया और उसने कहा कि पागल हमने बहुत देखे हैं, लेकिन तुम भी गजब के पागल हो । रात मूर्ति जला दी भगवान की, अब मील के पत्थर की पूजा कर रहे हो ?

उसने कहा, 'जहाँ सिर झुकाया वही मूर्ति स्थापित हो जाती है ।'

मूर्ति मूर्ति में तो नहीं है, तुम्हारे सिर झुकाने में है । और जिस दिन तुम्हें ठीक-ठीक प्रार्थना की कला आ जाएगी, उस दिन तुम मंदिर-मस्जिद न खोजोगे – उस दिन तुम जहाँ होओगे, वही मंदिर-मस्जिद होगा, तुम्हारा मंदिर, तुम्हारी मस्जिद तुम्हारे चारों तरफ चलेगी, वह तुम्हारा प्रभामडल हो जाएगी ।

जहाँ-जहाँ भक्त पैर रखता है, वही-वही एक काढ़ा और निर्मित हो जाता है । जहाँ भक्त बैठता है, वही तीर्थ बन जाते हैं । तीर्थों में योहे ही भगवान मिलता है, जिसको भगवान मिल गया है, उसके चरण जहाँ पड़ जाते हैं वहीं तीर्थ बन जाते हैं । ऐसे ही पुराने तीर्थ भी बने हैं ।

कावा के कारण कावा महत्वपूर्ण नहीं है, वह मुहम्मद के सिंजदा के कारण महत्वपूर्ण है, अन्यथा पत्थर था । लेकिन किसी को सिर झुकाना आ गया, इस कारण महत्वपूर्ण है ।

सारे तीर्थ इसीलिए महत्वपूर्ण हैं कि कभी वही कोई भक्त हुआ, कभी कोई वहाँ मिटा, कभी किसी ने अपने बूँद को वहाँ ढोया और सागर को निमत्रण दिया । वे आदाकृत हैं । वहाँ जाने से तुम्हें कुछ हो जाएगा, ऐसा नहीं — लेकिन, जगर तुम्हें कुछ हो जाए, तो तुम जहाँ हो वही तीर्थ बन जाएगा, ऐसा ज़रूर है ।

पांचबार प्रश्न लोग पीते हैं लड्डाते हैं
तेरी शरण में बहुत कुछ पाते हैं
एक हम हैं कि तेरी महफिल मे
प्यासे आते हैं, प्यासे ही जाते हैं ।

फिर प्यास प्यास ही न होगी । फिर अभी प्यास ख्याल है, वास्तविक नहीं । अन्यथा कौन रोकता है तुम्हे पीने से ?

जगर सरोवर के पास से तुम प्यासे ही लौट आओ, तो प्यास ही न होगी । जब प्यास पकड़ती है किमी को तो गदे ढबरे से भी आदमी पी लेता है । 'प्यास होनी चाहिए । और जब प्यास नहीं होती है तो स्वच्छ मानसरोवर भी साफ़ने हो तो भी क्या करोगे ?

प्यास की तलाश करो । खोजो । प्यास झूठी होनी ।

बहुत लोगों को झूठी प्यास लग आती है । प्यास की चर्चा सुन-सुन के प्यास तो नहीं लगती, प्यास लगनी चाहिए, ऐसा लोभ भीतर समा जाता है ।

तुमने परमात्मा की बहुत बातें सुनी तो लगता है, परमात्मा मिलना चाहिए । प्यास नहीं है भीतर, लोभ पैदा हुआ ।

लोभ से काम न होगा ।

तुम लोभ के कारण आते होओगे, तो खाली लौट जाओगे, क्योंकि यहीं में किसी का भी लोभ पूरा करने को नहीं हैं । यहाँ तो लोभ छोड़ना है, मिटाना है, पूरा नहीं करना है ।

तुम्हारी परमात्मा की धारणा झूठी और उधार होगी । तुम्हें जीवन की परिपक्षता से परमात्मा की धारणा पैदा न हुई होगी । तुम अभी कच्चे फल हो ।

या तो आओ तो प्यास ले के आओ, अन्यथा आओ ही मत । थोड़ी देर बौर गको । कहीं ऐसा न हो कि मेरे शब्द तुम्हें और नया एक धोखा दे दें । प्यास का धोखा तो ही ही, कहीं तृप्ति का धोखा और न पैदा हो जाए । वह बड़ा खतरा है । और जिसको प्यास का धोखा है, वह एक-एक दिन तृप्ति का धोखा भी कर लेता है ।

जब तुम छूठी प्यास को मान लेते हो — किसको कहता हूँ मैं छूठी प्यास ?

मेरे पास लोग आते हैं, इतने लोग आते हैं, उनमें से सौ में से निकालदे छूठी प्यास के होते हैं ।

किसी की पत्ती मर गयी, परमात्मा की खोज पे निकल जाता है, जैसे उसी के मरने से परमात्मा की खोज का कोई सम्बन्ध ही ! दूसरी पत्ती खोजता, समझ मे आती आत । लेकिन सस्कार, समाज ! दूसरी पत्ती नहीं खोजता । खोज रहा है दूसरी ही पत्ती । कुठला रहा है । बिना खोजे नहीं रह सकता, एक खोज पैदा हो रही है भीतर । कामवासना प्रगाढ़ हो रही है, जग रही है — लेकिन सस्कार, समाज, प्रतिष्ठा, बच्चे, परिवार, नाम ! खोजना तो है पत्ती को, खोजता है परमात्मा को ! अब वह कभी भी परमात्मा को तो पा ही न सकेगा । बुनियाद मे खोज ही गलत हो गयी ।

किसी का दिवाला निकल गया, परमात्मा की खोज पे चले ! दिवाले से परमात्मा का क्या लेना-देना है ? तुम परमात्मा को सातवना समझ रहे हो ? दुख में हो, तो तुम परमात्मा को मरहम समझ रहे हो तो गलत जा रहे हो ।

परमात्मा की खोज तो सच्ची तभी होती है जब जीवन का बनुष्वष तुम्हे कह दे कि जीवन व्यर्थ है । जब पूरा जीवन व्यर्थ मालूम हो, जब इस जीवन की 'सारी सार्थकता खड़ित हो जाए, तुम अचानक जागो जैसे कोई स्वप्न से जाग गया और पाओ कि अब तक जो किया था, वह सब व्यर्थ हुआ, नये से शुरुआत करनी है, नया जन्म हो — तो प्यास पैदा होती है ।

ऐसा व्यक्ति जब भी आएगा तो तृप्त हो कर जाएगा ।

प्यास ही न लाये होओ तो कैसे तुम हो के जाओगे ? तृप्ति की पहली जान नो पूरी करो । तुम प्यास पूरी बताओ, तुम प्यास पूरी जगाओ, दूसरा काम मैं कर दूँगा । बहु करना ही नहीं पड़ता, इसलिए तो इतनी सुविधा से जिम्मेवारी ले रहा है । तुम बस पहला पूरा कर दो, वह दूसरा अपने से पूरा हो जाता है, कुछ करने की ज़रूरत नहीं पड़ती । तुम्हारी प्यास में ही तुम्हारी तृप्ति का सागर छिपा है । इसलिए तो निश्चित भाव से कहता हूँ कि दूसरा मैं कर दूँगा । इसकी गारंटी कर देता हूँ, क्योंकि उसमें कुछ करना ही नहीं है । मैं रहूँ न रहूँ, कोई फर्क नहीं पड़ता, तुम जब भी प्यासे होओगे, तृप्ति हो जाएगी ।

आखिरी प्रश्न ‘इश्क पर जोर नहीं ये बो आतिश ‘गालिब’

कि लगाये न लगे और बुझाये न बुझे ।

फिर देवर्षि नारद ने प्रेम पर यह शास्त्र क्यों लिखा ?

निश्चित ही प्रेम ऐसी आग है जो न तो तुम लगा सकते हो, न दुख दूता

सकते हों। न लगे तो लगाने का कोई उपाय नहीं है। लग जाए तो बुझाने का कोई उपाय नहीं है।

स्वामाविक प्रश्न उठता है। अगर प्रेम ऐसी आग है, अगर एक ऐसी घटना है जो अपने से घटती है और तुम्हारे किये कुछ भी नहीं हो सकता – तो फिर शास्त्र का प्रयोजन क्या? फिर भी प्रयोजन है।

ऐसा समझो कि तुम खिड़की-द्वार-दरवाजे बद करके अपने ओंधेरे घर में बैठे हो, द्वार पर खड़ा है सूरज, किरण आप दे रही हैं, लेकिन तुम अपने दरवाजे बद किये बैठे हों, तो सूरज भीतर नहीं आ पाएगा। द्वार-दरवाजे खोल दो, सूरज अपने से ही भीतर आता है, उसे लाना नहीं पड़ता। तुम कोई पोटलियो में बौध के सूरज को भीतर नहीं लाओगे। तुम कोई हीक के सूरज को भीतर नहीं लाओगे। बुझाने की भी जरूरत न पड़ेगी, आमत्रण भी न देना पड़ेगा। इधर तुमने द्वार खोला कि सूरज भीतर आया। और अगर सूरज बाहर न हो तो सिर्फ तुम्हारे द्वार खलने से भीतर न आ जाएगा, सूरज होगा तो भीतर आएगा। सूरज न होगा तो तुम कुछ भी न कर सकोगे कि सूरज भीतर आ जाए। तो एक बात तो पक्की है कि सूरज होगा तो ही भीतर आएगा, न होगा तो तुम द्वार-दरवाजे कितने ही खोलो, इससे कुछ न होगा। लेकिन एक बात है, सूरज बाहर खड़ा हो और तुम द्वार न खोलो तो भीतर न आ सकेगा।

शास्त्र का इतना ही उपयोग है कि तुम्हें द्वार-दरवाजे खोलना सिक्का दे।

प्रेम तो जब घटता है, तुम्हारे घटाये न घटेगा। और तुम्हारे घटाये घट जाए तो वह प्रेम दो कोड़ी का होगा, वह तुमसे नीचा होगा, तुमसे छोटा होगा। तुम्हारा ही कृत्य तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। कोई कृत्य कर्ता से बड़ा नहीं हो सकता। उस प्रेम की कोई कीमत नहीं है। वह तो अभिनय होगा ज्यादा-से-ज्यादा।

प्रेम तो अपने से घटेगा। वह घटना है, हैपनिय। लेकिन अगर तुम द्वार-दरवाजे बद किये बैठे हो तो वह द्वार पर ही खड़ा रहेगा, भीतर किरणें न आ सकेंगी।

शास्त्र का उपयोग है कि वह तुम्हें इतना ही बताये कि तुम बाधा न ढालो। बाधा हटायी जा सकती है, बस फिर प्रेम तो मौजूद ही है।

भक्ति तो तुम्हें चारों तरफ से घेरे खड़ी है। ज्ञाना तो बहने को तत्पर है, एक पत्थर पढ़ा है चट्टान की तरह, रुकावट डाल रहा है। चट्टान उठाने से ज्ञाना पैदा नहीं होता – ज्ञाना होगा तो चट्टान उठाने से वह उठेगा, जलधार आ जाएगी। लेकिन ज्ञाना भी हो और चट्टान पड़ी हो, तो जलधार उपलब्ध न होगी।

निषेधात्मक है शास्त्र का उपयोग, निषेद्धि है। सभी शास्त्र निषेधात्मक हैं। वे इतना ही बताते हैं कि किस-किस तरह से तुम इतज्ञाम करो, ताकि बाधा न पड़े। जो होना है, वह तो अपने से होगा।

इसलिए तो भवत कहते हैं, जब परमात्मा मिलता है तो प्रसाद से मिलता है, हमारे किये नहीं मिलता, लेकिन जब नहीं मिलता तो हमने कुछ किया है जिसके कारण नहीं मिलता ।

इसको समझ लेना ।

परमात्मा को खोते तुम हो, जब वह मिलता है तो उसके कारण मिलता है । याप तुम करते हो, पुण्य वह करता है । भूल तुमसे होती है, सुधार उससे होता है । गलत तुम जाते हो, और जब तुम ठीक जाने लगते हो तब वह जाता है, तब तुम नहीं जाते ।

यही भतलब है—

‘इश्क पर ज्ञार नहीं ये वो आतिश ‘गालिब’

कि लगाये न लगे और बुझाये न बुझे ।’

इश्क पर कोई ज्ञार नहीं है, लेकिन चट्टानें-पत्थर इकट्ठा करना बड़ा आसान है । तुम अपने चारों तरफ अवरोध खड़े कर सकते हो कि प्रेम आ ही न सके ।

यही तुमने किया है । तुमने परमात्मा के लिए रध-रध भी बद कर दिये हैं, कहीं से उसकी एक किरण भी तुम्हारे भीतर प्रविष्ट न हो जाए । तुम सब तरफ से परमात्मा-प्रूफ हो ।

उतना ही शास्त्र का प्रयोजन है कि तुम अपने दीवाल-दरवाजे हटा दो ।

परमात्मा तुम्हारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, स्वरूप-सिद्ध अधिकार है । गँवाया है तो तुमने अपनी होशियारी से—पाओगे, इस होशियारी को छोड़ देने से ।

इसलिए सारा सूत्र नकारात्मक है ।

किसी चिकित्सक से पूछो, ‘चिकित्सा-शास्त्र क्या है?’ तो वह कहेगा, ‘बीमारी का इलाज ।’ उससे तुम पूछो तो हजारों बीमारियों को व्याख्या कर देगा, लेकिन अगर स्वास्थ्य की व्याख्या पूछो तो न कर पाएगा ।

स्वास्थ्य की कोई व्याख्या ही नहीं है । स्वास्थ्य तो जब होता है तब होता है—अव्याख्य है ।

फिर चिकित्सक क्या करता है? वह केवल बीमारी का अवरोध हटाता है ।

तुम्हें टी बी पकड़ जाए तो चिकित्सक स्वास्थ्य थोड़े ही लाता है—उसकी किसी दवा की गोली में स्वास्थ्य नहीं छिपा है—सिर्फ टी बी को अलग करता है । टी बी अलग हो जाए तो स्वास्थ्य तो अपने से घटता है ।

स्वास्थ्य तो तुम्हारा स्वभाव है । इसलिए तो उसे हम ‘स्वास्थ्य’ कहते हैं । वह ‘स्व’ का भाग है । वह तुम्हारी स्वयं की सत्ता है ।

‘स्व’ में स्थित हो जाना स्वास्थ्य की परिभाषा है ।

बीमारी तुम्हें अपने से बाहर खीच रही है कहीं । चिकित्सक तुम्हें बीमारी

से छुड़ा देता है, बस । स्वास्थ्य कोई चिकित्सक नहीं दे सकता – स्वास्थ्य तो तुम लेकर ही आये हो ।

ठीक शास्त्र का यही उपयोग है कि बीमारी से छुड़ा दे ।

प्रेम तो अपने से घटता है ।

भक्ति तो अपने से आती है ।

परमात्मा अपने से उत्तरता है ।

लेकिन कोई अवरोध न रह जाए ।

तुम एक बीज बोते हो बगीचे में बीज बोओ और उसके ऊपर एक पत्थर रख दो, बीज में सभावना थी, वह सभावना तुम नहीं ला सकते, वह सभावना थी ही, बीज फूटता अपने से, तुम जल दे सकते थे, सहारा बन राकते थे, तुम पत्थर हटा सकते थे, अवरोध अलग कर सकते थे बीज वृक्ष बनता, फूल आते, फल लगते, छाया होती, सौंदर्य का जन्म होता – वह सब अपने से होता ।

तुम कोई बीज से वृक्ष को खीच नहीं सकते । तुम कोई जबरदस्ती फूलों को खिला नहीं सकते । तुम जबरदस्ती वृक्ष से फलों को निकाल नहीं सकते । लेकिन तुम चाहो तो रोक सकते हो ।

मनुष्य की सामर्थ्य इतनी ही है कि वह जो हो सकता है, उसे रोक सकता है, जो होना चाहिए, उसे कर नहीं सकता ।

मनुष्य भटक सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है, बीमार हो सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है, अधिकार में रह सकता है – यह उसकी सामर्थ्य है । गलत होने की सामर्थ्य मनुष्य में है । ठीक बस वह गलत होने की सामर्थ्य को छोड़ दे, कि ठीक अपने से हो हो जाता है ।

ठीक होना प्रकृतिदत्त, स्वामाविक है, गलत होना चेष्टा से है ।

प्रयत्न से हम पाप करते हैं, जो निष्प्रयत्न होता है, वह पुण्य है ।

प्रयास से हम ससार बनाते हैं, जो बिना प्रयास के, प्रसाद से मिलता है, वही परमात्मा है ।

आज इतना ही ।

सातवाँ प्रवालन

विनायक १७ अमदवाडी, १९७६, श्री राजनीति आख्यान पूळा

सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्याधिकतरा ॥ २५ ॥

फलस्तपत्यात् ॥ २६ ॥

ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्याद् दैव्यप्रियत्याप्त्वा ॥ २७ ॥

तत्या ज्ञानमेव साधन मित्येके ॥ २८ ॥

अन्योन्याभ्युत्पत्यमित्यव्ये ॥ २९ ॥

स्वय फलस्तपतेति ब्रह्मकुमारी ॥ ३० ॥

राजगृह भोजगादिषु तथैष दृष्टत्यात् ॥ ३१ ॥

व तेब राजपरितोष क्षुधाशानितर्वा ॥ ३२ ॥

तस्मात्सैव ग्राहया मुमुक्षुभि ॥ ३३ ॥

योग और भोग का संगीत है भक्ति

भक्ति का सार-सूत्र है प्रसाद ।

ज्ञान, कर्म, योग, उन सबका सार-सूत्र है प्रयास ।

ज्ञान, कर्म, योग मनुष्य को चेष्टा पर निर्भर है, भक्ति परमात्मा के प्रसाद पर । स्वाभावित भक्ति अतुलनीय है । न कर्म छू सकता उस ऊँचाई को, न ज्ञान, न योग ।

मनुष्य का प्रयास ऊँचा भी जाए तो कितना? मनुष्य करेगा भी तो कितना? मनुष्य का किया हुआ मनुष्य से बड़ा नहीं हो सकता । मनुष्य जो भी करेगा, उस पर मनुष्य की छाप रहेगी । मनुष्य जो भी करेगा उस पर मनुष्य की सीमा का बधन रहेगा ।

भक्ति मनुष्य में भरोसा नहीं करती, भक्ति परमात्मा में भरोसा करती है ।

एक बहुत अनूठा भक्त हुआ बायजीद बिस्तामी । कहा है, उसने तीस साल तक निरतर परमात्मा को खोजने के बाद, एक दिन सोचा तो दिखायी पड़ा 'मेरे खोजे वह कैसे मिलेगा, जब तक वही मुझे न खोजता हो?' तब खोज छोड़ दी, और खोज छोड़ कर ही उसे पा लिया ।

तीस साल या तीस जन्मों की खोज से भी उसे पाया नहीं जा सकता, क्योंकि खोजेंगे तो हम - अधे, अधकार में डूबे, पापग्रस्त, सीमा में बैधे । भूल-चूको का छेर हूँ हम । हम ही तो खोजेंगे उसे । रोशनी कहाँ है हमारे पास खोजने को? हमारे पास हाथ कहाँ जो उसे टटोलें? कहाँ से लाएं हम वह दिल जो उसे पहचानें?

खोजी एक दिन पाता है कि नहीं, मेरे खोजे तू न मिलेगा, जब तक कि तू ही मुझे न खोजता हो ।

और बायजीद ने कहा है जब उसे पा लिया तो जाना कि यह भी मेरी भ्राति थी कि मैं उसे खोज रहा था । वही मुझे खोज रहा था ।

जब तक परमात्मा ने ही तुम्हें खोजना शुरू न कर दिया हो, तुम्हारे मन में उसे खोजने की बात ही न उठेगी । यह बात बड़ी विरोधाभासी लगेगी, लेकिन बड़ा गहन सत्य है ।

परमात्मा को केवल वे ही लोग खोजने निकलते हैं जिनको परमात्मा ने खोजना शुरू कर दिया । जो उसके द्वारा चुन ही लिये गये हैं, वे ही केवल उसे चुनते हैं । जो किसी भाँति उनके हृदय में आ ही गया है, वे ही उसकी प्रार्थना में तत्पर होते हैं ।

तुम्हारे भीतर से वही उसको खोजता है । सारा खेल उसका है । तुम जहाँ भी इस खेल में कर्ता बन जाते हो, वही वाधा खड़ी हो जाती है, वहीं दरवाजे बद हो जाते हैं ।

तुम खाली रहो, उसे ही खोजने दो तुम्हारे भीतर से, तो तत्क्षण इस क्षण भी उस महा क्रन्ति का आविर्भाव हो सकता है ।

भक्ति को समझने में, इस बात को जितना गहराई से समझ लो, उतना उपयोगी होगा भक्ति परमात्मा को खोज नहीं है, भक्ति परमात्मा के द्वारा मनुष्य की खोज है ।

मनुष्य हार कर समर्पण कर देता है, थक कर समर्पण कर देता है, पराजित हो के झुक जाता है – कहता है ‘अब तू ही उठा तो उठा । अब तू ही सम्हाल तो सम्हाल । अब अपने से सम्हाला नहीं जाता । जो मैं कर सकता था, किया, जो मैं हो सकता था, हुआ – लेकिन मेरे किये कुछ भी नहीं हो पाता । मेरा किया मब अनकिया हो जाता है । जितना सम्हालता हूँ उतना ही गिरता हूँ । जितनी कोशिश करता हूँ कि ठीक राह पर आ जाऊँ, उतना ही भटकता हूँ । अब तू ही चला । जन्म तेरा है, जीवन तेरा है, मौत तेरी – प्रार्थना मेरी कैसे होगी ?’

पहला सूत्र है आज ‘वह भक्ति, वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर है ।’

श्रेष्ठता यही है कि वह अनत के द्वारा तुम्हारी खोज है ।

गगा सागर की तरफ जाती है, तो ज्ञान, तो योग, तो कर्म जब सागर गगा की तरफ आता है, तो भक्ति ।

भक्ति ऐसे है जैसे छोटा बच्चा पुकारता है, रोता है, और माँ दौड़ी चली आती है ।

भक्ति बस तुम्हारा रुदन है ।

तुम्हारे हृदय से उठी आह है ।

भक्ति तुम्हारी जीवन की सारी खोज की व्यर्थता का निवेदन है ।

भक्ति तुम्हारे आँसुओं की अभिव्यक्ति है । तुम कहीं जाते नहीं, तुम जहाँ हो वही ठिक के रह जाते हो । एक सत्य तुम्हारी समझ में आ जाता है कि तुम ही बस गलत हो, तुम गलत करते हो, ऐसा नहीं ।

कर्मयोग कहता है तुम गलत करते हो, ठोक करो तो पहुँच जाओगे ।

ज्ञानयोग कहता है तुम गलत जानते हो, ठीक जान लो, पहुँच जाओगे ।

योगशास्त्र कहता है तुम्हें विद्वियां पता नहीं हैं, मार्ग पता नहीं है, विद्वियां सीख लो, मार्ग सीख लो, तकनीक की बात है, पहुँच जाओगे ।

भक्ति कहती है तुम ही गलत हो । न ज्ञान से पहुँचोगे, न कर्म से पहुँचोगे, न योग से पहुँचोगे । तुम तुमसे छूट जाओ, तो पहुँचना हो जाएगा । तुम न बचो तो पहुँचना हो जाएगा ।

पहले तुम अज्ञान में थे, फिर तुम ज्ञान में भी रहोगे । फक्त बहुत न पड़ेगा । फक्त तो पड़ेगा, बहुत न पड़ेगा । फक्त ऐसा ही होगा कि जजीरे लोहे की थीं, उन पे तुम सोना मढ़ लोगे । कारागृह कुरुप था, दुर्गंधियुक्त था, तुम सुगंधे छिड़क लोगे, रग-रोगन कर लोगे, कारागृह को सजा लोगे ।

अज्ञानी का अहकार अज्ञान से भरा होगा, ज्ञानी का अहकार ज्ञान से भरा होगा — अहकार थोड़े ही मिटेगा । और कई बार ऐसा हो जाता है कि अज्ञानी तो पहुँच जाने हैं, ज्ञानी भटक जाते हैं । क्योंकि अज्ञानी कम-से-कम अपनी निरीहता को तो अनुभव कर सकता है । इस अनुभव में कि मैं अज्ञानी हूँ, अहकार के गिरने की सभावना है । लेकिन इस अनुभव में कि मैंने जान लिया, फिर तो अहकार को पत्थरों की बुनियाद मिल गयी ।

अज्ञानी का अहकार रेत पर खड़ा हुआ भवन है, कभी भी शिर जाएगा, जिद्दी में बड़ी आँधियाँ हैं, कोई भी आँधी उखाड़ देगी । ज्ञानी का भवन चट्टानों पे खड़ा है, आँधियों से टक्कर लेगा, आँधियाँ आँँगी, हार कर चली जाएँगी, भवन अपनी जगह खड़ा रहेगा ।

जिसने गलत किया है, जो पापी है, वह तो कभी रोता भी है अपने पाप के अधकार मे पड़ा हुआ, कभी कराहता भी है, कभी एक गहन पीड़ा उठती है मन में कि यह मैं क्या कर रहा हूँ, कभी अपने किये पे पछताता भी है — लेकिन जिसने पुण्य किया है, जिसने भले कर्म किये हैं, मदिर बनवाये हैं, मस्जिदें बनवायी हैं, धर्मसालाएँ खड़ी की हैं, लोगों की सेवा की है, अस्पताल खोले हैं, वह तो कभी पछताता भी नहीं ।

और तुम जब तक पछताओगे न, कैसे परमात्मा तुम मे उतर पाएगा ?

जिसने पुण्य किया है, वह तो अकड़ के चलता है, वह तो परमात्मा पर दावेदार है, वह तो यह कहता है, 'अभी तक मिले क्यों नहीं ? अब और क्या चाहते हो ? सब तो किया ।'

पुण्यात्मा के मन्त्र में शिक्षायत होयी, पश्चात्ताप नहीं । वह कहेगा, 'अन्याय हो रहा है । अब और क्या चाहिए ? अब और क्या मार्गते हो ? यह क्या जबर-दस्ती है ? सब तो किया, जो शास्त्रों ने कहा, जो नीतिविदों ने बताया । कोई

पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, कोई बेर्इमानी नहीं की, सब ब्रतों का पालन किया — अब और क्या चाहिए ? '

ज्ञानी में तो अकड़ होगी । पुण्यात्मा में अकड़ होगी । अकड़ होगी कि सब किया, अब मिलना चाहिए । क्योंकि ज्ञानी सोचता है, ज्ञान का फल है परमात्मा । पुण्यात्मा सोचता है, पुण्य का फल है परमात्मा, शुभ कर्म का फल है परमात्मा । योगी कहता है, ' कितने आसन किये, जीवन लगा दिया, प्राणायाम, आसन, प्रत्याहार, सब तरह से शरीर को शुद्ध किया । पत्थर की मूर्ति की तरह बैठ कर कितने लम्बे दिनों तक ध्यान किया । अब और क्या चाहिए ? '

जिसने कुछ किया है, वह हमेशा शिकायत से भरा होगा, पश्चाताप कहाँ । पश्चाताप किस बात का ।

जीसस जगह-जगह अपने भक्तों को कहते हैं ' रिपेंट ! पश्चाताप करो । परमात्मा का राज्य बिलकुल करीब है । '

पश्चाताप करो ।

लेकिन जिसने बुरा नहीं किया वह पश्चाताप कैसे करे ? जिसने योग साधा, वह पश्चाताप क्यों करें ? जिसने पुण्य किया, पश्चाताप की जगह कहाँ बच्ची ? जब पुण्य ही कर लिया, तो पश्चाताप क्या अर्थ रखता है ? पश्चाताप तो पापी के लिए है, अज्ञानी के लिए है, अयोगी के लिए है, योगी के लिए तो नहीं है ।

लेकिन जब तक तुम पश्चाताप न करो, परमात्मा नहीं । तो फिर पश्चाताप का क्या अर्थ हुआ ? पश्चाताप का एक ही अर्थ है कि अब तक मैं कर्ता था, यही पश्चाताप है । इसका पश्चाताप करता हूँ कि अब तक मैंने सोचा कि मैं कर्ता हूँ । कर्ता तू है । यही बुनियादी भूल हो गयी । कभी सोचा, पाप किया, कभी सोचा, पुण्य किया — लेकिन कर्ता मैं ही रहा, अहकार मेरा ही सजा, सँवारा मैंने अपने ही अहकार को, मदिर तेरे बनाये, लेकिन प्रतिमा मैंने अपनी ही स्थापित की, शुका तेरी प्रतिमा के सामने, लेकिन वह प्रतिमा मेरे ही हाथ का निर्माण थी ।

तुम फिर से गौर से मदिरों में जा के देखना, जिन प्रतिमाओं के सामने तुम झुके हो, वहाँ प्रतिमाएँ हैं या दर्पण हैं ? दर्पण में अपनी ही तस्वीर देख के तुम झुकते हो ।

इसलिए हिन्दू वहाँ झुकता है जहाँ हिन्दू की प्रतिमा है, क्योंकि जब तक हिन्दू की तस्वीर न दिखायी पड़े, वह झुकेगा नहीं । ईसाई वहाँ झुकता है जहाँ ईसाई की प्रतिमा है ।

कथा है कि तुलसीदास कृष्ण के मदिर में गये तो झुके नहीं, क्योंकि राम का भक्त और कृष्ण के मदिर में झुक जाए । कहा कि मैं न झुकूँगा, जब तक धनुष-बाण हाथ में ले के खड़े न होओ ।

तुम परमात्मा के सामने झुकते हो या अपनी धारणाओं के सामने ? इसका तो यह अर्थ हुआ कि पहले परमात्मा झुके, धनुष-बाण हाथ ले, तुम्हारी माने, फिर तुम झुकोगे । तो तुम अपनी मान्यता के सामने झुकते हो ।

तुम कभी किसी परमात्मा के सामने झुके हो ?

जब तक 'तुम' हो, झुक ही न सकोगे । तुम्हारा होना ही तो झुकना न होने देगा ।

पश्चाताप किस बात का ?

पश्चाताप इस बात का कि अब तक मैंने कहा, 'मैं हूँ', आज कहता हूँ, 'नहीं, मैं नहीं हूँ, तू ही है ।' अब तक मैंने प्रयास किये तुझे पाने के और मेरे प्रयासों से मैं तुझे नहीं पा सका । मेरे प्रयासों से ज्ञान मिल गया होगा, पुण्य मिल गया होगा, चरित्र मिल गया होगा – लेकिन तू नहीं मिला ।'

प्रयास से मिलता ही नहीं । प्रयास से मिल जाए, वह भी कोई परमात्मा है ? क्योंकि तुम्हारे प्रयास से जो मिलेगा, वह तुम्हारे प्रयास से छोटा होगा । प्रसाद से मिलता है ।

इसलिए नारद अनूठी बात कहते हैं, बड़ी गहरी बात कहते हैं 'कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर है वह प्रेमरूपा भक्ति ।'

कोई भक्ति का मुकाबला नहीं है । भक्ति कोई करने की बात नहीं है । शब्द से ध्याति होती है, 'भक्ति' से भी लगाना है कि कुछ करना पड़ेगा, भक्ति मे किया है, कुछ करना, जैसे योग मे कुछ करना, कर्म मे कुछ करना, ज्ञान मे कुछ करना, भक्ति में भी कुछ करना पड़ेगा । वही भूल हो जाती है ।

भक्ति तो इस बात का अनुभव है कि मेरे किये कुछ होना ही नहीं । भक्ति तो अपने कृत्य की व्यर्थता का बोध है, पश्चाताप है । उस पश्चाताप में ही तुम गिर जाते हो, झुक जाते हो । ध्यान रखना, मैं नहीं कहता हूँ कि तुम झुकते हो – झुक जाते हो ।

क्या करोगे ? कैसे खड़े रहोगे ? जब सब किया अनकिया सिद्ध होता है, जब अपने पैर जहाँ भी ले जाते हैं, वही ससार मिलता है, और जब अपनी आँख जो भी दिखाती है वही पदार्थ सिद्ध होता है, और जिसकी भी तुम प्रार्थना करते हो वही प्रार्थना अद्वितीय में कामना सिद्ध होती है, वासना सिद्ध होती है, तो फिर क्या करोगे ? ठहर जाते हो । खड़े होने की भी जगह नहीं रह जाती । खड़े होने का बल भी नहीं रह जाता । गिर जाते हो ।

अगर अपनी तरफ से गिरे, तो यह भी योग हुआ । अगर पाया कि गिर रहे हो, जैसे गिरना घट रहा है, झुकना घट रहा है, तो भक्ति हुई ।

भाषा के साथ अड़चन है, भक्ति भी कर्म बन जाती है ।

भक्ति कर्म नहीं है। इसलिए भक्ति की परम क्षेष्ठता है।

‘क्योंकि भक्ति फलरूप है।’

इसे समझो। यह बड़ा वैज्ञानिक सूत्र है।

पानी को भाप बनाना हो तो अचं पर रखो। कारण मौजूद कर दो, कार्य घटेगा। जब सौ डिग्री गरमी हो जाएगी, पानी भाप बनने लगेगा। पानी यह नहीं कह सकता कि आज भाप बनने की मशा नहीं है, कि आज थोड़ी सर्दी ज्यादा है आज नहीं बनते, या आज मन उदास है या कुछ .। पानी कुछ कर नहीं सकता।

कारण उपस्थित हो गया तो कार्य होगा।

बीज बो दो, अकुर निकलेगे।

ज्ञान, कर्म और योग की मान्यता यह है कि परमात्मा भी ऐसे ही मिलता है, कारण मौजूद कर दो, कार्य हो के रहेगा।

योगी कहता है, इतने नियम पालन कर लो, यह अष्टाग योग है, ये आठ अग हैं, ये पूरे कर लो – परमात्मा को मिलना ही पड़ेगा, जैसे सौ डिग्री पे पानी गरम होता है, ऐसे अष्टाग योग पूरा होने पर परमात्मा मिलता है।

कर्मयोगी कहता है, इतने-इतने पुण्य कर लो, पाँच महान्नत हैं, इनका पालन कर लो अहिंसा है, अचौर्य है, अस्तेय है, अपारिग्रह है, सत्य है, इनका पालन कर लो। अगर पालन पूरा हो गया तो परमात्मा वैसे ही आ जाएगा जैसे बीज बोया, पानी डाला, धूप-रोशनी दी, अकुर निकल आया। तो परमात्मा फल है और तुम्हारा कृत्य –ज्ञान, कर्म, योग –बीज है। तुम जो करते हो वह कारण है और परमात्मा कार्य है।

भक्त ऐसा नहीं देखते। भक्त कहते हैं, तुम कुछ भी करो, परमात्मा परम स्वतंत्रता है, तुम्हारे कृत्य से बैंधा हुआ नहीं है। तुम्हारे अष्टाग योग के पूरे हो जाने से नहीं आ जाएगा। और अगर तुमने अष्टाग योग पर ही भरोसा किया तो तुम अकड़े बैठे रह जाओगे, परमात्मा से कोई सम्बंध न हो पाएगा।

परमात्मा कार्य-कारण जगत का हिम्सा नहीं है।

परमात्मा का अर्थ है ‘समग्र’। और सब चीजों के कारण है, ‘समग्र’ का कोई कारण नहीं हो सकता। और सब चीजों के आधार है, समग्र का कोई आधार नहीं है, समग्र निराधार है।

बीज से वृक्ष होता है। वृक्ष मे फिर बीज लग जाते हैं। फिर बीजों मे वृक्ष आ जाते हैं। सारा जगत शृखला है – कार्य-कारण, कारण-कार्य – बैंधा हुआ चलता जाता है। इस सारी शृखला का कोई कारण नहीं है। इस सारी शृखला के समस्त रूप का नाम परमात्मा है।

तुम पृथ्वी पे टिके हो, पृथ्वी सूरज के आकर्षण पे टिकी है, सूरज किसी

और महासूर्य के आकर्षण पे टिका होगा — लेकिन सारा अस्तित्व कहाँ टिका है ? सारा अस्तित्व कही भी नहीं टिक सकता, क्योंकि इसके बाहर कुछ भी नहीं है जिस पे टिक जाए । तो सारा अस्तित्व तो निराधार है ।

तुम एक माँ और पिता के बीजो के मिलने से पैदा हुए । वे भी किन्हीं के बीजो के मिलने से पैदा हुए । और उनके माता-पिता भी इसी तरह । लेकिन परमात्मा का कोई पिता नहीं है । 'समग्र' के बाहर कुछ भी नहीं है, सब कुछ उसके भीतर है ।

तो भक्त कहते हैं, परमात्मा को पाने की यह बात ठीक नहीं । यह तुम सारा को पाने के दण का ही उपाय परमात्मा के लिए कर रहे हो ।

तो भक्त बीजरूपा नहीं है, फलरूपा है । भक्ति कोई कारण नहीं है, कार्य है । भक्ति प्रारम्भ नहीं है, अत है — फलरूपा है । तुम्हे कुछ करना नहीं है — फल तुम्हे मिलता है । तुम्हारे करने से फल पैदा नहीं होता — प्रसादरूप होता है । (तुम जब तैयार होते हो, अभीप्सा से भरे होते हो, धैर्य से तुम्हारे प्राण आकाश की तरफ देखते होते हो, और तुम्हारी असहाय अवस्था पूर्ण हो गयी होती है, तुम बिल-कुल खाली होते हो — तुम्हारे खालीपन मे भक्ति उत्तरती है, भगवान उत्तरता है ।)

ध्यान रखना भक्त यह कहता है कि वह तुम्हारे किसी कारण से नहीं उत्तरना, वह अपनी अनुकूपा से उत्तरता है, वह अपने प्रसाद से उत्तरता है, वह उत्तरना चाहता था, इसलिए उत्तरता है । इसलिए भक्त शिकायत नहीं कर सकता । न उत्तरे तो भक्त यह नहीं कह सकता कि 'मैंने सारी व्यवस्था पूरी कर दी है, तुम आये क्यों नहीं ?' दावा नहीं कर सकता । कभी ऐसी बड़ी भक्ति के जीवन मे नहीं आती जब वह यह कह दे कि मेरी कोई शिकायत है । शिकायत का तो अर्थ यह हुआ कि 'मैंने सौ डिग्री पानी गरम कर दिया है, पानी भाप क्यों नहीं बन रहा है ? मैंने अपनी तरफ से सब पूरा कर दिया, अब अन्याय हो रहा है ।'

इसे थोड़ा ख्याल मे लेना ।

जिन लोगो ने कर्म, ज्ञान और योग पर बहुत जोर दिया, धीरे-धीरे उन्होंने परमात्मा की बात ही छोड़ दी, क्योंकि कोई जरूरत ही नहीं रह जाती । महाबीर कर्म का भरोसा करते हैं, तो परमात्मा को इनकार कर दिया 'कोई जरूरत नहीं है, क्या जरूरत है ? सौ डिग्री पे जब पानी गरम होता है तो पानी भाप बनता है, इसमे किसी परमात्मा को बीच मे लेने की ज़रूरत क्या है ? प्रसाद का सवाल कहाँ है ? तुम कार्यं पूरा कर दो, परिणाम आ जाएगा । तुम बीज बो दो, फल लग जाएँगे । परमात्मा को बीच मे लेने की जगह कहाँ है ? किसी परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है ।'

पतंजलि ने परमात्मा को भी एक साधन बना लिया, साध्य नहीं ।

आनियो ने, योगियो ने, पुण्यकर्ताओं ने परमात्मा को छोड़ ही दिया, ज़रूरत ही न मालूम पड़ी । वह परिकल्पना व्यर्थ है । उसके बिना ही हो जाता है । हम से ही हो जाता है, उसकी कोई ज़रूरत नहीं है ।

भक्ति का शास्त्र कहता है हम से कुछ भी नहीं होता, हम ही बाधा हैं । जहाँ हम खो जाते हैं, वही होना शूरु होता है ।

‘वह भक्ति फलरूपा है ।’

बीज नहीं है उसका कोई जो तुम दो दो । कोई कारण नहीं है जो तुम तैयार कर लो, प्रयास कर लो, प्रयत्न कर लो । नहीं, तुम्हारे हाथ में कोई उपाय नहीं है कि तुम उसे खोच लो । (तुम्हारा निरुपाय हो जाना ही, तुम्हारा असहाय ही जाना ही, तुम्हारा पछताना, तुम्हारा छाती पीट के रोना, तुम्हारा आँसुओं में जार-जार वह जाना, तुम्हें एक प्रतीति हो जाए कि मैं ही अब तक उपद्रव का कारण था, मेरे प्रयास ही अब तक उपद्रव के कारण थे – फिर फल, फल ही उपलब्ध होता है ।)

ज्ञान साधन है, भक्ति साध्य है ।

ज्ञान मार्ग है, भक्ति मजिल है ।

ज्ञानी को चलना पड़ता है, योगी को चलना पड़ता है, भक्त सिर्फ पहुँचता है, चलता नहीं ।

भक्त सबसे बड़ा चमत्कार है ।

इसलिए अगर महावीर को समझना हो, कोई अड़चन नहीं है । महावीर को समझना हो तो वैज्ञानिक व्यवस्था है । पतजलि को समझना हो तो कोई दुर्बोध बात नहीं है, दुर्गम बात नहीं है, सीधा-साधा गणित है । लेकिन मीरा बेबूझ है । चंतन्य को पकड़ पाना सम्भव नहीं है । भक्त की कोई कथा साफ नहीं हो पाती ।

तुम योगी से पूछ सकते हो, ‘तुमने क्या किया? कैसे परमात्मा पाया?’ तो वह अपनी कथा बता सकता है ‘यह-यह मैंने किया । इतने उपवास किये । इतना प्राणायाम किया । इस तरह अष्टाग योग साधे । इस तरह समाधि तक पहुँचा ।’ एक-एक कदम साफ है । सीढ़ी-दर-सीढ़ी उसकी यात्रा है । उसके रास्ते पर मील के पत्थर लगे हैं । रास्ता है । वह कुछ कह सकता है ।

मीरा से पूछो, ‘कैसे पाया,’ मीरा ठिकी खड़ी रह जाएगी । वह कहेगी, ‘मैंने पाया, यह बात ही ठीक नहीं है – भिला ।’

पाने वाले की कोई कथा नहीं है । पाने वाला शून्य है । सारी कथा परमात्मा की है । सब कथा भगवत्कथा है । भक्त की कोई कथा नहीं है ।

भक्त बेबूझ है ।

अगर मीरा और महावीर सामने खड़े हो तो महावीर से तो तुम राजी हो

जाकोये — तुम कहींगे, 'इन्होंने इतना किया, फिर आया । समझ में आता है । मीरा ने क्या किया ? कौन-सी साधना की मीरा ने ? कौन-से साधन किये ? कौन सा योग किया ? कुछ भी तो नहीं किया ।'

अचानक पुच्छल तारे की तरह प्रगट होती है । अनायास ! अकारण ! फलरूपा है । एक दिन तक पता नहीं था, एक दिन अचानक उसका नृत्य शुरू हो जाता है, उसके धूंधर बज उठते हैं । एक क्षण पहले तक किसी को खबर न थी, वर के लोगों को भी खबर न थी, पति को भी खबर न थी ।

इसलिए भक्त पागल लगता है, क्योंकि गणित में बैठता नहीं ।

अनायास है, अकारण है । एक दिन अचानक मीरा नाच उठी । किसी ने न जाना, कैसे यह नाच पैदा हुआ ! इस नाच के पीछे कोई कार्य-कारण की शृंखला नहीं है । यह पुच्छल तारे की तरह प्रगट होता है । इसकी कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती और अतीत में लौट कर इसका कोई निर्वंचन नहीं हो सकता — समय की धारा में, समय के बाहर से कोई उत्तरता है । फलरूपा है ।

तुम वृक्ष के नीचे विश्राम करते थे और फल गिर गया तुम्हारे ऊपर, न तुमने बीज बोये थे, न तुमने वृक्ष मेंभाला था, न तुम्हें पता है कि वृक्ष है — तुम्हें बस फल मिल गया ।

एक दिन मीरा नाच उठती है । इस नाच के आगे-पीछे कोई हिसाब नहीं है । इसलिए मीरा को समझना बिलकुल ही कठिन हो जाता है । समझ के लिए कार्य-कारण की शृंखला का पता होना चाहिए ।

महावीर ने बारह वर्ष तपश्चर्या की । बुद्ध ने छह वर्ष तपश्चर्या की और जन्मो-जन्मों तक खोज की । मीरा ने क्या किया ?

नारद का यह सूत्र बड़ा अद्भुत है 'भक्ति फलरूपा है ।'

साधन नहीं है भक्ति, साध्य है । यहाँ मार्ग है ही नहीं, बस मजिल है । आँख खुलने की बात है ।

'लायी ह्यात आये, कजा ले चली चले

अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले ।'

जिसको यह समझ में आ गया कि लाया परमात्मा, आये, ले चला, चले, श्वास चलायी, चली, श्वास रोकी, रुक गयी ।

'न अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले ।'

जिसने ऐसा अनुभव कर लिया .. और तुम जरा गोर से देखो तो अनुभव करने में देर न लगेगी । किसी ने पूछा था तुमसे जन्म के पहले कि जन्म लेना चाहते हो ?

'लायी ह्यात आये .. ।'

किसी ने पूछा था, कहाँ जन्म लेना चाहते हो ? स्त्री होना चाहते हो, पुरुष ? गोरे होना चाहते हो, काले ? हिन्दू होना चाहते हो, ईसाई ? किसी ने तो न पूछा था । अकारण हो तुम । तुम्हारे होने के पीछे तुम्हारी मरणा तो नहीं है, तुम्हारी आकौंका तो नहीं है । इवास चलती है जब तक चलती है, जिस दिन नहीं चलेगी, क्या करोगे तुम ? गयी इवास बाहर और न लौटी तो क्या करोगे तुम ? गयी तो गयी ।

‘लायी हयात आये, कजा ले चली चले

अपनी खुशी से आये न अपनी खुशी चले ।’

ऐसा जिस दिन तुम्हें जीवन का सार दिखायी पड़ जाएगा, उस दिन भक्ति की शुरुआत हुई, उस दिन तुम करीब आने लगे प्रसाद के । और जिस दिन ऐसा अनुभव तुम्हें हो जाएगा कि तुम नहीं हो, कोई और हाथ तुम्हे लाया, कोई और हाथ ने तुम्हे चलाया, कोई और ही सारी कथा को सम्भाले हुए है – उस दिन क्या बोझ, कैसी चिंता ।

‘मुझे सहल हो गयी मजिले वो हवा के रुख भी बदल गये

तेरा हाथ हाथ मे आ गया कि चिराग राह मे जल गये ।’

तुम जब तक हो तब तक अंधेरा है, तुम मिटे कि चिराग जले । तुमने जिस दिन वह आति छोड़ी कि मैं चल रहा हूँ, उसी दिन तुम पाओगे उसका हाथ सदा से तुम्हे चला रहा है, उसका हाथ तुम्हारे हाथ मे है ।

परमात्मा को हमने कभी खोया थोड़े ही है, खो देते ता फिर मिलने का कोई उपाय नहीं था । जो खो जाए वह परमात्मा नहीं है । जिसे हम खो सकें वह हमारा स्वभाव नहीं है । उसे हमने कभी खोया नहीं है, विभरण किया है, भूल गये हैं घड़ी-भर को, ज्ञान की लग गयी है, याद उतर गयी है । हाथ तो अब भी उसका हमारे हाथ में है । कुछ करना नहीं है उस हाथ को पाने को, सिर्फ अपनी आति छोड़नी है ।

भक्ति फलरूपा है ।

ज्ञान कहता है कुछ करना है, अज्ञान को मिटाना है, ज्ञान को लाना है । बड़ा उपक्रम है ।

इसलिए ज्ञानी मे अकड होती है, उसने किया है इतना, अकड स्वाभाविक है । वह कहता है, ‘तुमने क्या किया ? हम वर्षों ज्ञान इकट्ठा किये ।’

योगी वर्षों तक साधता है, इसलिए योगी की अकड स्वाभाविक है । पुण्यात्मा महात्मा हो जाता है । कितना करता है । कितनी सेवा । कितने पुण्यकर्म । अकड स्वाभाविक है । अकड में अकड नहीं हो सकती, क्योंकि भक्त की बुनियाद ही यही है कि हमने किया ही नहीं कुछ, तूने जो करवाया वही हुआ ।

भक्ति की बड़ी अनूठी दुनिया है । अलग ही उसका लोक है—गणित का नहीं, विज्ञान का नहीं, तकं का नहीं, प्रेम का, प्रार्थना का, परमात्मा का । वहाँ सभी कुछ उलटा है । वहाँ बीज के पहले फल है । वहाँ मर्ज के पहले मजिल है । वहाँ तुम्हारे करने से कुछ भी नहीं होना—तुम्हारे न करने से सब हो जाता है ।

इसलिए जिनको भी अकड़ना हो, भक्ति उनके लिए नहीं है, जिनको पिचलना हो, उनके लिए है । अकड़ना हो, योग खोजो, त्याग खोजो, व्रत-नियम खोजो । अकड़ना हो और दिखाना हो दुनिया को कि मैं कुछ हूँ तो भक्ति की राह को मूल ही जाओ, वह तुम्हारे लिए नहीं है । अभी देर है तुम्हें उस पर आने को । लेकिन अगर यह समझ में आना शुरू हो गया कि अपने किये कुछ भी न हुआ, चले बहुत, पहुँचे कही न, दौड़े बहुत, जब आँख खोली तो पाया वही खड़े हैं—जब तुम्हें ऐसी अनुभूति होने लगे, तब तुम भक्ति के लिए परिपक्व हुए ।

‘क्योंकि ईश्वर को भी अभिमान से द्वेष त्रै और दैन्य से प्रियभाव है ।’

यह सूत्र बड़ा कठिन है । इसे तुम अपनी तरह सो गे तो मुश्किल में पड़ जाओगे ईश्वर को भी अभिमान से द्वेषभाव है । अगर तुम महावीर से पूछोगे तो वे कहेंगे कि ‘ऐसा ईश्वर ही नहीं, यह ईश्वर कैसा जिसको द्वेषभाव है?’ यह तो ही ही नहीं सकता ईश्वर और द्वेषभाव । महावीर की परिभाषा में तो जब द्वेष मिट जाना है, तभी कोई ईश्वरत्व को उपलब्ध होता है ।

‘और दैन्य से प्रियभाव है ।’

तो इमका तो अर्थ हुआ कि उसके भी पक्षपात हैं ।

नहीं, अगर ऐसा देखा तो सूत्र से तुम चूँक गये । सूत्र का मतलब कुछ और है । सूत्र का सम्बद्ध ईश्वर से नहीं है—सूत्र का सम्बद्ध तुमसे है ।

ऐसा समझो कि कोई कहे कि जब वर्षा होती है तो वर्षा को गड्ढो से लगाव है, पहाड़ो और शिखरो से द्वेषभाव है, तो मतलब क्या होगा? मतलब इतना ही होगा कि जब वर्षा होती है तो गड्ढो में भरती है, पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्योंकि पहाड़ पहले से ही भरे हैं, वहाँ जगह ही नहीं है । और जगह चाहिए । गड्ढे भर जाते हैं, झीलें भर जाती हैं । गिरती है वर्षा पहाड़ो पर, उत्तर, आता है पानी गड्ढो में, झीलों में ।

इस सूत्र का इतना ही अर्थ है कि अगर तुम अभिमान से भरे हो, तो परमात्मा तुम में न उत्तर सकेगा, चाहे लाख चेष्टा करे उत्तरने की । लाख चेष्टा कर रहा है, लेकिन तुम पहले से ही भरे हो, जगह नहीं है । रिक्त स्थान चाहिए थोड़ा । तुम्हारे अहकार के कारण तुम्हारे सिंहासन पर जगह नहीं है, तुम ही बैठे हो । तुम उत्तरो सिंहासन से, तो परमात्मा बैठ सके ।

‘और दैन्य से प्रियभाव है’—इसका कुल अर्थ इतना ही है कि तुम झील-

गडडे की तरह हो जाओ, ताकि परमात्मा तुम्हे भर दे, तुम खाली हो जाओ ताकि तुम भर दिये जाओ ।

‘अब तू भी करम की इतिहा कर देना
मैंने भी खाता की इतिहा कर दी थी ।’

भक्त कहता है कि मैंने भी पाप करने में कोई कमी न की थी, मैंने भी भूल करने में कोई कमी न की थी, ‘अब तू करम की इतिहा कर देना’—अब तू भी करणा करने में कुछ कजूसी मत करना, जैसे मैंने पाप करने में कोई कजूसी न की थी ।

‘अब तू भी करम की इतिहा कर देना
मैंने भी खाता की इतिहा कर दी थी ।’

वह यह कहता है कि मैंने पाप-ही-पाप किये हैं, और पूरी तरह किये हैं, कोई कजूसी नहीं की, आखिरी तक किये हैं, इतिहा कर दी थी, पूर्णता कर दी थी—अब ध्यान रखना, अब तू भी अपनी अनुकूलता की, अपने प्रसाद की पूर्णता कर देना । तरी करणा में अब तू कमी मत करना, जैसे हमने पाप में कमी न की थी, जैसे हमने अहकार को भरने में सारी चेष्टाएँ की थी ।

मगर जो यह कह रहा है, वह गडडा हो गया । क्योंकि पाप की धोषणा तुम्हें गडडा बना देगो । पुण्य की धोषणा तुम्हे अहकार से भरती है ।

भक्त कहता है, ‘मैं पापी हूँ । मैं पात्र नहीं हूँ ।’

जानी कहता है, ‘मैं पात्र हूँ, तैयार हूँ, देर क्यों हो रही है ?’

योगी कहता है, ‘मैं शुद्ध हूँ, बिलकुल तैयार हूँ, अब तेरी तरफ से देर हो रही है ।’

भक्त कहता है, ‘मैं बिलकुल तैयार नहीं हूँ । इसलिए मेरी तरफ से तो कोई माँग हो नहीं सकती । इतना ही कह मरना हूँ कि पाप करने में मैंने कोई कमी न की थी । मुझसे बुरा आदमी खोजे न मिलेगा । जैसे मैंने पाप करने में कमी न की—क्योंकि पाप ही मैं कर सकता था, और मैं कर क्या सकता था—अब तू करणा में कमी मत करना, क्योंकि तू करणा ही कर सकता है, और तू कर क्या सकेगा ।’

भक्त अपने को अपात्र धोषित करता है—यही उसकी पात्रता है, असफल धोषित करता है—यही उसकी मफलता है, हारा हुआ धोषित करता है—यही उसकी विजय है ।

भक्त कहे, ऐसा भी जरूरी नहीं है ।

बायजीद प्रार्थना नहीं करता था जा के मस्जिद में । जीवन तो उसका अनूठा था, परमात्मा के प्रेम में पगा था । किसी ने पूछा कि प्रार्थना करने मस्जिद क्यों

नहीं जाते, तो वह रोने लगा। और उसने कहा, 'एक बार मैं एक शहर से गुजरता था और एक सम्राट के द्वार पर मैंने एक भिखारी को छोड़े देखा। सम्राट द्वार से बाहर आ रहा था, ठिकां, और उसने भिखारी से पूछा, 'क्या चाहते हो, बोलते क्यों नहीं?' उस भिखारी ने कहा, 'अगर मुझे देख कर तुम्हें दया नहीं आती तो मेरी बात सुन के भी क्या फर्क पड़ेगा!'

उसके फटे-पुराने कपड़े हैं, चीथड़े की तरह लटके हैं। शरीर छका नहीं है उन कपड़ों से। उससे तो नगा भी होता तो भी ज्यादा छका होता। पेट सिकुड़ के पीछे से लग गया है, हड्डियां निकल आयी हैं। आँखें छस गयी हैं।

तो बायजीद ने कहा, उसी दिन से मैंने प्रार्थना करनी बद कर दी। क्या कहना है उससे? उस फकीर ने कहा, उस भिखर्मगे ने कहा, अगर मुझे देख के तुझे दया नहीं आती तो बात खत्म हो गयी, अब कहना क्या है और! मेरी तरफ देख।'

बायजीद ने कहा, 'तब मैं मैंने प्रार्थना बद कर दी। वह देख ही रहा है, अब कहना क्या है उससे? अब रोना क्या है?'

'लवे-इजहार की ज़रूरत क्या

आप हूँ अपने दर्द की फरियाद।'

ज़रूरी नहीं है कि भक्त प्रार्थना करे। भक्त की तो एक भावदशा है 'आप हूँ अपनी फरियाद।' उसके तो होने में ही उसकी दीनता समायी है।

नारद अनूठी बात कहते हैं 'ईश्वर को अभिमान से द्वेष और दैन्य से प्रियभाव है।'

नहीं, ईश्वर को क्या द्वेष होगा और क्या प्रियभाव होगा! लेकिन भक्त की तरफ जब तक अहकार है तब तक परमात्मा प्रवेश नहीं कर सकता। भक्त की तरफ जब दैन्यभाव आ जाता है - 'आप हूँ अपनी फरियाद' - (जब सब तरफ हारा हुआ भक्त छड़ा हो जाता है, जब उसके पूरे जीवन की एक ही भावदशा रह जाती है कि मैं पराजित हूँ, दीन हूँ, पतित हूँ, पापी हूँ, अपात्र हूँ, मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके कारण तेरे लिए दावेदार बनूँ, मेरे पास ऐसा कुछ भी नहीं है कि तेरे लिए शिकायत करूँ - उसी क्षण, इस दैन्यभाव में परमात्मा उत्तर आता है।)

जीसस का वचन है कि जो आत्मा से दरिद्र हैं, 'पुअर इन स्पिरिट', उन्हीं को परमात्मा का मिलन होता है।

सोचें, ध्यान करे इस पर आत्मा से दरिद्र, 'पुअर इन स्पिरिट!' शरीर से दरिद्र होना बहुत आसान है। तुम घर छोड़ दो, मकान छोड़ दो, परिवार छोड़ दो, वस्त्र त्याग दो, नगन छड़े हो जाओ, लेकिन जितना तुम बाहर छोड़ते जाओगे,

उतना ही भीतर अकड़ बड़ी होती जाएगी । तो बाहर से तो तुम दरिद्र हो जाओगे, भीतर बड़ी अकड़ हो जाएगी ।

जैन मुनियों को देखो । जैन मुनि किसी को हाथ जोड़ के नमस्कार नहीं कर सकता, यह बात उसके नियम के विपरीत है । वह सिर्फ आशीर्वाद दे सकता है, नमस्कार नहीं कर सकता । क्यों? क्योंकि वह त्यागी है । त्यागी और नमस्कार करे, भोगियों को । असम्भव है । तो यह आत्मा की दरिद्रता न हुई । ऊपर से भला इसने दरिद्र का वेश पहन लिया हो, दो जोड़ी कपड़े रखता हो, कुछ और इसके पास न हो, भिक्षा माँग के जीता हो – लेकिन इसकी अकड़ तो देखो । यह भिखारी नहीं है । इसके भिखर्मगेपन में बड़ा अहकार है ‘मैंने इतना त्यागा है’ ।

तो अगर तुम जैन मुनि को नमस्कार करो तो वह आशीर्वाद दे देता है, हाथ नहीं जोड़ सकता तुम्हें ।

जीसस ने कहा आत्मा की दरिद्रता ।

तो यह तो बाहर का धन छोड़ के भीतर का धन पकड़ लिया, यह तो बाहर का अहकार छोड़ के भीतर का अहकार पकड़ लिया, यह तो पाना न हुआ, खोना हो गया उलटा, यह तो पहुँचना न हुआ, मजिल से और दूरी हो गयी ।

ध्यान रखना, पहले तुम बाहर की दुनिया में धनी होने की कोशिश करते हो, जब वहाँ हार जाते हो तो तुम भीतर की दुनिया में धनी होने की कोशिश करने लगते हो । तुम्हारा योग, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा कर्म, फिर तुम्हें भीतर धनी बनाने लगते हैं । तो तुम चूकते ही चले जाते हों ।

बाहर का धन इतना खतरनाक है तो भीतर का धन तो और भी खतरनाक होगा । बाहर की अकड़ इतनी बुरी है तो भीतर की अकड़ तो और भी बुरी होगी ।

परमात्मा तुम्हारे परम दैन्यभाव में उत्तरता है ।

इस सूत्र को गलत मत समझ लेना । परमात्मा को तुम्हारे दैन्यभाव से प्रेम नहीं है, लेकिन तुम्हारे दैन्यभाव में ही उत्तरना हो सकता है । (जब तुम भरे ही हुए हो तो उत्तरने का कोई सवाल नहीं है । जब तुम ही अकड़े हुए हो और तुम सोचते हो, तुम ही सम्भाले हुए हो सब, तुम ही कर रहे हो और तुमने उसे इनकार ही कर दिया – तुमने उसके लिए द्वारा ही बद कर लिये ।)

“जोश ‘विसाते-शोक में मर्ग है अस्ति जिदगी

बाजिए इश्क जीत ले बाजिए उम्र हार कर ।”

एक ऐसा भी पड़ाव आता है, एक ऐसा दौर है, जहाँ मौत जिदगी है और जहाँ हार जीतना है, जहाँ हमार पुराने विचार के ढाँचे बिलकुल ही उलटे हो जाते हैं ।

‘बाजिए इश्क जीत ले’ – अगर प्रेम को जीतना हो, ‘बाजिए उम्र हार

कर' – उम्र की, जीवन की, जिदगी की बाजी को हार कर प्रेम की बाजी जीती जाती है।

'दिल है तो उसी का है जिगर है, तो उसी का अपने को रहे-इश्क में बरबाद जो कर दे।'

वह जो प्रेम की राह है, वहाँ जो अपने को बर्बाद कर दे, वह उसी के पास दिल है, उसी के पास जिगर है। उसी के पास आत्मा है, जो अपने को बर्बाद कर दे।

तो तुम कही सन्यस्त मत हो जाना गणित के हिसाब से। तुम कही लोभ के ही हिसाब में त्याग मत कर देना। कही तुम्हारा सन्यास, तुम्हारा धर्म तुम्हारी होशियारी ही न हो, अगर होशियारी हुई तो तुम चूक जाओगे। क्योंकि तब तुम पात्र बनने लगोगे। और जिसके मन में यह ख्याल उठा कि मैं पात्र हूँ, वह दीन न रहा, उसने आत्मा की दरिद्रता खो दी।

दीन बनो।

मिटो।

हारे हुए जियो।

यह जीतने का वहम बहुत पाल लिया – छोड़ो यह बीमारी।

इधर तुम मिटे उधर परमात्मा तुम्हारी तरफ चला। जैसे-जैसे तुम मिटे, वैसे-वैसे वह तुम्हारी तरफ आता है। जिस दिन पूरे मिट जाते हो, अचानक पाते हो वह सदा से वहाँ था, तुम्हारी मौजूदगी के कारण दिखायी नहीं पड़ता था।

तुम्हीं हो परदा तुम्हारी आँख पर।

आँख तो देखने में समर्थ है, तुम्हारे कारण देख नहीं पाती।

दृष्टि धुधली है – तुम्हारे कारण, अधी है – तुम्हारे कारण।

तुम ज़रा आँख से हट जाओ।

निर्मल होने दो आँख को।

खाली होने दो आँख को।

शून्य होने दो आँख को।

तब परमात्मा के सिवाय और कोई भी दिखायी नहीं पड़ता है।

'भक्ति का साधन ज्ञान है, ऐसा किन्हीं आचार्यों का मत है।'

गलत है मत। आचार्यों का होगा, जिन्होने सोचा-विचारा है उनका होगा – जिन्होने जाना है उनका नहीं है।

'भक्ति का साधन ज्ञान है।' नहीं, ज्ञान से कभी कोई भक्त हुआ? जितना जानोगे उतने अभक्त होते जाओगे। ज्ञानी तो धीरे-धीरे परमात्मा को इनकार करने लगता है, हजार छंगों से इनकार करता है।

ज्ञान साधन नहीं है भक्ति का, बाधा है ।

‘ओर किन्हीं दूसरे आचार्यों का मत है कि भक्ति और ज्ञान परस्पर एक-दूसरे के आश्रित हैं ।’

वह भी गलत है ।

भक्ति बात ही और है । उसका ज्ञानने से कोई सम्बंध नहीं है, अनुभव से सम्बंध है ।

‘सनतकुमार और नारद के मत से भक्ति स्वयं फलरूपा है ।’

लेकिन नारद कहते हैं, ये दोनों बाते ठीक नहीं हैं । न तो ज्ञान भक्ति का साधन है, और न भक्ति और ज्ञान एक-दूसरे पे आश्रित है । भक्ति स्वयं फलरूपा है, ज्ञान की कोई भी ज्ञानरूपता नहीं है ।

‘राजगृह और भोजनादि मे भी ऐसा ही देखा जाता है ।’

‘न उससे (ज्ञान लेने मात्र से) राजा की प्रसन्नता होगी, न क्षुधा मिटेगी ।’

उदाहरण के लिए कहते हैं कि अगर कोई भोजन की चर्चा करे और भोजन के भव्यध में बहुत ज्ञान ले, तो भी भूख तो न मिटेगी । पाकशास्त्र को ज्ञान लेने से कोई भूख तो नहीं मिटती । तुम पाकशास्त्रों का अध्ययन करते-करते उनमे लीन हो जा सकते हो । जितने प्रकार के भोजन दुनिया मे बन सकते हैं, कभी बने हैं, या बनेगे, उन सबकी जानकारी तुम्हे हो सकती है । लेकिन उससे तुम्हारे पेट की भूख न मिटेगी । पेट की भूख तो भोजन से मिटती है ।

भक्ति भोजन है, ज्ञान नहीं ।

भक्ति स्वाद है – जीवत ।

भक्ति परमात्मा के सम्बंध में कुछ ज्ञानना नहीं है – परमात्मा का भोजन है ।

बड़ा ठीक उदाहरण लिया है ।

जीसस जब विदा होने लगे अपने शिष्यों से, मरने की घड़ी करीब आयी, सूनी लगने को हुई, तो उन्होने रोटी के टुकडे तोड़े और अपने शिष्यों के दिये, और कहा कि यह रोटी मैं हूँ, तुम रोटी नहीं खा रहे हो, मेरा भोजन कर रहे हो ।

भक्ति परमात्मा का भोजन है, परमात्मा का भोग है ।

भूख तो भोग से मिटेगी । प्यास तो जल को पियोगे तो मिटेगी, जल को कितना ही जान लो, उससे न मिटेगी ।

परमात्मा के सम्बंध में ज्ञानना परमात्मा को ज्ञानना नहीं है । परमात्मा को तो वे ही जानते हैं जो उसका भोग कर लेते हैं, जो उसे पचा लेते हैं, जिनके खून और जिनकी हड्डी में परमात्मा धूमने लगता है, जिनके रोएं-रोएं और श्वास मे

समा जाता है, जिनके होने में परमात्मा की गंध हो जाती है, जिनका होना और परमात्मा का होना भिन्न नहीं रह जाता ।

‘उसके जान लेने भाव से न तो प्रसन्नता होगी, न कृदा मिटेगी ।’

इसलिए जान से तो भक्ति का कोई भी सम्बन्ध नहीं है । जान तो है परमात्मा के सम्बन्ध में जानना, और भक्ति है परमात्मा का सीधा साक्षात् ।

‘अतएव सासार के बधनों से मुक्त होने की इच्छा रखने वालों को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए ।’

जो वस्तुत 'मुमुक्षु' है... । इस शब्द को थोड़ा समझ लें ।

कुछ लोग हैं जो केवल कुतूहली हैं, जो परमात्मा के सम्बन्ध में ऐसे ही पूछते हैं जैसे छोटे बच्चे पूछते हैं कि दुनिया को किसने बनाया । तुम कह दो, परमात्मा ने, तुम कह दो, कुछ भी, अ ब स – वे फिर नहीं करते, वे अपने भूल गये, वात खत्म हुई, खेल में लग गये । उन्होंने वस्तुत जानने के लिए पूछा ही न था – एक खुजलाहट थी, एक कुतूहल उठा था ‘किसने बनाया !’ न भी जवाब देते तो भी कुछ परेशान होने वाले न थे वे । उन्हें जवाब से कुछ लेना-देना भी न था । एक क्यूरियासिटी थी, एक कुतूहल था ।

सो मे से नब्बे लोग तो जो ईश्वर की बात करते हैं, कुतूहली होते हैं । वे कुछ जीवन दौरा पे लगाना नहीं चाहते – ऐसे ही अगर मुफ्त में कुछ जानकारी मिल जाए तो ठीक, कुछ बदलना न पड़े, कुछ करना न पड़े, कुछ होना न पड़े – ऐसे ही कुछ जानकारी मिलती हो तो क्या हर्ज है ।

कुतूहल से कोई धार्मिक नहीं होता ।

कुतूहल के बाद एक दूसरा वर्ग है जिज्ञासु का, वह जानना चाहता है, वस्तुत जानना चाहता है – लेकिन बस जानना चाहता है ।

कुतूहली तो जानने में भी बहुत उत्सुक नहीं है, ऐसे ही पूछ लिया था, सतह की बात थी, एक खयाल आ गया था । खयाल की कोई जड़े नहीं हैं उसके भीतर ।

जिज्ञासु के भीतर खयाल की जड़े हैं – ऐसे ही खयाल नहीं जा गया, खयाल कई बार आता है । ऐसे आया-नया नहीं है, स्थायी निवास हो गया है । पूछता है, प्रयोजन है, जानना चाहता है – लेकिन बस जानना चाहता है । उससे आगे नहीं जाना चाहता ।

उसके आगे मुमुक्षु है । मुमुक्षु का अर्थ है । जानना ही नहीं चाहता, जीना चाहता है । जानने से क्या होगा ? अगर ईश्वर है तो अपने को बदलना चाहता है । अगर परलोक है तो अपने जीवन में क्राति लाना चाहता है । अपने को दौरा पर लगाने को तत्पर है ।

नारद कहते हैं 'अतएव ससार के बधनों से मुक्त होने की इच्छा रखने वालों को भक्ति ही प्रहण करनी चाहिए ।'

— क्योंकि भक्ति भोजन है ।

संस्कृत का सूत्र जब भी अनुवादित किया जाता है तो कुछ-न-कुछ चूक होती हैं । हिन्दी में अनुवाद है 'अतएव ससार के बधनों से मुक्त होने की इच्छा रखने वालों को ।' संस्कृत का सूत्र केवल इतना ही कहता है 'बधनों से मुक्त होने की इच्छा रखने वालों को ।' ससार की कोई बात नहीं है — बधनों से मुक्त होने की है ।

इसे थोड़ा समझे ।

बधन समार है । स्मरण रखें बधन-मात्र ससार है । मोक्ष का भी बधन हो तो ससार हो गया । पुण्य का भी बधन हो तो ससार हो गया । कोई भी आकौंक्षा हो तो बधन पैदा होगा । अगर परमात्मा को भी पाने की आकौंक्षा हो तो बधन बनायेगी । क्योंकि जहाँ भी आकौंक्षा होगी, वही स्वतंत्रता क्षीण हो जाएगी । जब कोई आकौंक्षा नहीं रह जाती तो बधन समाप्त होते हैं । और ऐसी घड़ी तो तभी आती है जब परमात्मा से मिलन हो जाए । इसके पहले ऐसी कोई घड़ी नहीं आती ।

तो जिन्हे सब मे ही बधनों के पार जाना है, जो ऊब गये हैं जीवन की जजीरों से, जो इस जीवन के कारागृह से पीड़ित हो गये हैं, जिनकी समझ मे आ गया है कि, ये बड़ी दीवाले जीवन की घर की दीवालें नहीं हैं, ये कारागृह हैं, और जिसको हम जिदगी कहते हैं वह सिवाय बधनों के और कुछ भी नहीं — उनके लिए भक्ति ही एकमात्र उपाय है ।

'ऐ ताइरे-लाहूति ! उस रिंजक से मौत अच्छी

जिस रिंजक से आती हो परवाज में कोताही ।'

उस जिदगी से मौत अच्छी है किस जिदगी से ? — जिस जिदगी से उडान में बाधा पड़ती हो, आकाश छोटा होता हो, 'जिस रिंजक से आती हो परवाज में कोताही ' — उड़ने मे रुकावट आती हो ।

जहाँ-जहाँ रुकावट है, वहाँ-वहाँ गौर से देखना तुम अपनी ही किसी बासना को खड़ा हुआ पाओगे । जहाँ भी तुम्हारे पख अड़ते हैं, अटकते हैं, गौर से देखना वही-वही तुम पाओगे, कोई आकौंक्षा, कोई अपेक्षा, कोई बासना, कोई माँग पखो पर बधन बन गयी है ।

तुम्हारी जजीरे तुम्हारी बासनाओं की जजीरे हैं, किसी और ने ढाली नहीं, किसी और ने तुम्हे पहनाई नहीं हैं । और जिस दिन तुम्हे यह दिखायी पड़ जाए, उस दिन तुम्हारी जजीरे ऐसे ही पिघल जाती हैं जैसे तेज धूप मे बर्फ पिघल जाए,

सुबह के सूरज में ओस की बूँदे उड़ जाएँ – ऐसे ही तुम्हारी जजीरें उड़ जाती हैं ।

परमात्मा को, बिना कुछ और माँगे, बिना कुछ और चाहे, अपने को समर्पित कर देना । यह मत कहना कि मैं परमात्मा को भी चाहता हूँ । उतनी चाह भी तुम्हारे 'परवाज में कोताही' ले आएगी । तुम इतना ही कहना कि मैं अपने को परमात्मा में छोड़ने को तत्पर हूँ, माँग कुछ भी नहीं है – मिटाना है ।

क्योंकि सब माँग अहकार की माँग है । इस माँग अहकार की माँग है । तुम यह भी मत कहना कि मैं परमात्मा को चाहता हूँ, क्योंकि उतनी चाह मे भी तुम अपने को परमात्मा से ऊपर रख रहे हो, तो परमात्मा विषय-वस्तु हो गया । कभी तुम घन चाहते थे, अब परमात्मा चाहते हो – लेकिन चाहने काला बड़ा रह जाएगा । तुम इतना ही कहना कि अब बहुत चाहत करके देख ली – अब अपने को छोड़ना है, मिटाना है ।

इस मिटाने मे ही भक्त एक अपरिसीम आनंद से भर जाता है, क्योंकि उसके परवाज मे फिर कोई कोताही नहीं रह जाती, उसका पूरा आकाश उपलब्ध हो जाता है, पब्ल परिपूर्ण स्वतंत्रता से उड़ने लगते हैं । और इस मिटाने में ही एक ऐसी बेहोशी उसे थेर लेनी है, जिसे बेहोशी कहना भी ठीक नहीं – जिसमें बड़ा गहरा होश है, और एक ऐसा होश उस पे आ जाता है, जिसे होश कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि उसकी आँखों में बड़ी बेहोशी है, जैसे वह शराब पिये हो, जैसे अभी-अभी मधुशाला से लौटा हो ।

और जब तक तुम्हारे लिए मदिर मधुशाला नहीं बन जाता और जब तक प्रार्थना तुम्हारे लिए इतना गहन आत्म-विस्मरण नहीं बन जाती कि तुम उसमें छूट ही जाओ, तब तक तुम जो भी कर रहे हो, वह कुछ और होगा, भक्ति नहीं ।

‘मैं मयकदे की राह से हो कर निकल गया

बर्ना सफर ह्यात का काफी तबील था ।’

जिदगी का रास्ता बहुत कठिन है । अगर मयकदे की राह से हो कर निकल गये, तब बात और । अगर जीवन की मधुशाला से गुज़र गये तो बात और । वही परमात्मा है । अगर उसी मस्ती को थोड़ा चख लिया, अगर थोड़ा स्वाद पा लिया परमात्मा का, छगमगाने लगे पैर उसके आनंद में, नाच ला गया – तो ही, अन्यथा जिदगी का रास्ता बहुत कठिन है, कॉटे-ही-कॉटे है ।

फूल तो तभी बिलते हैं जब तुम मिटाना शुरू होते हो, अन्यथा दुर्गंध-ही-दुर्गंध है । सुगंध तो तभी आती है जब तुम कपूर की तरह शून्य में खो जाते हो ।

‘मस्तिष्ठ में बुलाते हैं हमें जाहिदे-नाकहम

होता अगर कुछ होश तो मयखाने न जाते ।’

— विश्वकृत हमें भद्र में बुला रहे हैं, मस्तिष्ठद में बुला रहे हैं, अगर कुछ थोड़ा होश होता तो मयखाने ही चले जाते ।

भक्त को न कोई भद्र में बचता, न कोई मस्तिष्ठद बचती । वह जहाँ है वही उसकी मधुशाला है । वह जहाँ है, वही उसका परमात्मा है ।

तुम्हारे मिट जाने में, तुम्हारी लीनता में, तुम्हारी तल्लीनता में — परमात्मा का आविभाव है ।

इसलिए भक्त में तुम एक बेहोशी भी पाओगे और एक होश भी ।

ज्ञानी में तुम्हें होश मिलेगा, बेहोशी न मिलेगी ।

शराबी में, पापी में, तुम्हे बेहोशी मिलेगी, होश न मिलेगा ।

योगी में तुम्हे होश मिलेगा, भोगी में बेहोशी मिलेगी — भक्त में तुम्हे दोनों मिलेंगे । भोगी भी उससे ईर्ष्या करेगा और योगी भी उससे ईर्ष्या करेगा । क्योंकि योगी देखेगा, ऐसी अपरिसीम होश की सम्भावना उसके भीतर भी नहीं है । और भोगी देखेगा, इतना भोग के भी ऐसी मस्ती उसके पास नहीं आयी ।

सब भोग तिक्त स्वाद छोड़ जाता है ।

ठीक कहते हैं नारद कि ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति की ऊँचाई को नहीं पहुँचते ।

भक्ति में, परमात्मा उसकी समग्रता में स्वीकार है, उसका ससार भी समाहित है उस स्वीकार में । तो भक्त भागता नहीं ससार से, भोग से भी नहीं भागता — वह उसे भी परमात्मा का ही अनुग्रह मान के स्वीकार कर लेता है ।

त्याग भक्त की भाषा नहीं है, जो 'उसने' दिया है, उसे स्वीकार कर लेता है — अहोभाव से, धन्यभाव से ।

तो भक्त के जीवन में एक अनूठा सवाद है उसकी बेहोशी में होश है, उसके होश में बेहोशी है, उसके ध्यान में तल्लीनता है, उसकी तल्लीनता में ध्यान है ।

भक्त आखिरी समन्वय है, आखिरी सिंधीसिस ।

'मस्तिष्ठद में बुलाते हैं हमें जाहिदे-नाफ़हम

होता अगर कुछ होश तो मयखाने न जाते ।'

डूबता जाता है — परमात्मा के रस में । खोता जाता है अपनी बूँद को उसके रस के सागर में । और जब बूँद सागर हो जाती है, तो उसकी मस्ती का क्या कहना । जब बूँद आकाश को छूती है तो उसकी मस्ती का क्या कहना ।

भक्त में तुम रस पाओगे, योगी को सूखा पाओगे ।

भोगी में रस मिलता है, लेकिन दुर्गंधयुक्त ।

भक्त में तुम रस पाओगे — और सुगंधयुक्त ।

योगी संसार को परमात्मा समझ लेता है, और परमात्मा को त्याग देता है। योगी परमात्मा को संसार के विपरीत समझता है, इसलिए संसार को त्याग देता है। भक्त परमात्मा और संसार को एक ही मानता है, स्नष्टा और सृष्टि एक है – इसलिए न कुछ त्यागता, न कही भागता। इस परम बोध में कि स्नष्टा अपनी सृष्टि के रोएं-रोएं में समाया है, भक्त में योग और भोग का मिलन हो जाता है। वह परम समीत है। उससे ऊपर कोई समीत नहीं।

आज इतना ही।

आठवाँ प्रवचन

दिनांक १८ जनवरी, १९७६, श्री राजनीति आश्रम, पुनरा

अनंत के आँगन में बृत्य है भक्ति

पहला प्रश्न प्रेम भक्ति का जनक है या भक्ति प्रेम की जननी ? प्रेम कली है और भक्ति फूल ? अथवा प्रेम आदि है और भक्ति अत ? या दोनों भिन्न हैं ? कली और फूल एक भी हैं और भिन्न भी । आदि और अत जुड़े भी हैं और अलग भी हैं । कली कली भी रह जा सकती है, फूल बनना सम्भव है, अनिवार्य नहीं ।

बीज बीज भी रह जा सकता है, वृक्ष हो सकता था, जरूरी नहीं है कि हो । बीज अलग भी है – उसका अपना भी अस्तित्व है – और वृक्ष की सम्भावना भी है । लेकिन वृक्ष तभी हो सकेगा जब बीज हो – पहली बात । और वृक्ष तभी हो सकेगा जब बीज मिटे – दूसरी बात । पहले हो, और फिर मिटे भी, तो ही वृक्ष हो सकेगा ।

प्रेम न हो तो भक्ति की कोई सम्भावना नहीं । और अगर प्रेम ही रह जाए, भागे न जाए, तो भी भक्ति की कोई सम्भावना नहीं । प्रेम प्रेम पर ठहर जाए तो भक्ति कभी पैदा न होगी । और अगर प्रेम हो ही न तो तो भक्ति के पैदा होने का सवाल ही नहीं है ।

इसलिए प्रश्न नाजुक है । और बड़ी भूले मनुष्य की इतिहास मे हुई हैं । किन्हीं ने सोचा कि प्रेम ही भक्ति है, तो भक्ति के नाम से प्रेम के ही गीत गाते रहे, और चूक हो गयी । और किन्हीं ने समझा कि प्रेम भक्ति नहीं है, प्रेम के पार जाना है, तो प्रेम के दुश्मन हो गये, प्रेम से पलायन किया, भागे, तो भी चूक गये ।

प्रेम से भागना नहीं है, प्रेम के पार जाना है । प्रेम को सीढ़ी बनाना है । प्रेम पर चढ़ना है । प्रेम का अतिक्रमण करना है । प्रेम का उपयोग करना है । प्रेम से दुश्मनी कर ली, तब तो फिर कभी भक्ति पैदा न होगी । यह तो बीज से दुश्मनी हो गयी । और जो बीज से डर गया, बीज का भानु हो गया, वह आशा रखे वृक्ष की, तो नासमझी है । कल्पना कर सकता है वृक्ष की, सपने देख सकता है – लेकिन वृक्ष कभी वास्तविक न हो पाएगा ।

प्रेम के बीज को सम्भालना है – भगर जरूरत से ज्यादा मत सम्भालना, ऐसा न हो कि बीज में ही बद रह जाओ, ऐसा न हो कि बीज ही सम्पदा हो जाए। बीज तो केवल सम्भावना है – उपयोग करना! आगे जाना! सीढ़ी बनाना! तो बीज खिलेगा, कली खिलेगी, फूल बनेगा।

कामवासना से जन्म होता है प्रेम का, लेकिन कामवासना पर ही कोई इक जाए तो प्रेम का कभी जन्म न होगा। कीचड़ से जन्म होता है कमल का। लेकिन कमल कीचड़ भी रह सकती है, कोई मजबूरी नहीं है कि कमल हो।

कामवासना से जन्म होता है प्रेम का। कामवासना है कीचड़। प्रेम का कमल खिलता है, जड़ तो होती है कीचड़ में, लेकिन कीचड़ के पार उठ गया होता है। कीचड़ से निकलता है और कीचड़ से कितना भिन्न होता है! कीचड़ से आता है लेकिन कीचड़ जैसा तो कमल में कुछ भी नहीं होता। अगर हमें पता ही न हो कि कमल कीचड़ से आया है, तो हम कभी कमल का सम्बन्ध कीचड़ से जोड़ ही न सकेंगे।

कहाँ कीचड़, कहाँ कमल! दो अलग लोक! दो अलग सासार! कमल को देख के तुम्हें कीचड़ की याद भी आ सकती है? कीचड़ को देख के कमल की याद आ सकती है? कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता। लेकिन कीचड़ से ही कमल आता है। कामवासना से ही प्रेम का आविर्भाव होता है।

फिर कमल से सुगंध उठती है, वैसे ही प्रेम से भक्ति की गंध उठती है। कमल तो दृश्य है, सुगंध अदृश्य है। प्रेम दृश्य है, भक्ति अदृश्य है। भक्ति तो गव्यमात्र है। तुम भक्ति को मुट्ठी में बांध न पाओगे। प्रेम को भी बांधोगे तो प्रेम ही मर जाएगा, तो भक्ति की तो बात ही छोड़ दो। कमल को भी मुट्ठी में बांधोगे तो कमल मुरझा जाएगा।

कमल को भोगना। कमल से आनंदित होना। कमल का उत्सव मनाना। कमल के आसपास नाचना। कमल के मालिक मत बनना, मुट्ठी में मत बांधना, नहीं तो प्रेम भी कुम्हला जाएगा।

अधिक लोगों के प्रेम मुट्ठी में बांध के ही तो कुम्हला जाते हैं, मर जाते हैं। जहाँ तुमने प्रेमी पर कब्जा किया, वही प्रेम की मृत्यु शुरू हो जाती है। जहाँ मालकियुत आयी वहाँ प्रेम नहीं झटक प्राप्ता। प्रेम कोई वस्तु नहीं है कि तुम मालिक हो सको। यह कोई सम्पदा नहीं है, जिसे तुम तिजोड़ी में रख सको। यह तो कमल का फूल है – इसे खुले आकाश में खिलने दो। इरो मत! ऐसा अभ्य मत पालो कि कोई और इस फूल के आनंद को उपलब्ध न हो जाए, कोई और इस फूल के सौंदर्य को न देख ले, किसी और की आँखों में फूल का सौंदर्य न मर जाए। ढांको मत इस फूल को। क्योंकि ढांक लोगे तुम, दूसरों की नज़रों से

तो बच जाएगा, लेकिन तुम भी वचित हो जाओगे। क्योंकि डका हुआ फूल मर जाता है। खुला आकाश चाहिए, सूरज की किरणें चाहिए, मुक्त हवाएं चाहिए, तो ही फूल जीवित रहेगा।

प्रेम मर गया है। पृथ्वी पर प्रेम की लाशें हैं, कुम्हलाये हुए फूल हैं, मरे हुए फूल हैं। प्रेम को ही मुट्ठी में बांधना असम्भव है। जिन्होने बांधा, उन्होने ही प्रेम की हत्या कर दी।

कभी भी प्रेम पर मालकियत मत जताना। प्रेम को ही तुम्हारा मालिक होने दो, तुम प्रेम के मालिक मत बनना।

प्रेम नाजुक है, मालकियत को न सह पाएगा। तो फिर भक्ति की तो बात बहुत दूर। भक्ति तो सुगंध है, अदृश्य है, उस पर कोई मुट्ठी बांधी नहीं जा सकती। भक्ति उसका स्वभाव है, दूर आकाशों को छुएगी, दूर हवाओं पर यात्रा करेगी।

जब प्रेम को पख लग जाते हैं – तब भक्ति। जब प्रेम इतना सूक्ष्म हो जाता है कि दिखायी भी नहीं पड़ता, भिरं एहसास होता है – तब भक्ति।

प्रेम का नशा थोड़ा स्थूल है, भक्ति का नशा बड़ा सूक्ष्म है। प्रेम को तो तुम थोड़ा सुन पाओगे, उसकी पगड़वनि सुनायी पड़ती है – भक्ति की पगड़वनि भी सुनायी नहीं पड़ती। उसे तो तुम पहचान तभी पाओगे जब तुमने भी उस अदृश्य का थोड़ा अनुभव किया हो।

कामवासना से ऊपर उठो। ध्यान रखना, मैं कहता हूँ, 'ऊपर उठो', दूर जाने की नहीं कह रहा हूँ, पार जाने की कह रहा हूँ। ऊपर उठने का अर्थ है तुम्हारी बुनियाद में तो कामवासना बनी ही रहेगी, तुम ऊपर उठे भवन उठा, बुनियाद से ऊपर चला, बुनियाद तो बनी ही रहेगी।

कामवासना से ऊपर उठो, तो प्रेम। प्रेम से भी ऊपर उठो, तो भक्ति।

कामवासना में क्षण-भर को दो शरीर करीब आते हैं – क्षण-भर को ही आ सकते हैं, क्योंकि शरीर बड़े स्थल हैं। उनकी सीमाएँ बड़ी स्पष्ट हैं। करीब ही आ सकते हैं, एक तो नहीं हो सकते।

प्रेम में दो मन करीब आते हैं, क्षण-भर को एक भी हो जाते हैं – क्योंकि मन की सीमाएँ तरल हैं, ठोस नहीं। जब दो मन मिलते हैं तो दो मन नहीं रह जाते, क्षण-भर को एक ही मन रह जाता है।

भक्ति में दो आत्माएँ करीब आती हैं, दो चैतन्य करीब आते हैं – व्यक्ति का और समष्टि का, बूद का और सागर का, कण का और विराट का – और सदा के लिए एक हो जाते हैं।

कामवासना में शरीर करीब आते हैं और दूर फिक्क जाते हैं। इसलिए कामवासना में सदा ही विषाद है। मिलने का सुख तो बहुत थोड़ा है, दूर हट जाने की

पीड़ा बहुत गहन है । इसलिए ऐसा व्यक्ति खोजना कठिन है जो कामवासना के बाद पछतावा न हो । पछतावा कामवासना का नहीं है । कामवासना पास ले आती है, लेकिन तत्क्षण दूर फेंक जाती है । जितने हम दूर पहले थे, उससे भी ज्यादा दूर हो जाते हैं । यह क्षण-भर पास आना दूरी को और प्रगाढ़ कर देता है, दूरी अनत हो जाती है ।

इसलिए हर कामवासना के पीछे पछतावा है, एक पश्चाताप है, जैसे कुछ खोया । चाहे तुम्हे साफ न हो कि क्या खोया, चाहे तुम्हे स्पष्ट न हो कि क्या खोया – लेकिन कुछ खोया, कुछ गंवाया, पाया नहीं ।

प्रेम में खोना और पाना बराबर है । कामवासना में खोना ज्यादा है, पाना नाकुछ है । प्रेम में एक सतुलन है, खोना-पाना बराबर है, तराजू के दोनों पलड़े बराबर हैं । तो तुम प्रेमी में एक तरह की तृप्ति पाओगे जो कामी में न मिलेगी । कामी हमेशा अतृप्ति मिलेगा, विषाद से भरा मिलेगा, पश्चाताप से भरा मिलेगा 'कुछ खो रहा है, कुछ खो रहा है' । जीवन में कहीं कोई चूक हो रही है, भूल हो रही है ।

पश्चाताप कथा है कामवासना की ।

प्रेमी में तुम एक तृप्ति पाओगे, एक सतुलन पाओगे, एक शाति पाओगे । खोना-पाना बराबर है – लेकिन इतना काफी नहीं है । खोना-पाना बराबर हो तो तृप्ति तो हो सकती है, महातृप्ति नहीं हो सकती । लगेगा सब ठीक है । लेकिन इससे कोई उत्सव का क्षण करीब नहीं आता । इससे तुम अनत के आँगन में नाच न सकोगे । इससे कुछ अहोभाव पैदा नहीं होता जितना दिया उतना लिया, सब बराबर हुआ, हानि कुछ मालूम नहीं होती, लेकिन लाभ भी कुछ मालूम नहीं होता ।

तो प्रेमी को तुम उलझा हुआ पाओगे । कामी को पछनाता हुआ पाओगे । प्रेमी को उलझा हुआ पाओगे कि यह क्या हुआ, पाया-खोया सब बराबर हुआ । हाथ तो कुछ न लगा । हिसाब तो पूरा हो गया, लेकिन जीवन यूँ ही चला गया ।

प्रेमी को तुम उलझा हुआ पाओग । एक प्रश्न-चिह्न पाओगे प्रेमी की अन्तर्देशा मे कि यह सब क्यों, प्रयोजन क्या ।

फिर भक्त की दुनिया है जहाँ पाना-ही-पाना है और खोना नहीं है । कामी की दुनिया है जहाँ खोना-ही-खोना है, पाना नहीं है । और भक्त की दुनिया है – ठीक विपरीत, दूसरा छोर – जहाँ पाना-ही-पाना है, खोना नहीं है । तब अहो-भाव पैदा होता है, तब मीरा पद धुधरू बाँध नाचती है । तब नृत्य आता है । तब कोई उलझन नहीं है, तब कोई प्रश्न नहीं है । तब सब प्रश्न हल हुए । तब जीवन पहली बार अर्थवत्ता से भरा । और तब पहली बार धन्यवाद में सिर झुकता है ।

पूछा है . प्रेम भक्ति का जनक है या भक्ति प्रेम की जननी ?

प्रेम ही भक्ति का जनक है, भक्ति नहीं, क्योंकि भक्ति तो आखिरी शिखर है । भक्ति तो भगवान की जननी है, प्रेम की नहीं । जिसने भक्ति को पा लिया, उसने भगवान को जन्म दिया ।

इसे भी धोड़ा समझ लेना । क्योंकि साधारणत लोग सोचते हैं, भगवान कहीं बैठा है, खोजने की बात है, पता लगा दिया, पूछताछ कर ली, योड़ी खोजबीन की, मिल जाएगा ।

भगवान कहीं बैठा नहीं है – तुम्हें जन्म देना है । भगवान कोई वस्तु नहीं है – तुम्हारे भीतर का अविभावि है । और प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही भगवान पर पहुँचना है । दूसरे का भगवान तुम्हारे काम न आएगा । भगवान के जगत में गोद लेने से काम न चलेगा ।

इस सासार में तुम धोखा दे लेते हो । किसी को बच्चे पैदा नहीं होते, गोद ले लेते हैं । जो बहुत होशियार हैं .. ।

मुल्ला नसरदीन को बच्चे पैदा नहीं हुए तो उसने विज्ञापन निकाला अख-बारो में कि मुझे किसी को गोद लेना है, लेकिन उम्र सत्तर-अस्सी साल के करीब होनी चाहिए । पूरा गाँव चकित हुआ कि पहले बहुत गोद लेने वाले देखे ।

एक बूदा आया, लकड़ी टेकता हुआ, मुश्किल से चलता हुआ । उसने कहा कि मेरी अस्सी साल की उम्र हो गयी है । मैं तैयार हूँ, लेकिन मैं समझा नहीं । लोग बच्चों को गोद लेते हैं .. ।

नसरदीन ने कहा कि बच्चों को गोद लेने से क्या फायदा । हम तो ऐसे आदमी को लेगे जिसके नाती-पोते भी हो, ताकि तीन-चार पीढ़ियों में हमारे परिवार में किसी को फिर गोद न लेना पड़े ।

तो जो बहुत होशियार हैं वे लम्बा इन्तजाम कर लेते हैं । लेकिन गोद लिया हुआ बच्चा, और तुमने जिसे जन्म दिया, उसमें जमीन-आसमान का भेद है । मैं ने जिसे गर्भ में रखा, नौ महीने जिसका बोझ ज्ञेला, जिसकी प्रतीक्षा की, जिसके आसपास सपने सैंजोये, हजार-हजार आशाएँ बौद्धी, अपने खून से जिसे सीचा, अपने हृदय की धड़कन दी, अपने प्राणों को बाँटा जिससे – उस बच्चे में, और फिर तुमने किसी को गोद ले लिया, कानूनी बच्चे में, बड़ा फर्क है ।

तो इस सासार में तो तुम उधार भी ले लेते हो तो भी चल जाना है । यहाँ तो तुम अपने को धोखा दे लेते हो । बाँझ भी उधार ले के बच्चों को, जन्मदाता बन जाते हैं । लेकिन यह धोखा परमात्मा के जगत में न चलेगा । वहाँ तो तुम्हें माँ बनना पड़ेगा ।

(भक्त यानी माँ । भक्ति यानी तुम गर्भस्थ हुए । तुम्हारा ही चैतन्य, तुम्हारो

ही सारी जीवन-ऊर्जा को अपने में समा कर एक नयी धून और एक नये गीत के साथ पैदा होता है, तुम्हारा ही चैतन्य एक नये आयाम में प्रवेश करता है – मृत्यु से अमृत के आयाम में, सीमा से असीम में। बूँद वहाँ सागर होती है।

तो भगवान कोई बैठा हुआ, कही कोई व्यक्ति नहीं है, जिसे तुम गये और परदा उठा लिया और खोज लिया। इन बचकानी बातों में मत पड़ना। न ही कोई भगवान वस्तु है कि कोई तुम्हें दे देगा। तुम्हें जन्म देना होगा। तुम्हे अहनिश्च साधना होगा। तुम्हे जन्मो-जन्मो पुकारना होगा। तुम्हे उसके बोझ को ढाना होगा। प्रसव की पीड़ा ज्ञेलनी होगी। कभी तुम हँसोगे आनंद से, कभी रोओगे भी। आँसुओं में और मुस्कराहटों में उसे सीधना होगा, सँवारना होगा। और जब वह पैदा होगा तो वह तभी पैदा होगा, उसी क्षण पैदा होगा, जहाँ तुम्हारी मीत घट जाएगी।

बौद्ध में एक अनूठी कथा है। कथा ही है, लेकिन बड़ी प्रतीकात्मक है। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि जब किसी बुद्ध का जन्म होता है तो जन्म देने के साथ ही माँ मर जाती है। बुद्ध की माँ मर गयी, जन्म देने के साथ ही। सदियों से लोग पूछते रहे ‘ऐसा क्यों? कृष्ण की माँ भी तो नहीं मरी। जीसस की माँ नहीं मरी। महावीर की माँ नहीं मरी। यह बौद्ध शास्त्रों में एक नयी धारणा क्यों पाल रखी है कि जब बुद्ध का जन्म होता है तो उनकी माँ मर जाती है?’

यह धारणा बड़ी महत्वपूर्ण है। बुद्ध की माँ मरी हो न मरी हो – लेकिन जब भी तुम्हारे भीतर बुद्धत्व का जन्म होता है, तुम मर जाते हो। इतना ही सार है उस कथा में। बीज तो मरेगा ही, तभी वृक्ष हो पाएगा। साधारण जीवन में जब माँ जन्म देती है तो माँ मर नहीं जाती, पीड़ा ज्ञेलती है, बच जाती है। मरने की घड़ी आ जाती है, चिल्लानी है, चीखती है बच्चे को जन्म देते बक्त। ऐसा लगता है, मरी, मरी – मरती नहीं, बच जाती है। लेकिन बीज नहीं बचता, टूट जाता है, तभी तो वृक्ष होता है।

जब तुम्हारे भीतर परमात्मा का जन्म होगा तो तुम न बचोगे, तुम तो मिट जाओगे। तुम्हारी मृत्यु ही उसका जन्म है। तुम्हारा मिट जाना ही उसका होना है।

इस मृत्यु से बचने के लिए लोगों ने परमात्मा की न मालम कितनी धारणाएं कर ली हैं, जैसे वह कही बैठा है, और तुम्हें राह खोजनी है। वह कही बैठा नहीं है – उसे जन्म देना है। तुम्हे गर्भ खोजना है, राह नहीं।

काम से प्रेम पैदा होता है, प्रेम से भक्ति पैदा होती है, भक्ति से भगवान पैदा होता है। भक्ति भगवान की जननी है।

तो जब तक तुम्हारे भीतर भक्ति का आविर्भाव नहीं हुआ है, तुम भगवान को न देख पाओगे, न समझ पाओगे, न पहचान पाओगे। तुम्हारे पास आँख ही नहीं।

तुम अधे हो । और प्रकाश के सम्बद्ध में बातें सुन-सुन के आँख न खुल जाएगी । आँख की चिकित्सा करनी होगी । अधेष्ठन को मिटा डालना होगा ।

आँख खुलेगी तो तुम प्रकाश देखोगे, भक्ति खुलेगी तो तुम भगवान देखोगे । जब भक्ति की आँख खुलती है तो सब तरफ परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं रह जाता ।

द्वितीय प्रश्न इस कथन में क्या सच्चाई है कि भक्ति है अद्वैत और ज्ञान है अद्वैत ?

जरा भी सच्चाई नहीं है । और यह कथन ज्ञानियों का है । ज्ञानी ऐसा कहते रहे हैं कि भक्ति द्वैत है और ज्ञान अद्वैत । भक्तों से पूछो, भक्ति के सम्बद्ध में जानना हो तो । तो ज्ञानियों से पूछना गलत जगह पूछना है ।

भक्त कहते हैं, भक्ति भी अद्वैत है, ज्ञान भी अद्वैत है — लेकिन भक्ति रसपूर्ण अद्वैत है और ज्ञान सूखा अद्वैत है ।

भक्ति है जैसे हरा-भरा उपवन । और ज्ञान है जैसा रेगिस्तान । रेगिस्तान में भी परमात्मा है — कोई इनकार नहीं करता । फिर कुछ है जिनको रेगिस्तान भी सुन्दर लगता है, उनको भी कोई इनकार नहीं करता । अपनी-अपनी मौज ।

लेकिन हरियाली की बात ही कुछ और है । फूल खिलते हैं । वृक्षों की छाया है । जरनों का नाद है । पक्षियों के गीत हैं । हरियाली की कुछ बात ही और है ।

मस्थल भी उसी का है । कांटे भी उसी के हैं, फूल भी उसी के हैं ।

भक्ति रसपूर्ण अद्वैत है । दो तो मिट जाते हैं, लेकिन जो एक बचता है, वह रुखा-सूखा नहीं है । जो एक बचता है, वह प्रेम से भरपर है, लबालब है । जो एक बचता है वह ज्ञानी की तरह, गणित की तरह रुखा-सूखा नहीं, काव्य की तरह है, मधुरता से भरा है ।

ज्ञानी का परमात्मा तर्क की निष्पत्ति है । भक्त का परमात्मा प्रेम का आविभव है । तर्क भी उसी का है, याद रखना । तर्क का कोई विरोध नहीं है, तर्क भी उसी का है । और किन्हीं को तर्क में ही स्वाद आता हो, तो वह मार्ग भी पहुँचा देता है ।

लेकिन प्रेम की बात ही और है ।

भक्तों ने अक्सर इस सम्बद्ध में बहुत कुछ कहा नहीं, क्योंकि भक्त कहते कम, जीते ज्यादा हैं । ज्ञानियों ने वक्तव्य दिये हैं तो ज्ञानियों के वक्तव्य प्रचलित ही गये हैं । और भक्त सुन लेते हैं और मुस्कराते हैं । वे इननी भी ज़ज्जट नहीं लेते कि इनका खड़न करें, क्योंकि खड़न भी ज्ञानियों का ही धरा है । खड़न-मण्डन दोनों

ही उन्हीं के हैं। भक्त उस उलझाव में पड़ता नहीं है। बजाय तर्क के जाल में पड़ने के, भक्त नाच लेता है। जब ऊर्जा का आविभाव होता है तो भीत गा लेता है, शुनगुना लेता है। तुम उसकी आँखों में उसके परमात्मा को पाओगे, उसके शब्दों में नहीं। शब्द के सम्बन्ध में भक्त थोड़ा गूँगा है। उसकी मधुशाला उसकी आँखों में है।

ज्ञानी की आँख तुम बद पाओगे। शकराचार्य बैठे होगे या बुद्ध बैठे होगे, तो आँख बद होगी।

भक्त की आँख तुम परमात्मा की शराब से भरी हुई पाओगे। खुली हो या बद, भक्त की आँख तुम्हे नशे में डुबा देगी।

भक्त एक मस्ती में जीता है। उसने बेहोशी में ही होश जाना है। उसने तल्लीनता में ही अपने होने को छुआ है। उसने मिट कर ही अपने अमित्ति व की पहचान की है।

लेकिन फक्त तुम देख सकते हो। भक्त भी अद्वैत को ही उपलब्ध होता है, लेकिन उसका अद्वैत ज्ञानी के अद्वैत से बड़ा भिन्न है। अद्वैत को उपलब्ध हो कर भी भक्त द्वैत की ही भाषा का उपयोग करता है।

इसे थोड़ा समझ लेना ज़रूरी है। इसलिए ज्ञानी का वक्तव्य ठीक भी मालूम पड़ता है कि भक्ति है द्वैत और ज्ञान है अद्वैत। लेकिन भक्त यह कहता है, भाषा तो जहाँ भी होगी, द्वैत की ही होगी। भाषा का अर्थ ही दो है। बोलने का अर्थ ही दूसरे को स्वीकार कर लेना है। बोले कि दूसरा आया। बोलने का मनलब ही सवाद है, दो की भीजूदगी है।

अगर तुमने यह भी कहा कि अद्वैत है, तो किससे कह रहे हो? तो कहने वाला और सुनने वाला तो दो हो गये। अगर तुमने यह भी सिद्ध करने की कोशिश की कि उसके सिवाय कुछ भी नहीं है, तो यह सिद्ध करने की कोशिश क्यों कर रहे हो? अगर उसके सिवाय कुछ भी नहीं है तो तुम बिलकुल पागल हो। जब है ही नहीं तो कोशिश क्या, प्रयास क्या है?

जो लोग सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि ससार माया है वे कम-से-कम इतना तो ससार को मानते हो हैं कि है, और माया सिद्ध करना है। अगर ससार माया ही है तो बात खत्म हो गयी, सिद्ध क्या करना है! मुबह उठ के तुम यह तो सिद्ध नहीं करते कि जो सपने देखे रात वे झूठ थे। इनना जानते ही कि सपने थे, बात खत्म हो गयी, कौन सिद्ध करता है! कौन झक्कट में पड़ता है।

अगर सुबह उठ के कोई आदमी सिद्ध करने लगे कि रात मैंने जो सपना देखा वह झूठ था, तो एक बात पक्की है कि इस आदमी को अभी भी सपने पे थोड़ा भरोसा है, अन्यथा किससे सिद्ध कर रहा है? और लोग हँसेगे, जग-हँसाई होगी कि

यह पागल देखो, कहता है सपना झूठ है । यह कहना भी व्यर्थ है । सपना इतना झूठ है कि उसे झूठ कहना भी उसे सच्चाई देना है । इससिए तो कोई सुबह उठ के विवाद में नहीं पड़ता । कोई कहता ही नहीं किसी को कि सपना देखा, वह झूठ था ।

भक्त कहता नहीं कि सप्तार माया है । भक्त जानता है । ज्ञानी कहता है । भक्त कहता नहीं कि परमात्मा एक है । किससे कहना है? किसको सुनाना है? एक ही है, इसलिए कहने की बात, मुनाने की बात व्यर्थ है । भक्त जीता है उस ऐक्य को ।

लेकिन भक्त की भाषा द्वैत की है, व्योकि वह कहता है, सारी भाषा द्वैत की है । फिर प्रेम की भाषा तो द्वैत की होगी ही । तो भक्त भगवान से बोलता है, बाते करता है । ज्ञानी को यही अखरता है ।

मीरा खड़ी है कृष्ण के मंदिर में, बाते कर रही है, शिकायतें भी करती हैं, रूठ भी जाती है । ज्ञानी को ये बाते नहीं जँचती । ज्ञानी को लगता है, यह पागल-पन हुआ । एक ही है । मीरा भी जानती है । लेकिन वह जो एक है, वह कोई मुर्दा इकाई नहीं है । उस एक में बड़ा जीवत विरोधाभास है । वह जो एक है, वह ऐसा एक नहीं है कि जिसमें दो का उपाय न हा ।

यह योड़ा समझना पड़े ।

वह ऐसा एक है जिसमें दो एक हो गये हैं । वह प्रेम की एकता है, गणित की एकता नहीं है ।

अगर तुमने कभी किसी को प्रेम किया तो तुम एक अनूठे अनुभव में आते हो, वह अनूठा अनुभव तकातीत है ।

जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो एक अनूठी प्रतीति होनी शुरू होती है कि तुम दो भी हो और एक भी । स्वाभावत दो हो, नहीं तो कौन किसको प्रेम करेगा? कौन किसके लिए औसू बहायेगा? कौन किसके लिए नाचेगा? निश्चित ही दो हो । लेकिन फिर भी दो नहीं हो । कहीं द्वि-पन खो गया है । कहीं किनारे टूट गये हैं और धाराएँ एक-दूसरे में प्रवेश कर गईं हैं । कहीं किसी भीतर के जगत में एक भी हो । ऊपर-ऊपर दो हो, भीतर-भीतर एक हो । शायद हर घड़ी ऐसा न भी हो पाता हो, कभी-कभी ऐसी घड़ी आती हो, जब एक हो जाते हो, बाकी घड़ी दो रहते हो — लेकिन आती है ऐसी घड़ी जब विरोधाभास घटता है, दो के बीच एकता सघनी है ।

भक्त का अद्वैत जीवत है । जीवत का अर्थ है एकरस नहीं है । एक तो तुम बीणा बजाओ और एक ही स्वर को गुंजाते रहो — बेरस हो जाएगा । बहुत-से स्वर उठाओ, लेकिन सारे स्वरों के बीच एक सवाद हो, एक सगीत हो — सगीत एक हो, स्वर बहुत हो, लयबद्धता एक हो, छद एक हो — तब जीवत, तब ऊब न आएगी ।

भक्त परमात्मा को जीवत - गणित की नहीं, सगीत की - एक लयबद्धता के रूप में देखता है। प्रेमी-प्रेयसी या प्रेयसी और प्रेमी दो भी बने रहते हैं और कही एक भी हो गये होते हैं। मीरा कृष्ण के सामने नाचती है, बोलती है, बात करती है दो तो है और फिर भी एक है।

बोलने के लिए दो होना जरूरी है। और ध्यान रखो, अगर सच में ही बोलना हो तो एक होना भी जरूरी है।

इसनिए भक्त की बात बिलकुल तर्कार्तीत है। जो जियेगा वही जानेगा।

अद्वैतवादी की बात तो तुम शास्त्र से भी समझ सकते हो, भक्ति की बात केवल शास्त्र से समझ में न आएंगी। अद्वैतवादी की बात तो तकनिष्ठ है, जिनके पास भी थोड़ी तर्क की क्षमता है, वे समझ लेंगे। लेकिन भक्त की बात अनुभव, अस्तित्वगत अनुभव से आती है।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, भक्त भी अद्वैत की बात कर रहा है, लेकिन उसका अद्वैत की बात करने का ढग प्रेम है। उसका लहजा अलग है। उसकी शैली अलग है।

और मैं तुमसे कहता हूँ, भक्त का अद्वैत ज्यादा बहुमूल्य है। उसमें प्राण धड़कते हैं, श्वास चलती है। ज्ञानी का अद्वैत बिलकुल मुर्दा है, मरी लाश की तरह। ज्ञानी का अद्वैत ऐसा है जैसे कोई नदी एक ही किनारे के सहारे बहने की चेष्टा करे। भक्त का अद्वैत ऐसा है जैसा सभी नदियाँ दो किनारे के सहारे बहती हैं।

लेकिन तुमने कभी गौर किया नदी को दो किनारों के सहारे की ज़रूरत है, लेकिन दोनों किनारे नीचे नदी की गहराई में तो एक ही जाते हैं, ऊपर से दो दिखायी पड़ते हैं, अलग-अलग दिखायी पड़ते हैं। तुम्हें एक किनारे से दूसरे किनारे जाना हो तो नाव पर सवार होना पड़ता है। लेकिन नदी की गहराई में तो दोनों किनारे मिले हैं, एक ही है। एक है और फिर भी दो हैं। दो हैं और फिर भी एक है।

भक्ति के सम्बन्ध में कुछ जानना हो तो ज्ञानियों के द्वारा मत जानना। किर भक्ति का ही स्वाद लेना पड़ेगा। यह बात उधार जानी जा सके, ऐसी नहीं। और ज्ञानी से जानना तो बिलकुल गलत जगह से जानना है। ज्ञानी को इसका कोई स्वाद ही नहीं है। भक्त से ही पूछना। और भक्त से पूछने का ढग भी अलग होगा। पूछने का एक ही ढग हो सकता है कि तुम भी थोड़ा अपने को रगना उसी रग में। भक्त की बात को तुम दूर खड़े रह-रह के न समझ पाओगे। उतरना। उसकी मस्ती में थोड़े डूबना। भक्त के साथ थोड़ा पागल होना पड़ेगा। भक्त के साथ थोड़ा भक्ति में डूबकी लगानी पड़ेगी।

भक्ति को समझना महँगा सौदा है। ज्ञान को समझने में कोई अड़चन नहीं

है शास्त्र से समझ सकते हो, किनारे खडे रह के समझ सकते हो। भक्ति की चुनौती गहरी है।

एक मित्र ने पूछा है कि सन्यास के लिए गैरिक वस्त्र क्यों जरूरी है।

उत्तरना हो तो योडा पागल होना जरूरी है। ये पागल होने के रास्ते हैं, और कुछ भी नहीं। ये तुम्हारी हैशियारी को तोड़ने के रास्ते हैं, और कुछ भी नहीं। ये तुम्हारी समझदारी को पोछने के रास्ते हैं, और कुछ भी नहीं।

गैरिक वस्त्र पहना दिये, बना दिया पागल। अब जहाँ जाओगे, वही हँसाई होगी। जहाँ जाओगे, लोग वही चैन से न खडा रहने देंगे। सब आँखे तुम पे होंगी। हर कोई तुमसे पूछेगा 'क्या हो गया?' हर आँख तुम्हें कहती भालूम पढ़ेगी 'कुछ गडबड हो गया। तो तुम भी इस उपद्रव मे पड़ गये? सम्मोहित हो गये?'

गैरिक वस्त्रों का अपने-आप में कोई मूल्य नहीं है। कोई गैरिक वस्त्रों से तुम मोक्ष को न पा जाओगे।

गैरिक वस्त्रों का मूल्य इतना ही है कि तुमने एक धोषणा की कि तुम पागल होने को तैयार हो। तो फिर आगे और यात्रा हो सकती है। यही तुम डर गये तो आगे क्या यात्रा होगी?

आज तुम्हें गैरिक वस्त्र पहना दिये, कल एकतारा भी पकड़ा देंगे। उगली हाथ मे जा गयी तो पहुँचा भी पकड़ लेंगे। यह तो पहचान के लिए है कि आदमी हिम्मतवर है या नहीं। हिम्मतवर है तो धीरे-धीरे और भी हिम्मत बढ़ा देंगे। आशा तो यही है कि कभी तुम सड़कों पे भीरा और चंतन्य की तरह नाच सकोगे।

आदमी ने हिम्मत ही खो दी है।

भीड़ के पीछे कब तक चलोगे?

ये गैरिक वस्त्र तुम्हें भीड़ से अलग करने का उपाय है, तुम्हें व्यक्तित्व देने की व्यवस्था है - ताकि तुम भीड़ से भयभीत होना छोड़ दो, ताकि तुम अपना स्वर उठा सको, अपने पैर उठा सको, पगड़डी को चुन सको।

राजमार्ग से कोई कभी परमात्मा तक न पहुँचा है, न पहुँचेगा, पगड़डियों से पहुँचता है। और हम धीरे-धीरे इतने आदी हो गये हैं भीड़ के पीछे चलने के कि जरा-सा भी भीड़ से अलग होने मे डर लगता है।

जिन मित्र ने पूछा है, किसी विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर हैं, बुद्धिमान हैं, सुशिक्षित हैं - फिर विश्वविद्यालय मे गैरिक वस्त्र पहन के जाएँगे, तो अडचन मे समझता हूँ। वैसे ही अध्यापक मुसीबत में है, गैरिक वस्त्र - पूरी फजीहत द्वारा रखी है।

प्रश्न पूछा है तो जानता हूँ कि मन में आकॉक्शा भी जगी है, नहीं तो पूछते वयो । अब सबाल है हिम्मत से चुनेंगे कि फिर हिम्मत छोड़ देगे, साहस खो देगे ? कठिन तो होगा । कठिन हो, यही तो पूरी व्यवस्था है ।

पूछा है कि माला वस्त्रो के ऊपर ही पहननी क्यों जरूरी है । इच्छा पहनने की साफ है, मगर कपड़ों के भीतर पहनने की इच्छा है । नहीं, भीतर पहनने से न चलेगा, वह तो न पहनने के बराबर हो गया । वह बाहर पहनने के लिए कारण है । कारण यही है कि तुम्हे किसी तरह भी भीड़ के भय से मुक्त करवाना है - किसी भी भाँति तुम्हारे जीवन से यह निता चली जाए कि दूसरे क्या कहते हैं, तो ही आगे कदम उठ सकते हैं । अगर परमात्मा का होना है तो समाज से थोड़ा दूर होना ही पड़ेगा । क्योंकि समाज तो विलकुल ही परमात्मा का नहीं है । समाज के ढाँचे से थोड़ा मुक्त होना पड़ेगा ।

न तो माला का कोई मूल्य है, न गैरिक वस्त्रों का कोई मूल्य है, अपने-आप में कोई मूल्य नहीं है - मूल्य किसी और कारण से है । अगर यह सारा मुल्क ही गैरिक वस्त्र पहनता हो तो मैं तुम्हे गैरिक वस्त्र न पहनाऊँगा, तो मैं कुछ और चुन लूँगा काले वस्त्र, नीले वस्त्र । अगर यह साग मुल्क ही माला पहनता हो तो मैं तुम्हे माला न पहनाऊँगा, कुछ और उपाय चुन लेंगे ।

बहुत उपाय लोगों ने चुने । बुद्ध ने सिर घोट दिया भिक्षुओं का उपाय है । अलग कर दिया । महावीर ने नग्न खड़ा कर दिया लोगों को उपाय है ।

थोड़ा सोचो, जिन लोगों ने हिम्मत की होगी महावीर के साथ जाने की और नग्न खड़े हुए होगे, जरा उनके साहस की खबर करो । जरा विचारो । उस साहस में ही सत्य ने उनके द्वार पर आ के दस्तक दे दी होगी ।

बुद्ध ने राजपुत्रों को, सम्पन्निशालियों को भिखारी बना दिया द्वार-द्वार का, भिक्षापात्र हाथ में दे दिये । जिनके पास कोई कमी न थी, उन्हें भिखारी बनाने का क्या प्रयोजन रहा होगा ? अगर भिखारी होने से परमात्मा मिलता है तो भिखर्मणों को कभी का मिल गया होता । नहीं, भिखारी होने का सबाल न था - उन्हें उतार के लाना था वहाँ, जहाँ वे निपट पागल सिद्ध हो जाएं । उन्हें तर्क की दुनिया के बाहर खीच लाना था । उन्हें हिसाब-किताब की दुनिया के बाहर खीच लाना था । जो साहसी थे, उन्होंने चुनौती स्वीकार कर ली । जो कायरथे, उन्होंने अपने भीतर तर्क खोज लिये, उन्होंने कहा, 'क्या होगा सिर घुटाने से ? क्या होगा नग्न होने से ? क्या होगा गैरिक वस्त्र पहनने से ? '

यह असली सबाल नहीं है - असली सबाल यह है 'तुम मे हिम्मत है ? ' पूछो यह बात कि क्या होगा हिम्मत से । हिम्मत से सब कुछ होता है । साहस के अतिरिक्त और कोई उपाय आदमी के पास नहीं है । दुसरा साहस चाहिए ।

लोग हैंसेगे । लोग मखौल उड़ाएंगे । और तुम निश्चित अपने मार्ग पर चलते जाना । तुम उनकी हँसी की फिक्र न करना । तुम उनकी हँसी से डौवा-डौल न होना । तुम उनकी हँसी से व्यथित मत होना । और तुम पाओगे, उनकी हँसी भी सहारा हो गयी, और उनकी हँसी ने भी तुम्हारे ध्यान को व्यवस्थित किया, और उनकी हँसी ने भी तुम्हारे भीतर से कोष्ठ को व्यवस्थित किया, और उनकी हँसी ने भी तुम्हारे जीवन में कहणा लायी ।

समाज के दायरे से मुक्त करने की व्यवस्था है । जिसको मुक्त होना हो और जिसे थोड़ी हिम्मत हो अपने भीतर, भरोसा हो थोड़ा अपने पर, अगर तुम बिलकुल ही बिक नहीं गये हो समाज के हाथों, और अगर तुमने अपनी सारी आत्मा गिरवी नहीं रख दी है— तो चुनीती स्वीकार करने जैसी है ।

सत्य कमज़ोरों के लिए नहीं है, साहसियों के लिए है ।

तीसरा प्रश्न सुरक्षा के लिए मुझे जो नाटक करना पड़ता है, उसे कहें या छोड़ दूँ? और अब तो नाटक भी माथ छोड़ रहा है । मुझे सही मार्ग बताने की कृपा करें ।

सारा जीवन ही एक नाटक है—मम्बधो का, बाजार का, घर-गृहस्थी का । सारा जीवन ही अभिनय है । छोड़ कर कहाँ जाओगे? मार्ग कर कहाँ जाओगे? जहाँ जाओगे, वही फिर कोई नाटक करना पड़ेगा ।

इसलिए भगोडेपन के मै पक्ष में नहीं हूँ ।

कुशल अभिनेता बनो । भागो मत । जान के अभिनय करो, बेहोशी में मत करो, होशपूर्वक करो । होश सधना चाहिए । हजार काम करने पड़ेगे । और शायद उनका करना ज़रूरी भी है । पर होशपूर्वक करना ज़रूरी है । धीरे-धीरे तुम पाओगे कि यह जीवन जीवन न रहा, बिलकुल नाटक हो गया, तुम अभिनेता हो गये ।

अभिनेता होने का अर्थ है कि तुम जो कर रहे हो, उससे तुम्हारी एक दूरी हो गयी । जैसे कि कोई राम का अभिनय करता है रामलीला में, तो अभिनय तो पूरा करता है, राम से बेहतर करता है, क्योंकि राम को कोई रिहर्सल का भौका न मिला होगा । पहली दफा करना पड़ा था, उसके पहले कोई किया न था कभी । तो जो कई दफे कर चुका है, और बहुत बार तैयारी कर चुका है, वह राम से बेहतर करेगा । रोणगा जब सीता चोरी जाएगी । वृक्षों से पूछेगा, ‘मेरी सीता कहाँ है?’ आँख से आँसुओं की धारें बहेगी । और फिर भी भीतर पार रहेगा । भीतर जानता है कि कुछ लेना-देना नहीं है । मच के पीछे उतर गये, खत्म हो गयी बात । मच के पीछे राम और रावण साथ बैठ के चाय पीते हैं, मच के बाहर

धनुष-बाण ले के खडे हो जाते हैं । मच पर दुश्मनी है, मच के पार कैसी दुश्मनी ।

मैं तुमसे कहता हूँ कि असली राम की भी यही अवस्था थी । इसलिए तो हम उनके जीवन को रामलीला कहते हैं—लीला । वह नाटक ही था । कृष्णलीला । वह नाटक ही था । असली राम के लिए भी नाटक ही था ।

(नाटक का अर्थ होता है जो तुम कर रहे हो, उसके साथ तादात्म्य नहीं है, उसके साथ एक नहीं हो गये हो, दूर खडे हो, हजारों मील का फासला है—तुम्हारे कृत्य में और तुम में । तुम कर्ता नहीं हो, साक्षी हो—नाटक का इतना ही अर्थ है—तुम देखने वाले हो । वे जो मच के सामने बैठे हुए दर्शक हैं, उनमें कहीं तुम भी छिपे बैठे हो, मच पर काम भी कर रहे हो और दर्शकों में छिपे भी बैठे हो, वहाँ से देख भी रहे हो । भीतर बैठ कर तुम देख रहे जो हो रहा है, खो नहीं गये हो, भूल नहीं गये हो । यह भ्राति तुम्हें नहीं हो गयी है कि मैं कर्ता हूँ । तुम जानते हो एक नाटक है, उसे तुम पूरा कर रहे हो ।

तो मैं तुमसे न कहूँगा कि भागो । भाग कर कहाँ जाओगे? मैं तुमसे यह कहूँगा कि भागना भी नाटक है । जहाँ तुम जाओगे, वहाँ भी नाटक है । तुम सन्यासी भी हो जाओ, तो भी मैं तुमसे कहूँगा सन्यास भी नाटक है, अभिनय है । वस्त्र ऊपर ही ओढ़ना—आत्मा पे न पड़ जाएँ । यह रग ऊपर-नहीं-ऊपर रहे, भीतर न हो जाए । भीतर तो तुम प्रार ही रहना । सफेद कपड़े पहनो कि गेरुआ पहनो कि काले पहनो, वस्त्र बाहर ही रहें, भीतर न आ जाएँ । तुम्हारी आत्मा निवेस्त्र रहे, नग्न रहे । तुम्हारे चेनन्य पर कोई आवरण न हो । वहाँ तो तुम मुक्त ही रहो—सब वस्त्रों से, सब आकारों से ।)

तुम्हारा कोई नाम धाम है, उसे तुम छोड़ के भाग आओगे, मैं तुम्हें एक नया नाम दे दूँगा, उस नाम से भी दूरी रहे, उस नाम से भी तादात्म्य मत कर लेना । पुराना नाम भी तुम्हारा नहीं था, यह भी तुम्हारा नहीं है—तुम अनाम हो । पुराने से छुड़ाया, क्योंकि उससे तुम्हारे एक होने की आदत बन गयी थी, नया दिया, इसलिए नहीं कि अब इसे तुम आदत बना लो, अन्यथा यह भी व्यथ हो जाएगा ।

✓ अपने को दूर रखने की कला सन्यास है ।

अभिनेता होने की कला सन्यास है ।

जहाँ तुम कर्ता हुए, वही गृहस्थ हो गये ।

जहाँ तुम द्रष्टा रहे, वही सन्यम्त हो गये ।

तो कहीं से भागना नहीं है ।

कहीं जाना नहीं है ।

जहाँ हो वही जागना है ।

‘आता है जब्जे दिल को वह अन्दाजे मैकशी
रिन्दो में रिन्द भी रहें, दामन भी तर न हो।’

पीने वालों में पीने वाले भी बन गये, और दामन भी तर न हो। पिय-
कड़ों में पियकड़ जैसे हो गये, लेकिन बेहोशी न पकड़े, दाग न लगे, जागरण बना
रहे। तो ससार में जो चल रहा है – घर है, गृहस्थी है, बच्चे हैं, पत्नी है, पति
है – ठीक है। भाग के भी क्या होगा? कहाँ जाओगे? जहाँ जाओगे, वहीं ससार
है। फिर तुम अगर बिना बदले वहाँ जाओगे, तो तम वहाँ ससार छोड़ा कर लोगे।

ससार में भागने का एक ही रास्ता है, वह जागना है। तो जहाँ हो, वहीं
जाग जाओ। और इस तरह करने लगे जैसे यह सब नाटक है। अगर कोई व्यक्ति
इतनी ही याद रख सके कि सब नाटक है, तो और कुछ करने को नहीं बचता।
इतना ही करने जैसा है।

‘आखियाँ में न कोई जहमत न कफस में तकलीफ
सब बराबर है तबीयत अगर आजाद रहे।’

फिर कोई फर्क नहीं पड़ता, घर में कि बाहर, घर में कि कैद में। तबीयत
अगर आजाद रहे। और तबीयत की आजादी क्या है?

साक्षी-भाव तबीयत की आजादी है। साक्षी पर कोई बधन नहीं है।

साक्षी ही एकमात्र मुकित है। जहाँ तुम कर्ता बने कि तुमने जजीरे ढाली।
जहाँ तुमने कहा, मैं कर्ता हूँ, बस वही तुम कैद में पड़े। अगर तुम देखते ही रहे,
अगर तुमने देखने का सातत्य रखा, अविच्छिन्न धारा रही द्रष्टा की, फिर कोई
तुम पर बधन नहीं है। चैतन्य को न कोई बांधने का उपाय है, न कोई जजीरे हैं,
न कोई दीवाल है।

‘सब बराबर है, तबीयत अगर आजाद रहे।’

चौथा प्रश्न आपने कहा कि ज्ञान भवित के लिए बाधा है, फिर महातार्किक
और महापडित चैतन्य एकदम से भक्त कैसे हो गये?

— क्योंकि वे महातार्किक थे और महापडित थे। छोटे-मोटे पड़ित होते तो
न हो पाते। इतने बड़े तार्किक थे कि उनको अपने तर्क की व्यर्थता भी दिखायी
पड़ गयी। इतने बड़े पडित थे कि अपना पाडित्य भी कचरा मालूम पड़ा।
छोटे पडित पाडित्य में अटके रह जाते हैं। छोटे तार्किक तर्क से ऊपर नहीं
उठ पाते।

अगर तुम सच में ही विचार करने में कुशल हो तो आज नहीं कल तुम्हें
विचार की व्यर्थता दिखायी पड़ जाएगी। वह विचार की आखिरी निष्पत्ति है।
विचार के प्रति जाग जाना कि विचार व्यर्थ है। विचार का आखिरी निष्कर्ष है।

जैसे काँटे से हम काँटा निकाल लेते हैं, ऐसा महातक से तर्क निकल जाता है और महाविचार से विचार निकल जाता है।

चैतन्य महापडित थे। छोटे-मोटे पडित होते तो हूब जाते। वे छोटे-मोटे पडित नहीं थे, नहीं तो अकड़ जाते, भूल ही जाते अपने पाडित्य में। सच में ही पडित थे।

पडित शब्द बड़ा अर्थपूर्ण है। खो गया उसका अर्थ। गलत हो गया उसका अर्थ। लेकिन शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। आता है प्रज्ञा से — प्रज्ञावान। जागा हुआ।

पाडित्य से पाडित्य का कोई सम्बन्ध नहीं है — प्रज्ञा से है। कितना तुम जानते हो, इससे सम्बन्ध नहीं है — कितने तुम जागे हुए हो।

तो चैतन्य ने देखा इनना जान लिया, कुछ भी तो हाथ न आया, सब शास्त्र देख डाले, भिखारी के भिखारी रहे, तर्क बहुत कर लिया, बहुतों को तर्क में पराजित किया, लेकिन भीतर कोई सम्पत्ति तो हाथ न लगी, भीतर का अंधेरा तो अब भी वैसा का वैसा है। तकंजाल से ज्योति न जली, भीतर का प्रकाश न मिला। महापडित थे, बात समझ में आ गयी। फेक दी पोथी, फेक दिये तर्कजाल। बात ही छोड़ दी विचार की। एक क्षण में यह क्राति घटी।

अगर तुम अभी भी उलझे हो पाडित्य में, अगर तुम अभी भी बुद्धिमानी में उलझे हो, तो समझना कि बुद्धिमानी तुम्हारी बहुत बड़ी नहीं है, छोटी-मोटी है। अधिकचरे पडित ही पडित रह जाते हैं। वास्तविक पडित तो मुक्त हो जाते हैं।

तो मैं तुमसे कहना हूँ, अगर तुम तर्क में अभी भी रस लेते हो, थोड़ा और रस लेना। जल्दी नहीं है कोई, अनत काल शेष है, कोई घबड़ाहट नहीं है। और थोड़ा रस लेना। तर्क में और थोड़ी प्रगाढ़ता पाओ। और थोड़े प्रवीण हो जाओ। और थोड़ी गहरी सूक्ष्मता में जाओ। एक दिन तुम अचानक पाओगे तुम्हारा तर्क ही तुम्ह उस जगह ले आया, जहाँ दर्शन हो जाते हैं कि तर्क व्यर्थ है। शास्त्र ही वहाँ ले आते हैं, जहाँ शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं। और इसके पहले भागना भत। इसके पहले भागों, तो तुम्हारा पाडित्य अटका ही रहेगा। तुम फिर चाहे गीत गाने लगो, भक्ति करने लगो, पूजा करने लगो — तब तुम पूजा के पडित हो जाओगे, तब तुम भक्ति के पडित हो जाओगे — लेकिन तब पडित तुम रहोगे ही, तुम निर्विकार न हो पाओगे।

उस निर्विकार को पाना हो तो विचार को उसकी आखिरी घड़ी तक खीच के ले जाना।

सब चीजें उम्र पा के मर जाती हैं। हर बच्चा अगर बीच में ही न मर जाए तो बूढ़ा होगा ही। हर जवानी बुढ़ापे पे पहुँच जानी है। जैसे चीजें बढ़ती हैं,

ढलती है । सुबह हुई, साँझ होने लगी । सुबह हुई, साँझ होने लगी । विचार किया, निविचार करीब खाने लगा ।

घबडाओ मत । थोड़े बढ़े चलो ।

मैं तुमसे जल्दी करने को नहीं कहता । यह मेरी सतत अभिलाषा है, और सतत इस पे मेरा जोर है कि तुम जल्दी मत करना - पकना । परिपक्व हुए बिना कुछ भी नहीं होता । परिपक्वता सब कुछ है ।

तो मेरी बातें सुन के तुम तक मत छोड़ देना । मैंने भी उसे पूरा करके ही छोड़ा । और मैं जानता हूँ, जो जल्दी करके छोड़ देगा, अधूरे मे छोड़ देगा, वह अधूरा रह जाएगा । चीजों को पहुँचने दो उनकी आखिरी ऊँचाई तक, वे अपने मे ही ढल जाती हैं । तुम इतना ही कर सकते हो कि सहारा दो, पहुँचने दो उन्हे उनकी आखिरी ऊँचाई तक - वे अपने से ही गिर जाती हैं ।

सुबह अपने-आप साँझ हो जाती है । तुम्हे भर-दुपहरी मे आँख बद करके साँझ बनाने की कोई ज़रूरत नहीं । भर-दुपहरी मे साँझ को विश्वास कर लेने की कोई ज़रूरत नहीं है । और ऐसी साँझ झूठ होगी । झूठ से कही कोई परमात्मा तक पहुँचा है ?

अधिक लोगों की अस्तिकता झूठ है । उनके भजन-कीर्तन झूठ हैं । अभी उन्होने तर्क की कस्ती भी पूरी न की थी । अभी नास्तिक भी न हुए थे और आस्तिक हो गये । अभी इनकार भी न किया था और हाँ भर दी । अभी लड़े भी न थे और समर्पण कर दिया । टक्कर देनी थी ठीक, लड़ना था ठीक, जूझना था । जल्दी क्या है समर्पण की ?

कच्चा समर्पण काम न आएगा ।

तो मैं नास्तिकता सिखाता हूँ, ताकि तुम किसी दिन आस्तिक हो सको । और मैं तुमसे कहता हूँ, तर्क करना । मैं उन कमज़ोर लोगों में नहीं हूँ जो तुमसे कहते हैं, तर्क छोड़ो । मैं तुमसे कहता हूँ, तर्क छूट जाएगा, तुम कर तो लो । मैंने करके देखा और छूट गया । और मैं उनको भी जानता हूँ, जिन्होने बिना किये छोड़ा और अब तक नहीं छूटा, कभी न छूटेगा ।

जीवन अनुभव से आता है ।

तुम नास्तिक हो जाओ । घबडाओ मत । इतना डर क्या है ? परमात्मा है । नास्तिक होने में इतनी कोई घबडाने की ज़रूरत नहीं है । तुम्हारे नास्तिक होने से वह नाराज़ न हो जाएगा ।

जीसस ने कहा है, एक बाप ने अपने बेटे को कहा कि तू जा, बगीचे मे काम कर, फसल पक गयी है । और उस बेटे ने कहा, 'अभी जाता हूँ । यह गया । ' लेकिन गया नहीं । दूसरे बेटे से कहा कि तू जा । उसने कहा कि नहीं, मैं ज

जाऊंगा, और हजार काम है। लेकिन बाद मे पछताया और गया।

तो जीसस ने अपने शिष्यों से पूछा, 'इन दोनों बेटों मे कौन बाप का प्यारा होगा - जिगने हाँ कही और नहीं गया, या जिसने नहीं की और गया?' जिसने नहीं की, और गया, वही प्यारा होगा।

तुम जरा गौर करना। अगर तुमने 'नहीं' ही नहीं की, तो तुम्हारी 'हाँ' नपुसक होगी। उम्में जान ही न होगी। तुमने उपचार से कह दिया। पिता कहते हैं, इसीलिए कह दिया कि अच्छा जाते हैं। टालने को कह दिया।

धर के लोग मानते हैं कि ईश्वर है, तुमने मान लिया। परिवार, समाज मानता है, तुमने मान लिया। यह तुम्हारी मान्यता न हुई, यह सामाजिक शिष्टाचार से तुम मस्जिद गये, मदिर गये, गुरुद्वारा गये, झुके - यह तुम मदिर-मस्जिद में न झुके, यह तुम समाज के सामने झुके, यह तुम भय से झुके कि लोग क्या कहेंगे।

लेकिन तुमने इनकार किया। तुमने कहा कि जब तक मैं न समझ लूँ, कैसे मानूँ, तो तुमने कम-से-कम प्रमाणिकता नी धोषित की, तुमने कम-से-कम यह तो कहा कि मैं बेइमानी यहाँ न करूँगा - बाजार मे कर लेता हूँ ठीक, चलनी है, मदिर मे नो बेइमानी न करूँगा। यहाँ तो प्रमाणिक रहूँगा। यहाँ नो जब हाँ आएगी, तभी कहूँगा। और जब तक भीतर से न उठनी हो, मेरे हृदय म न आती हो, तब तक रुकूँगा, तब तक यह गर्दन न झुकेगी।

और मैं तुमसे कहता हूँ, परमात्मा तुमसे नाराज न होगा।

तुम्हारी 'नहीं' 'हाँ' की तरफ पहला कदम है। तुम चल पडे। तुमने कम-से-कम प्रमाणिक होने का पहला कदम तो उठाया। और जिसने ठीक से 'नहीं' कही, वह एक-न-एक दिन 'हाँ' कहेगा, क्योंकि कौन 'नहीं' से जी सकता है, कब तक जी सकता है। नकार में जीने का कोई उपाय नहीं। 'नहीं' से किसी का भी पेट नहीं भरता और 'नहीं' से न खून बनता है, और न आन्मा में प्राण आते हैं, न इवासे चलनी है।

'हाँ' चाहिए। परम आस्था चाहिए, तभी जीवन का फूल खिलता है। 'नहीं' तुम कहो आज नहीं कल, तुम खुद ही अपनी 'नहीं' स घबड़ा जाओगे, आज नहीं कल, तुम्हारी 'नहीं' तुम्हें ही काटने लगेगी, सालने लगेगी। तभी ठीक अन आया उसे गिराने का।

चैतन्य महापडित थे, महातार्किक थे - इसीलिए एक दिन भक्त हो सके।

भक्ति कोई सस्ती बात नहीं है। वह तर्क के आगे का कदम है। वह तर्क के आगे की मजिल है। काव्य कोई छाटी बात नहीं, वह गणित से पार की समझ

है। वह आखिरी मजिल है, फिर उसके आगे कोई मजिल ही नहीं। और सब मजिलें उसके पहले ही पूरी हो जाती हैं।

तो बगर तुम्हारा मन वशी भी तर्कजाल में उलझा हो, पांडित्य में उलझा हो, शास्त्र में उलझा हो, तो यही समझना कि पड़ित तुम अधिकरे हो, ज्ञान बचकाना है। थोड़ा और बढ़ाओ इसे। प्रौढ़ होते ही ज्ञान वैसे ही गिर जाता है, जैसे पका हुआ फल दृक्ष से।

पूर्ववर्ती प्रश्न सैकड़ो बार भ्रम के टूटने पर भी भरोसा नहीं आता। क्या करूँ? कैसे भरोसा बापस लीटे?

सैकड़ो बार भ्रम टूटा है – यह प्रतीति ध्यामक मालूम होती है। सच में न टूटा होगा। तुमने बिना टूटे मान लिया होगा कि टूटा। भ्रम न टूटा होगा। तुमने जल्दी बर ली होगी। कुछ और टूटा होगा और तुमने सोचा, भ्रम टूटा।

समझो एक स्त्री के प्रेम में तुम पड़े और दुख पाया। तुम सोचते हो भ्रम टूटा? गलत बात है। इम स्त्री से सम्बद्ध टूटा, भ्रम नहीं टूटा, क्योंकि भ्रम का इस स्त्री से कोई सम्बद्ध नहीं है। अब तुम्हारा मन किसी दूसरी स्त्री की तलाश कर रहा है। भ्रम जारी है। दूसरी स्त्री से सम्बद्ध बन गया, फिर दुख पाया – तुम सोचते हो, भ्रम टूटा? गलती हुई है, भ्रम नहीं टूटा। मन अब तीसरी स्त्री की तलाश कर रहा है। मन कहे जाता है कि जब तक ठीक स्त्री न मिलेगी, तब तक खोजे चले जाओ, इस बड़ी पृथ्वी पर ज़रूर कही-न-कही कोई ठीक स्त्री होगी जो तुम्हें सुख देगी। भ्रम वह है।

एक स्त्री, दो स्त्री, तीन नहीं, लाखों स्त्रियों से तुम लाखों जन्मों में सम्बद्ध बना चुके और टूट चुके, लाखों पुरुषों से सबध बन चुके, टूट चुके – भ्रम नहीं टूटा है। इस स्त्री से टूटा – स्त्री से नहीं टूटा है। इस पुरुष से टूटा – पुरुष से नहीं टूटा है। और जब तक पुरुष से न टूटे, स्त्री से न टूटे, तब तक भ्रम कायम है, भ्रम जारी है।

तुमने दस हजार सप्ते कमाने की आशा बांधी थी, कमा लिये, सोचा था, सब मिल जाएगा – कुछ भी न मिला। अब तुम सोचते हो, बोस हजार होने चाहिए।

तुम कहते हो, भ्रम टूटा? भ्रम नहीं टूटा। भ्रम कायम है। आगे सरक गया है। दस से बीस पे पहुँच गया। एक से दूसरे पे हट गया। एक आकांक्षा से दूसरी आकांक्षा पे सरक गया। लेकिन भ्रम जिदा है।

ऐसा भी हो जाता है कि तुम्हारा सारी सासार की इच्छाओं से मन ऊब गया, तब तुम स्वर्ग की इच्छा करने लगते हो। अब भी भ्रम नहीं टूटा। अब

तुमने स्वर्ग में प्रक्षेपण किया सारी आकांक्षाओं का । जो तुम्हें यहाँ नहीं मिला, वह तुम वहाँ माँगने लगे ।

ध्रम टूट जाए तो सैंकड़ों बार नहीं टूटता, एक ही बार टूट जाए तो बस समाप्त हो जाता है । जो सैंकड़ों बार भी टूट के और नहीं टूटता, समझना कि भल हो रही है ।

‘रेगजारो मे बगूलो के सिवा कुछ भी नहीं ।’

—रेगिस्तानो में आँधी और बगूलो के सिवा कुछ भी नहीं है ।

‘रेगजारो मे बगूलो के सिवा कुछ भी नहीं

साया-ए अबे-गुरेजा से मुझे क्या लेना ।’

— और ज्यादा-से-ज्यादा जो छाया मिल सकती है रेगिस्तान मे, वह आकाश मे भागती हुई बदलियों की छाया है ।

अगर यह समझ मे आ गया कि आकाश मे भागती बदलियों की छाया में कितनी देर टिकोगे, तो फिर तुम जागोगे ।

यहाँ सभी छायाएं आकाश मे भागती बदलियों की छायाएँ हैं । और जहाँ तुमने मरुद्यान समझे हैं, वहाँ भी रेगिस्तान है । और जहाँ तुमने वसत समझे हैं वहाँ भी पनझड़ छिपे हैं । जहाँ तुमने जीवन समझा है, वह केवल मौत का एक ढग है ।

‘ऐ दिल तुझे रोना है तो जी खोल कर रो ले

दुनिया से बढ़ कर न कोई बीराना मिलेगा ।’

पर ध्रम अभी टूटे नहीं है ।

। ध्रम के भी टूटने का ध्रम होता है । वही हुआ है ।

। तो क्या करो ?

बब दुबारा इस ध्रम में मत आना कि ध्रम टूट गया । इतना तो करो, शेष अपने से होगा । जब तक ध्रम न टूटे, तब तक यह ध्रम मत पालना कि ध्रम टृट गया है ।

मर पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ‘ओध करके देख लिया है, कोई सार न पाया । फिर कोष जाता नहीं ।’ तो मैं उनसे कहता हूँ, ‘ज़रूर कुछ सार पाया होगा । ज़ूठ कहते हो । नहीं तो चला जाता । यह जो तुम कहते हो कि कुछ सार न पाया, यह बुद्धिमानी बता रहे हो । लेकिन अगर कुछ सार न पाया हो तो रेन से कौन तेल निकालता रहता है ? कोई भी नहीं निकालता । दीवाल से कौन निकलने की कोशिश करता है ? कोई भी नहीं करता । एकाध बार करे भी तो सिर टकरा जाता है, रास्ते पे आ जाती है अबल, दरवाजे से निकलने लगता है ।’

लोग कहते हैं, कामवासना से कुछ भी न पाया, लेकिन फिर भी मन छूटता नहीं । ज़रूर पाया होगा ।

इस अथ को छोडो ।

उधार बुद्धिमानी काम न आएगी । जीवन के अनुभव से जो मिले वही सच है । इस उधार बुद्धिमानी के कारण असली बुद्धिमानी पैदा नहीं हो पाती ।

तुमसे मैं कहता हूँ, कोध ठीक से करो, पूरी तरह करो, होशपूर्वक करो, देखते हुए करो कि क्या मिल रहा है, मिल रहा है कुछ या नहीं । अगर कुछ भी न पाओगे तो कोध समाप्त हो जाएगा, तुम्हें समाप्त करना न पड़ेगा ।

कामवासना मे उत्तरो—पूरे होशपूर्वक । देखो कुछ मिल रहा है ? जाग के, स्मरणपूर्वक । शास्त्रो की मत सुनो । साधुओं की बकवास में मत पड़ो । तुम्हारा अनुभव ही तुम्हारे काम आएगा ।

उधार ज्ञान बाधा बन जाता है । उससे वास्तविक ज्ञान के जन्म मे असुविद्धा होती है । उधार ज्ञान हटा दो । कामवासना बुरी है—ऐसा भी मत सोचो । जब तक तुम्हारे लिए बुरी नहीं है, तब तक कैसे बुरी है ? व्यर्थ है—ऐसा भी मत सोचो । जब तक तुम्हारे अनुभव में व्यर्थ नहीं, तब तक कैसे व्यर्थ है ? कौन जाने, ठीक ही हो ।

निष्पक्ष मन से, कोरे और खाली मन से जाओ, धारणाएँ लेकर नहीं—और तब तुम अचानक हैरान होओगे जो शास्त्रो ने कहा है, वह जीवन तुमसे कह देता है । और जब जीवन का शास्त्र तुमसे कहता है, तभी क्राति घटित होती है, उसके पहले नहीं ।

आखिरी प्रश्न । आपने कहा था कि भक्त कण-कण मे भगवान को देखता है । लेकिन जिसे सिर्फ आपका पता है, कण मे बसने वाले भगवान का नहीं, उसके लिए क्या साधना होगी ?

‘तलाशो जुस्तजू की सरहदे अब खत्म होती है
खुदा मुक्षको नजर आने लगा इसाने-कामिल में ।’

अगर तुम्हें एक आदमी की पूर्णता मे भी परमात्मा नजर आने लगे तो खोज समाप्त हो गयी । अगर तुम्हें मुझमें भी नजर आने लगे तो बात समाप्त हो गयी । फिर मैं खिड़की बन जाऊँगा । तुम फिर मेरे पार देखने मे सर्वथ हो जाओगे ।

नहीं, मैं तुमसे कहता हूँ, तुम्हें मूँझ मे भी नजर न आया होगा । तुमने मान लिया होगा । तुमने स्वीकार कर लिया होगा । नजर न आया होगा । तुम्हारे भीतर अब भी कहीं सदेह खड़ा होगा । वही सदेह तुम्हारी आँख पे परदा बना रहेगा ।

अगर तुम्हें एक मे नजर आ गया, तो बात खत्म हो गयी, फिर सब मे नजर आने लगेगा ।

यह तो ऐसे ही है, जिसने सागर का एक चुल्ल पानी चख लिया, उसे पता चल गया कि सारा सागर खारा है ।

तुमने अगर मुझ में परमात्मा चख लिया तो तुमने सारे परमात्मा के सागर को चख लिया । फिर असम्भव है । यह तो कसीटी है, अगर तुम्हें एक मे नजर आया तो सब मे नजर आने लगेगा । अगर सब मे नजर न आ रहा हो तो जिस एक मे तुम्हें नजर आया, वह भी तुमने मान लिया होगा, भीतर सदेह को दबा दिया होगा, लेकिन भीतर तुम्हारी बुद्धि कहे जा रही होगी । परमात्मा, भगवान, भरोसा नहीं आता ।

तो फिर से गौर से देखो । मुझ मे उतना देखने का सवाल नहीं है, असली परदा तुम्हारे भीतर है । तुम्हारी आँख पर सदेह का परदा है, तो वृक्षों मे नहीं दिखायी पड़ता, चाँद तारों मे नहीं दिखायी पड़ता । सब तरफ वही मौजूद है, पत्ती पत्ती मे । उसके बिना जीवन हो नहीं सकता । जीवन उसका ही नाम है । या जीवन का परमात्मा नाम है । तुम 'परमात्मा' शब्द छोड़ दो भी तो हर्जा नहीं, 'जीवन' शब्द याद रखो । जहाँ जीवन दिखायी पड़े वही क्षुको ।

जीवन को ज़रा देखो । एक बीज से फूटती हुई कोपलो को देखो । बहसे हुए क्षरने को देखो । रात के सन्नाटे, चाँदन्तारों को देखो । किसी बच्चे की आँख मे झाँको । सब तरफ वही है ।

परदा तुम्हारे भीतर है । परदा तुम हो ।

‘तू-ही-तू हो, जिस तरफ देखें उठा कर आँख हम तेरे जल्दे के सिवा पेशे-नजर कुछ भी न हो ।’

मगर यह परमात्मा के हाथ में नहीं है । अगर यह उसके हाथ मे होता ता परदा कभी का उठा दिया गया होता । यह तुम्हारे हाथ में है । यह परदा तुम हो । और तुम जब तक न उठाओ अपना परदा तब तक तुम्हें कही भी दिखायी न पड़ेगा ।

और मैं तुमसे कहता हूँ, एक जगह दिखायी पड़ जाए तो सब जगह दिखायी पड़ गया । जिसे मदिर मे दिखा उसको मस्जिद मे भी दिख गया । देखने की आँख आ गयी, बात समाप्त हो गयी । जिसको एक दीये मे रोशनी दिख गयी, क्या उसे सूरज की रोशनी न दिखेगी ?

लेकिन अधा आदमी ! वह कहता है, दीये मे तो दिखती है, लेकिन सूरज की नहीं दिखती । तो हम क्या कहेंगे ? हम कहेंगे, तूने दीये की मान ली । तूने अपने को समझा-बुझा लिया । तू फिर से देख । इस धोखे मे मत पड़ ।

तो मैं तुमसे कहता हूँ, फिर से मेरी आँखो मे देखो, फिर से मेरे शून्य मे झाँको । अगर सदेह के बिना देखा, अगर भरोसे से देखा, तो एक झलक काफी है । फिर उस झलक के सहारे तुम सब जगह खोज लोगे । फिर तुम्हारे हाथ मे कीमिया पड़ गयी, तुम्हारे हाथ में कुजी आ गयी ।

इतना ही अर्थ है गुरु का कि उससे तुम्हे पहली झलक मिल जाए कि कुजी हाथ आ जाए, फिर सब ताले उस कुजी से खुल जाते हैं ।

आज इतना ही ।

नौवाँ प्रबन्धन

विनायक ११ अगस्त, १९७६, श्री राजनीति आवाय, पूरा

तरया साधनानि गायत्याषार्थ ॥ ३४ ॥
तत्तु विषयत्यागात् सगत्यागाच्च ॥ ३५ ॥
अव्यापृतभजनात् ॥ ३६ ॥
लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात् ॥ ३७ ॥
मुख्यतत्त्वं महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा ॥ ३८ ॥
महत्सगत्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥ ३९ ॥
लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥ ४० ॥
तरिभरतज्जने भेदाभावात् ॥ ४१ ॥
तदेव साध्यता तदेव साध्याताम् ॥ ४२ ॥

हृदय का आनंदोलन है भक्ति

पहला सूत्र 'तस्या साधनानि गायन्त्याचार्या ।'

जिनने भी हिन्दी में अनुवाद हैं, वे सभी कहते हैं 'आचार्यंगण उस भक्ति के साधन बतलाते हैं ।' मूल सूत्र कहता है आचार्यंगण उस भक्ति के साधन गाते हैं । और भेद थोड़ा नहीं है । बतलाना बतलाना ही है—गाना बात और । गाने में कुछ खूबी छिपी है ।

भक्ति बोलती नहीं—गाती है ।

भक्ति बोलती नहीं—नाचती है ।

नृत्य में और गीत में ही उसकी अभिव्यक्ति है ।

बैदात बोलता है, भक्ति गाती है ।

गाने का अर्थ हुआ भक्ति का सम्बन्ध तर्क से नहीं, विचार से नहीं—हृदय और प्रेम से है । भक्ति का सम्बन्ध कुछ कहने से कम, कहने के दृग से ज्यादा है ।

भक्ति कोई गणित की व्यवस्था नहीं है—हृदय का आनंदोलन है । गीत भै प्रगट हो सकती है ।

भाषा तो वैसे ही कमज़ोर है । फिर भाषा में ही चुनता हो तो भक्ति गद्य को नहीं चुनती, पद्म को चुनती है । ऐसे तो पद्म से भी कहाँ कहा जा सकेगा—लेकिन शब्दों के बीच में लय को समाया जा सकता है । शब्द से न कहा जा सके, लेकिन शब्दों के बीच समाहित धुन से शायद कहा जा सके ।

तो भक्त के जब शब्द सुनो तो शब्दों पर बहुत ध्यान मत देना । भक्त के शब्दों में उतना अर्थ नहीं है जितना शब्दों की धुन में है, शब्दों के सरीत में है । शब्द अपने आप में तो अर्थहीन हैं । जिस रंग में और जिस रस में लपेट कर शब्दों को भक्त ने पेश किया है, उस रंग और रस का स्वाद लेना ।

लेकिन अक्सर अनुवाद में मूल खो जाता है, और कभी-कभी तो इतनी सरलता से खो जाता है कि ख्याल में भी नहीं आता । क्योंकि हम सोचते हैं कि इसमें क्या फर्क पड़ता है कि आचार्यों ने गाया कि आचार्यों ने कहा, बात तो एक ही है ।

बात ज्ञारा भी एक ही नहीं है—बात बड़ी भिन्न है। आचार्यों ने गाया, भक्ति के आचार्यों ने गाया—कहा नहीं। और जोर धून पर है, सगीत पर है। जोर शब्द पर नहीं, शब्द के अर्थ पर नहीं, शब्द की तर्कनिष्ठा पर नहीं।

पक्षियों के गीत जैसे है भक्तों के शब्द। तुम उन्हें सुन के आनंदित होते हो। कोई अर्थ पूछे तो न बता सकोगे। लेकिन अर्थ की चिता ही कौन करता है, जिसे आनंद मिलता हो। आनंद अर्थ है।

बोगरेजी के महाकवि 'शैली' से किसी ने पूछा कि तुम्हारे एक गीत को मैं पढ़ रहा हूँ, समझ में नहीं आता, मुझे अर्थ समझा दो। शैली ने कष्टे बिचकाये, कहा, 'मुश्किल। जब लिखा था तब दो आदमी जानते थे, अब एक ही जानता है।'

उसने पूछा, 'वे कौन दो आदमी थे?' तो मैं दूसरे से पूछ लूँ, अगर तुम भूल गये हो। लेकिन तुमने ही लिखा है तो तुम अर्थ कैसे भूल गये।'

शैली ने कहा, 'जब लिखा, तब मैं और परमात्मा जानते थे, अब सिर्फ परमात्मा ही जानता है। मैं तुम्हें न बता सकूँगा। मुझे ही याद नहीं। जैसे एक खबाब देखा था। भनक रह गयी है कान में। उस भी रुद्ध गया है कहीं गूँजता, लेकिन अर्थ खो गये हैं।'

फिर शैली ने कहा, 'अर्थ का करोगे भी क्या? गुनगुनाओ!'

गीत गाने के लिए है। जो गीत में अर्थ देखने लगा, वह वैसा ही नासमझ है, जो जा के फूल से पूछे कि तेरा अर्थ क्या। फूल का रस देखो! रग देखो! फूल की गध देखो! अर्थ पूछते हो?

परमात्मा अर्थनीत है। इसलिए भक्तों ने कहा नहीं—गाया। क्योंकि कहने में अर्थ जरा ज़रूरत से ज्यादा हो जाता है। गाने में अर्थ गौण हो जाता है, रस प्रमुख हो जाता है।

भक्ति है रस। भक्ति कोई ज्ञान नहीं, कहने-सुनने की बात नहीं—दूबने, मिटने की बात है।

इसलिए मैं अनुवाद करूँगा 'आचार्यगण उस भक्ति के साधन गाते हैं।' गाने में ही साधन को बतलाते हैं। अगर तुमने गाने को समझ लिया, अगर उनके गीत के रस को पकड़ लिया, तो उन्होंने सब बना दिया। क्योंकि फिर वे जो साधन बतलाते हैं, वे साधन भी क्या हैं? वे साधन हैं। भजन, कीर्तन, उसकी कथा में रस, श्रवण। वे सब उसी रस के विस्तार हैं।

'बहु भक्ति विषय-त्याग और सग-त्याग से सम्पन्न होती है।'

इस सूत्र को बारीकी से समझना, क्योंकि योग भी यही कहता है। तो फिर योग और भक्ति में भेद कहाँ होगा? योग भी कहता है विषय-त्याग और सग-त्याग से। विषयों को छोड़ना है। विषयों की आसक्ति छोड़नी है। त्यागी भी

यही कहता है और भक्त भी यही कहता है। दोनों के अर्थ तो एक नहीं हो सकते, क्योंकि दोनों के आद्याम अलग हैं। शब्द एक होये, अर्थ तो अलग हैं।

तो थोड़ा समझें।

(त्याग दो तरह के हो सकते हैं। एक तो त्याग होता है बिना भूमिका बदले भाग जाना। एक आदमी घर में है, गृहस्थ है। वह अपनी चेतना को तो नहीं बदलता, घर छोड़ देता है, पत्नी-बच्चे छोड़ देता है, जगल की तरफ चला जाता है। भूमिका नहीं बदली, चेतना का तल नहीं बदला - स्थान बदल लिये। स्थिति नहीं बदली - स्थान बदल लिया। मन स्थिति नहीं बदली - आसपास की जगह बदल ली। वह जा के जगल में बैठ जाए, जल्दी ही बहाँ फिर गृहस्थी खड़ी हो जाएगी। क्योंकि गृहस्थी का जो 'ब्लू प्रिंट' है, वह उसकी चैतन्य की दशा में है, वह उसे साथ ले आया। वहाँ भी गृहस्थी इसी ने बनायी थी। वह कुछ आकर्षक आकाश से न उतर आयी थी। किसी गूँन्य से उसका आविर्भाव न थुआ था। इसके ही चैतन्य में, इसकी ही चेतना के भीतर छिपे बीज थे - वे प्रगट हुए थे।)

पत्नी आकाश से नहीं आती - पति के भीतर छिपे राग से खिचती है। पति आकाश से नहीं आता - पत्नी के भीतर छिपे राग से आता है। तुम उसी को अपने पास बुला लेते हो जिसकी गहन आकांक्षा तुम्हारे भीतर छिपी है। वही तुम्हे भिल जाता है जो तुम चाहने हो। चाहे तुम्हें पता न हो, चेतन हो जेतन हो, होश में माँगा हो बेहोशी में माँगा हो - तुम्हे वही मिलता है जो तुमने माँगा है। तुम्हारे पास वही सरक के चला आता है जो तुमने चाहा है।

तुम चुबक हो। और तुम्हारा चुबक तुम्हारी चेतना की स्थिति में है। अब अगर एक चुबक लोहे के कणों को खीच लेता हो, फिर लोहे के कणों से परेशान हो जाए, भाग जाए जगल - क्या फर्क पड़ेगा? चुबक चुबक रहेगा। वहाँ भी लोहे कणों को खीचेगा। यह भी हो सकता है कि लोह-कण पास न हो, तो चुबक कुछ भी न खीच पाये, लेकिन इससे क्या चुबक चुबक न हो जाएगा? चुबक चुबक ही रहेगा। लोह-कण होये तो खीच लेगा, न होये तो न खीचेगा, लेकिन इससे कोई चुबक के जीवन में क्रांति न हो जाएगी।

तो एक तो त्याग है जो पलायनबादी का है, भगोड़े का है। भक्त को उस त्याग में कोई रस नहीं है। वह त्याग ही नहीं है। उसको त्याग ही कहना पहले तो गलत है। वह छोड़ता है त्याग नहीं; भागता है, भूक्त है।

फिर एक त्याग है चेतना के तल को बदलने से तुम जैसे हो अभी उससे ऊपर उठते हो। जैसे ही ऊपर उठते हो, तुम्हारे आसपास का सारा सासार बैसा ही बना रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता - तुम वैसे ही नहीं रह गये। संसार में रहो तो भी सासार अब तुम में नहीं है। तुम चुबक न रहे। तुमने चुबकत्व छोड़ दिया।

अब लोहे के टुकडे पास ही पड़े रहें, पुराने समय में खीचे थे जब तुम चुबक थे, अब भी पास पड़े रहेंगे, लेकिन अब तुम चुबक नहीं हो — अब तुम में खीच न रही, आकर्षण न रहा । इसका नाम ही सग-त्याग है । पास तो हैं, लेकिन तुम बड़े दूर हो गये । घर में ही हो, लेकिन घर में न रहे । दुकान पर बैठे हो, दुकान में न रहे । ससार से भागना एक बात है — वह त्याग नहीं है । ससार से उठना दूसरी बात है — वह त्याग है ।

ऊपर उठो ॥ भूमिका बदलो ॥

इसलिए भक्तों ने भागने का आश्रह नहीं किया ।

जीवन को न तोड़ना है, न मिटाना है, न बदलना है — चैतन्य के रूप को नया करना है । तुम्हारे भीतर की ज्योति को थोड़ा बड़ा करना है तुम थोड़े ऊपर खड़े हो कर देख सको, तुम्हारी दृष्टि का विस्तार थोड़ा बड़ा हो जाए ।

तो चेतना के एक-एक तल से दूसरे तल पर जाना । चेतना के एक सोपान से दूसरे सोपान पर जाना । वही त्याग है ।

'वह भक्ति विषय त्याग और सग-त्याग से सम्पन्न होती है ।' — तो तुम भक्त हो ।

इसे हम ऐसा समझे कि तुम जहाँ खड़े हो, वहाँ ससार है । अगर तुम स्थान को बदल लो, तुम ससार में ही कही दूसरी जगह खड़े हो जाओगे । परमात्मा से तुम्हारी दूरी उतनी ही रहेगी जितनी पहले थी । हिमालय परमात्मा से उतना ही दूर है जितना तुम्हारी दुकान और बाजार की जगह । हिमालय परमात्मा के जरा भी पास नहीं ।

लेकिन अगर तुम अपनी चेतना के तल को बदलो तो तुम ससार से दूर होने लगते हो और परमात्मा के पास होने लगते हो ।

एक हिमालय तुम्हे चढ़ाना है ज़रूर — लेकिन वह हिमालय तुम्हारे भीतर की शीतलता का है, वह तुम्हारे भीतर की शाति का है, वह तुम्हारे भीतर के मौन का है । एक गौरीशकर की यात्रा करनी है ज़रूर — लेकिन वह गौरीशकर बाहर नहीं है, वह तुम्हारी अन्तरात्मा का शिखर है । भीतर ऊपर ज़रूर है । बाहर तो जहाँ हो ॥ बाहर से कुछ भी भ्रेद नहीं पड़ता ।

'विषय-त्याग और सग-त्याग से भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति सध्ती है ।'

भक्ति का अर्थ है परमात्मा और तुम्हारे बीच की दूरी कम हो जाए । भक्ति तुम्हारे और परमात्मा के बीच की दूरी के कम होने का नाम है । दूरी कम होती जाए, तो भक्ति सधन होती जाती है । एक दिन दूरी पूरी मिट जाती है, अनन्यता हो जाती है, तो भक्ति भगवान हो जाता है, भगवान भक्त हो जाता है । तब 'हि' नहीं रह जाती । तब दोनों किनारे खो जाते हैं एक में ही ।

इसलिए भक्त के त्याग की सूक्ष्मता को ख्याल में रखना । साधारण त्यागी का त्याग सीधा-साफ़ है, भक्त का त्याग बड़ा सूक्ष्म है । (साधारण त्यागी भागता है; भक्त स्वप्नान्तरित होता है ।) इसलिए भक्त को शायद तुम पहचान भी न पाओ—साधारण त्यागी को कोई भी पहचान लेगा । उसकी पहचान बड़ी ऊपरी है, घर-द्वार छोड़ दिया, काम-धधा छोड़ा । जिसे तुम सासार कहते थे, उसे छोड़ दिया, जगल में चला गया । इसे पहचानने में अडचन न आएगी । भक्त जहाँ है वही है । चेतन्य बदलता है । स्वप्नान्तरण बड़ा सूक्ष्म है और भीतरी है । ऊपर से लो बैसा ही रहता है, कानोंकान किसी को खबर नहीं होती । लेकिन भीतर एक हीरे का जन्म होने लगता है । भीतर एक निखार आता है । चेतना को लो थमती है, अकेप जलती है । इसे देखने के लिए तुम्हे भी थोड़ा-सा भीतर जाँकना पड़े ।

और जब तक ऐसा न हो पाए तब तक तुम्हारी जिदगी कहने को ही जिदगी है, नाममात्र की जिदगी है । जरा भी मूल्य नहीं उसका—दो कोड़ी भी मूल्य नहीं । चाहे तुम्हारी जिदगी सिकंदर की जिदगी ही क्यों न हो, फिर भी दो कोड़ी मूल्य नहीं । क्योंकि मूल्य तो अन्तर्यामा का होता है । तुमने बाहर क्या किया, इससे कुछ मूल्य का सम्बन्ध नहीं—तुम भीतर क्या हए ।

‘भटक के रह गयी नजरे खला की बुसअत मे

हरीम-शाहिदे-रवना का कुछ पता न मिला

तबील राहगुजर खत्म हो गयी, लेकिन

हनोज अपनी मुसाफत का मुन्तहा न मिला ।’

—जैसे शून्य की विशालता मे आँखें भटक जाएं.. ।

‘भटक के रह गयी नजरे खला की बुसअत मे ।’

शून्य ने तुम्हे धेरा है । विराट है शून्य । रिक्तता है एक । उसमे आँखें खो के रह गयी हैं ।

‘हरीम-शाहिदे-रवना का कुछ पता न मिला ।’

प्रेमी के घर का, प्रेयसी के घर का कुछ भी पता नहीं चलता, कहाँ है । एक रैगिस्तान में—रिक्तता के—खो गये हो ।

‘तबील राहगुजर खत्म हो गयी ।’

कठिन थी राह जिदगी की, वह भी खत्म हो गयी...

‘लेकिन, हनोज अपनी मुसाफत का मुन्तहा न मिला ।’

लेकिन आज तक यह कीक से पता न चला कि हम यात्रा क्यों कर रहे थे । यात्रा खत्म भी हो गयी, कठिन भी बहुत थी, लेकिन अब तक यह भी साफ न हो सका कि मुद्दा क्या था, मंजिल क्या थी, जाते कहाँ थे । प्रेयसी के या प्रेमी के घर की कोई झलक भी न मिली ।

जब तक तुम्हारे चैतन्य की भूमिका न बदले, तब तक यही कथा है सभी की एक रिक्तता में खो जाते हैं, जैसे कोई भूली-भटकी नदो है और रेगिस्तान में सभा जाए, और सागर का कोई रास्ता न मिले, तपती धूप में, जलती आग में, बूँद करके, तड़फ-तड़फ के उड़ जाए, भाष बन जाए

‘हरीमे-शाहिदे-रजना का कुछ पता न मिला।’

—सागर में मिलने का, सागर के साथ मिलन का, सागर के साथ एक हो जाने का कोई पता न मिले—ऐसी ही साधारण जिंदगी है।

जिसे तुम भोगी की जिंदगी कहते हो, उसे भोगी की जिंदगी कहना ठीक नहीं, भोग जैसा वही कुछ भी नहीं है। भक्त भोगता है, भोगी क्या भोगेगा? (जिसको तुम भोगी कहते हो, वह तो भोग के नाम पर सिफं घृके खाता है। भोग की सोचता है, माना, भोगता कभी नहीं। भोग तो उसी के लिए है जिसे भगवान के हाथ का सहारा मिला। भोग मिर्क भगवान का है। जिसने उस स्वाद को न जाना, वह केवल खिखरने और मिटने और रोज़ मरने को ही जिंदगी समझ रहा है।

नहीं, ऐसी जिंदगी में न तो किसी अर्थ का पता चलेगा। ऐसी जिंदगी में मजिल की कोई खबर न मिलेगी। चले थे क्यों, जाते थे कहाँ, थे क्या—सब धृष्टला-धृष्टला, सब औंधेरा-औंधेरा रहेगा। पर जिंदगी की राह बड़ी कठिन है और परिणाम कुछ भी हाथ न आएगा।

जिसे तुम भोगी कहते हो, उसे वस्तुत त्यागी कहना चाहिए। किसी दिन अगर भाषा का फिर से सशोधन हो तो जिसको तुम भोगी कहते हो, उसको त्यागी कहना चाहिए, और जिसको त्यागी कहते हैं, उसको भोगी कहना चाहिए। क्योंकि त्यागी ही जानता है कि भोग क्या है। और भोगी तो सिफं तड़फता है, सिफं सोचता है, सपने बनाता है, बड़े इन्द्रधनुषी सपने बनाता है, बड़े रगीन—भगव पकड़ो तो हाथ मे राख भी हाथ नहीं आती, खाली हाथ खाली के खाली रह जाते हैं।

‘अपने सीने से लगाये हुए उम्मीद की लाश

मूहतें जीस्त को नाशाद किया है मैने।’

बस एक लाश लगाये हुए हैं उम्मीद की छाती से—वह भी लाश है आशा की कि मिलेगा कुछ, मिलेगा कुछ।

‘अपने सीने से लगाये हुए उम्मीद की लाश।’

सब आशा मुर्दा है, कभी कुछ मिलता नहीं—बस मिलने का ख्याल है, भरोसा है आज नहीं मिला, कल! कल भी यही होगा। और तुम्हारी आशा फिर आगे कल के लिए स्थगित हो जाएगी। पीछे कल भी यही हुआ था। तब तुमने आज पर छोड़ दिया था, आज भी वही हो रहा है। ऐसे अण-क्षण करके जीवन रिक्त होता चला जाता है, और तुम उम्मीद की लाश को लिये होते किरते हो।

तुमने कभी देखा, बदरो में अक्सर हो जाता हैः छोटा बच्चा मर जाता है तो बदरिया उसकी लाश को लिये सप्ताहों तक छाती से चिपटाये धूमती रहती है। तुम्हें देख के उसे, हँसी आयेगी। और जिस दिन तुम अपनी तरफ देखोगे, उस दिन तो तुम्हे भरोसा ही न आएगा कि उम्मीद की लाश तो तुम मुद्दती से, जिदगियों से..। वह बदरिया का बच्चा तो कभी जिदा भी था, उम्मीद कभी भी जिदा न थी। वह सदा से ही लाश है। लाश होना उसका स्वभाव है।

‘अपने सीने से लगाये हुए उम्मीद की लाश
मुद्दतें जीस्ट को नाशाद किया है मैने।’

—और इस उम्मीद की लाश के कारण न मालूम कितने काल से जिदगी को व्यथं ही खिल करता रहा हैं।

आशा बनाते हो, आशा फिर बिखरती है, टूटती है— दुख पाते हो। फिर आशा बनाते हो, फिर बनाते हो ताश के पत्तों का घर— फिर हवा का एक झोका, और सब गिर जाता है। फिर बहाते हो कागज की एक नाव— फिर जरा-सी लहर, और नाव ढूब जाती है। लाश को ढोते हो, उसका बजन भी, उसकी दुर्गंध भी, उसका बोझ भी— और फिर, उसके कारण जिदगी रोज-रोज खिल होती है, उदास होती है।

तुम निराश क्यों होते हो बार-बार?

—आशा के कारण।

धन्यआगी है वे जिन्होने आशा छोड़ दी, फिर उन्हे कोई निराश न कर सकेगा। जिन्होने आशा ही छोड़ दी, उनके निराश होने की बात ही समाप्त हो गयी।

भोगी आशा में जीता है। आशा मुर्दा है। उससे न कभी कुछ पैदा हुआ न कभी कुछ पैदा होगा— आशा बाँझ है, उसकी कोई सत्तान नहीं।

तो क्या तुम सोचते हो, भक्त कहते हैं कि निराशा मे जियो? नहीं, भक्त कहते हैं कि आशा और निराशा तो एक ही सिक्के के पहलू हैं— तुम परमात्मा में जियो।

परमात्मा अभी और यहाँ है, आशा, कल और वहाँ, कहीं और। अगर टीक से समझो तो आशा का नाम ही ससार है। ससार सदा वहाँ, कहीं और, परमात्मा अभी और यहाँ, इस क्षण। इस क्षण तुम्हें बेरा है। इस क्षण सब तरफ से उसने तुम्हें बेरा है। हवाओं के झोकों में, सूरज की किरणों में, वृक्षों के साथों में— उसने ही तुम्हें बेरा है।

तुम्हारे चारों तरफ जो लोग बैठे हैं, वे भी परमात्मा के रूप हैं, उन्होने तुम्हें बेरा है। वही तुम्हें पुकार रहा है। वही तुम्हारे भीतर इकास बन के चल रहा है।

परमात्मा अभी है, परमात्मा कभी उधार नहीं।

स्वामी राम कहते थे परमात्मा नगद है। वह अभी और यही है। ससार उधार है, वह कल और वहाँ है। कल और वहाँ को भोगोगे कैसे? भविष्य को कोई कैसे भोग सकता है, नहो। भविष्य को भोगने का उपाय कहाँ है? भविष्य है नहीं अभी, तुम उसे भोगोगे कैसे? केवल वर्तमान भोगा जा सकता है।

ससार के त्याग का अर्थ है भविष्य का त्याग। समार के त्याग का अर्थ है भविष्य के नाम पर जिस भोग को हम स्थगित करते जाते थे, उसका त्याग। ससार के त्याग का अर्थ है इस क्षण में – इस जीवत क्षण में – जागना। वही से भोग शुरू होता है।

भक्त भगवान को भोगता है। ससारी केवल भोगने की सोचता है। तुम सोचने के ध्रम में मत आ जाना। वस्तुत सोचता वही है जो भोग नहीं पाता है। विचार वही करता है जो भोग नहीं पाता है। योजना वही बनाता है जो भोग नहीं पाता है। कल की कल्पना वही सँजोता है जो भोग नहीं पाना है। जो अभी भोग रहा हो, वह कल की बात ही क्यों करे?

तुमने कभी देखा, तुम जितने दुखी होते हो, उतनी भविष्य की ज्यादा विचारणा करते हो! जितने मुखी होते हो, उतना ही भविष्य छोटा हो जाना है, वर्तमान बड़ा हो जाता है। अगर कभी-कभी एक क्षण को तुम आनंदित हो जाते हो तो भविष्य खो जाता है, वर्तमान ही रह जाता है।

/ ससार दुख का फैलाव है, परमात्मा, आनंद की अनुभूति।

जो व्यक्ति दुख में जी रहा है, वह कहीं से भी सुख पाने की चेष्टा करता है, टटोलता है – विषयो में, वासनाओं में, धन में, सपदा में, शरीर में। वह जगह-जगह टटोलता है। दुखी है! कहीं से भी मुख का झरना हाथ आ जाए! और जितनी देर लगती जाती है, उतना व्याकुल होता जाता है। जितना व्याकुल होता है, बेचैन होता है – उतना ही होश खोता चला जाता है, उतना बेहोशी से टटोलता है। कभी यह पूछता ही नहीं अपने से कि 'जहाँ मैं टटोल रहा हूँ, वही मैंने खोया है, पहले यह तो पूछ लूँ कि मैंने खोया कहाँ, पहले यह तो ठीक मैं पूछ लूँ कि मेरा आनंद कहाँ भटक गया है।'

कोई धन में खोज रहा है, बिना पूछे। धन में खोया है आनंद को? अगर धन में खोया नहीं तो धन से पा कैसे सकोगे? कोई पद में खोज रहा है, बिना पूछे। पद में खोया है? अगर पद में खोया नहीं तो पा कैसे सकोगे?

और इसके पहले कि दुनिया की बड़ी यात्रा पर जाओ, अपने भीतर तो खोज लो। इसके पहले कि तुम पहोसियों के घर में खोजने लगो कोई चीज जो खो गयी है, अपने घर में तो खोज लो। बुद्धिमानी यही कहेगी पहले अपने घर में खोज लो।

यहाँ न मिले तो फिर पड़ोसियों के घर में खोजना, फिर चाँद-सितारों पे खोजने जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम चाँद-सितारों पे खोजते रहो और जिसे खोया था, वह घर मे पड़ा रहे।

निकट से खोज शुरू करो। निकटतम से खोज शुरू करो। निकटतम तुम हो। और जिसने भी स्वयं पर हाथ रखा, उसका हाथ परमात्मा पे पड़ गया। जिसने भीर से अपनी घड़कन सुनी, उसने परमात्मा की घड़कन सुनी। जो भीतर गया, वह मंदिर में पहुँच गया।

‘वह भक्ति विषय-त्याग, सग त्याग से सम्पन्न होती है।’

क्या भतलब हुआ विषय-त्याग, सग-त्याग से? इतना ही भतलब हुआ कि विषय में मत खोजो, वासना में मत खोजो। पहले अपने मे खोज नो। और जिसने भी अपने मे खोजा, फिर कहीं और खोजने न गया — मिल ही गया। इससे अपवाद कभी हुआ नहीं। यह शाश्वत नियम है। ‘एस धम्मो सनतनों’, कि जिसने अपने मे खोजा, पा ही लिया। हाँ, अगर खोजने में ही रस हो तो भूल के अपने में मत खोजना। अगर खोजो ही बने रहने मे रस हो तो भूल के अपने में मत खोजना, क्योंकि वहाँ खोज समाप्त हो जाती है। वहाँ मिल ही जाता है। अगर खोजने मे ही रस हो तो बाहर भटकते रहना। अगर पाना हो तो बाहर जाना व्यर्थ है। जो खोज रहा है, जो चैतन्य यात्रा पर निकला है, उसी चैतन्य मे मजिल छिपी है।

‘विषय-त्याग और सग-त्याग से सम्पन्न होती है’ — इसलिए कि वहाँ जब यात्रा बढ़ हो जाती है तो तुम अपने पर लौटने लगते हो। जो व्यक्ति बाहर नहीं खोजता, वह कहाँ जाएगा? वह अपने घर आ जाएगा।

कोलम्बस अमरीका की खोज पर गया। तीन महीने का उसके पास सामान था, वह चुक गया। केवल तीन दिन का सामान बचा, और अभी तक कोई अमरीका की शलक नहीं, किनारो का कोई पता नहीं, जमीन कितनी दूर है, कुछ अनुमान भी नहीं बैठता। साथी घबड़ा गये। रोज सुबह पता लगाने के लिए वे कबूतर छोड़ते थे, क्योंकि अगर कबूतरो को कहीं भूमि मिल जाए तो वे वापस न लौटेंगे। लेकिन वे कबूतर थोड़ी-बहुत दूर चक्कर काट कर वापस जहाज पे लौट आते, कहीं भूमि न मिलती। पानी मे तो ठहर नहीं सकते। उनका लौट आना इस बात की खबर होता कि उन्हे कोई जगह न मिली।

जिस दिन तीन दिन का भोजन रह गया, उस दिन कबूतर छोड़े — बड़ी उदासी में थे, डरते थे कि कहीं लौट न आएं, क्योंकि जब खात्मा है। अगर तीन दिन के भीतर जमीन नहीं मिलती तो गये। लौट भी नहीं सकते, क्योंकि तीन महीने का रास्ता पार कर आये। लौट के भी तीन महीने लज्जे पहुँचने मे। तो पीछे जाने का तो कोई व्यर्थ नहीं है, आगे मूल्य मालूम पहुँचता है।

लेकिन उस दिन कबूतर बापस नहीं लौटे । नाच उठे आनंद से । कबूतरों को भूमि मिल गयी ।

बासनाएँ तुम्हारे भीतर से बाहर जाती हैं । विषय और सग-त्याग का इतना ही अर्थ है वहाँ से भूमि हटा लो, ताकि उनको बाहर ठहरने की कोई जगह न मिले – तुम्हारा चैतन्य तुम्हीं पर बापस लौट आये । कही बाहर ठहरने की जगह मत दो । अगर बाहर ठहरने की जगह दी तो यहीं तो तुम करते रहें हो अब तक, यहीं भटकाव हो गया है, यहीं ससार है ।

विषय से कोई विरोध नहीं है । धन से क्या विरोध ? पद से क्या विरोध ? कोई निंदा नहीं है । सिफे इतनी ही बात है कि वहाँ अगर चेतना का पक्षी बैठ जाए तो फिर वह स्वयं पर नहीं लौटता । और तुम बाहर जितने उलझते जाते हो, उतना ही अपने पे आना कठिन होता जाता है ।

इसलिए भक्ति की बड़ो ठीक व्याख्या की है 'विषय-त्याग और सग-त्याग स भक्ति सम्पन्न होती है ।' पक्षियों को बैठने की जगह नहीं रह जाती – चैतन्य के पक्षी अपने पर ही लौट आते हैं ।

(अगर बासना न हो तो विचार क्या करोगे ?

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, 'विचारों से बड़े पीड़ित हैं । विचारों को बद करना है ।' मैं उनसे पूछता हूँ, 'विचारों से पीड़ित हो, यह बात ठीक नहीं – बासना से पीड़ित होओगे ।'

किस बात के विचार आते हैं ? तो कोई कहता है, धन के विचार आते हैं, कोई कहता है, कामवासना के विचार आते हैं । तो विचार थोड़े ही असली सबाल है । विचार तो बासना का अनुपगी है, छाया की तरह है । जब तक तुम्हारी कामवासना मेरस भरा हुआ है, जब तक तुम्हारी आशा की लाश छाती से लगी हुई है, जब तक तुम कहते हो कि कामवासना से सुख मिलने वाला है – तब तक कामवासना के विचार आते रहेंगे । जिस दिन तुम कहोगे कि कामवासना मेर कोई सुख न रहा, उसी दिन कामवासना के विचार आने बद हो जाएँगे ।

विचारों को थोड़े ही हटाना पड़ता है । विचारों को तो हटा-हटा के भी तुम न हटा पाओगे, क्योंकि अगर भूल मोजूद रहा, जड़ मोजूद रही, तो पने तुम काटते रहो, शाखाएँ काटते रहो – नयी निकल आएँगी ।

बासना की जड़ कट जाए तो विचार के पत्ते अपने-आप आने बद हो जाते हैं ।)

‘अखड़ भजन से भी भक्ति सम्पन्न होती है ।’

‘विषय-त्याग, सग-त्याग से – फिर अखड़ भजन से ।

अखड़ भजन का अर्थ बैसा नहीं है जैसा तुमने समझ रखा है कि लोग

लाउडस्पीकर लगा के बैठ जाते हैं चौबीस घटे, मोहल्ले-भर के लोगों को परेशान कर देते हैं अखड़ भजन कर रहे हैं। अखड़ उपद्रव है यह, अखड़ भजन नहीं है। और पढ़ोसियों ने क्या बिगड़ा है? तुम्हे भजन करना हो करो, दूसरों को क्यों परेशान किये हो? सोना भी मुश्किल कर देते हो।

और यह तो धार्मिक देश है, इसमें अगर कोई अखड़ भजन-कीर्तन करे और कोई पढ़ोसी एतराज करे तो उसको लोग अधार्मिक समझते हैं। वे तो तुम पे कृपा करके माइक लगाये हुए हैं ताकि तुम्हारे कानों में भी भजन-कीर्तन का उच्चार पड़ जाए, तो शायद तुम्हारी भी भ्रक्ति हो जाए।

अखड़ भजन का क्या अर्थ है?

अखड़ भजन का अर्थ है तुम्हारे भीतर परमात्मा की स्मृति अविच्छिन्न हो, विच्छिन्नता न आए। कोई राम-राम, राम-राम जपने का सवाल नहीं है। क्योंकि अगर तुम राम-राम भी जपो, कितने ही जोर से जपो, तो भी दो राम के बीच मे खण्ड तो आ ही जाएगा। इसलिए वह अखड़ तो नहीं होगा। वह तो कोई रास्ता न हुआ। तुम राम-राम कितनी ही तेजी से जपो, एक राम और दूसरे राम के बीच मे जगह खाली छूट जाएगी, उतनी देर को परमात्मा का स्मरण न हुआ। इसलिए राम-राम जपने से अखड़ भजन का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

अखड़ भजन का अर्थ तो, अगर अखड़ होना है भजन को, तो विचार से नहीं सध सकता यह काम, निविचार से सधेगा। अगर अखड़ होना है तो विचार का काम न रहा, क्योंकि विचार तो खड़ित है। एक विचार और दूसरे विचार के बीच मे जगह है, अविच्छिन्न धारा नहीं है। अविच्छिन्न धारा तो स्मरण की हो सकती है। स्मरण का शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जैसे मौ भोजन बनाती है, बच्चा आसपास खेलता रहता है, लेकिन उसे स्मरण बना रहता है वह कहीं बाहर तो नहीं निकल गया, आगन के बाहर तो नहीं उत्तर गया, सड़क पे तो नहीं चला गया। ऐसा वह बीच-बीच मे देखती रहती है। अपना काम भी करती रहती है और भीतर एक सातत्य स्मृति का बना रहता है।

कबीर ने कहा है, जैसे कि पनधट से किरणी पानी भर के घर लौटती हैं, आपस में बात करती हैं, हँसती हैं, मजाक करती हैं — घडे उनके सिर पे सम्हले रहते हैं, उनको हाथ भी नहीं लगाती, स्मरण बना रहता है कि उन्हे सम्हाले हैं। बात चलती है, चर्चा होती है, हँसी-मजाक होती है — लेकिन भीतर एक सतत स्मृति बनी रहती है घडे को सम्हालने की।

जनक के दरबार में एक सन्यासी आया और उसने जनक को कहा कि मैंने सुना है कि तुम परम ज्ञान को उपलब्ध हो गये हो। लेकिन मुझे शक है, इस

धन-दीलत में, इस सुख-सूचिया में, इन सुन्दर स्त्रियों और नर्तकियों के बीच में, इस सब राजनीति के जाल में, तुम कैसे उसका अखड़ा स्मरण रखते होओगे ।

जनक ने कहा, 'आज साँझ उत्तर मिल जाएगा ।'

सोश्री एक बड़ा जलसा था और देश की सबसे बड़ी नर्तकी नाचने आयी थी। सम्राट ने सन्यासी को बुलाया। चार नगी तलवारे लिये हुए सिपाही उसके चारों तरफ कर दिये। वह थोड़ा धबडाया। उसने कहा, 'क्या मतलब ? यह क्या हो रहा है ?'

जनक ने कहा, 'धबडाओ मत। यह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है ।'

और हाथ में उसको तेल से लबालब भरा हुआ पात्र दे दिया कि जरा हिल जाए तो तेल नीचे गिर जाए, एक बूँद और न जा सके, इतना भरा हुआ। और उसने कहा कि नर्तकी का नृत्य चलेगा, तुम्हे सात चक्कर उस पूरे स्थान के लगाने हैं। बड़ी भीड़ होगी। हजारों लोग इकट्ठे होंगे। अगर एक बूँद भी तेल नीचे गिरा तो ये चार तलवारे नगी तुम्हारे चारों तरफ हैं, ये फौरन तुम्हे टुकड़े-टुकड़े कर देगी।

उस सन्यासी ने कहा, 'बाबा माफ करो। प्रश्न अपना बापस ले लेते हैं। हम तो सत्सग करने आये थे, जिज्ञासा ले के आये थे, कोई जान नहीं गाँवाने आये हैं। तुम जानो, तुम्हारा ज्ञान जाने। हो गये होओगे नुम उपलब्ध ज्ञान का, हमें कुछ सन्देह भी नहीं है। पर हमें छोड़ो।'

पर जनक ने कहा, 'अब यह न हो सकेगा। प्रश्न जब पूछ ही लिया तो उत्तर बरूरी है।'

सम्राट था, सन्यासी के भाषने का कोई उपाय न था। सुन्दर नर्तकी नाचती थी। हजार बार सन्यासी के मन में भी हुआ कि एक तरफ आँख उठा के देख लूँ, लेकिन एक बूँद तेल गिर जाए तो वे चारों तलवारें उसे काट के टुकड़े-टुकड़े कर देंगी। उसने सात चक्कर लगा लिये, एक बूँद तेल न गिरा। आँखे उसकी तेल पर ही सधी रही।

पूछा जनक ने, 'उत्तर मिला ?'

उसने कहा, 'उत्तर मिल गया। और ऐसा उत्तर मिला कि मेरा पूरा जीवन बदल गया। पहली दफा कोई चोज़ इननी देर तक सतत रही, अखड़ रही—एक स्मृति कि बूँद तेल न गिर जाए।'

सम्राट ने कहा, 'तेरे तरफ चार तलवारे थी, मेरे पास किननी तलवारें हैं, मेरे चारों तरफ — तुझे पता नहीं। तेरी जिदगी तो थोड़े स ही खतरे में थी, मेरी जिदगी बड़े खतरे में है। और फिर हससे भी क्या फर्क पड़ता है कि तलवार हैं या नहीं, मौत तो सबको धेरे हुए है। जिसको मौत का स्मरण आ गया, उसे सातत्य भी समझ में आ जाएगा।'

अखड़ भजन का अर्थ होता है - अविच्छिन्न धारा रहे, परमात्मा के स्मरण में एक क्षण को भी व्याधात न हो, तुम उससे विमुच्य न होओ; तुम्हारी आँखें उस पर ही लगी रहे, तुम्हारा हृदय उसकी ही तरफ दौड़ता रहे, तुम्हारे चैतन्य की धारा उसकी तरफ ही प्रवाहित रहे - जैसे गगा सागर की तरफ अविच्छिन्न बह रही है, एक क्षण को भी व्याधात नहीं है, एक क्षण को भी बाधा नहीं है, अवरोध नहीं है।

‘अव्यावृतभजनात् ।’

कोई भी व्याधात न पड़े, तो भजन। इसका अर्थ हुआ कि तुम्हारे जीवन के साधारण कृत्य ही जब तक परमात्मा के स्मरण की व्यवस्थान बन जाएं -

उठो तो उसमें उठो ।

बैठो तो उसमें बैठो ।

सोओ तो उसमें सोओ ।

जागो तो उसमें जागो ।

- जब तक ऐसा न हो जाए, सब तक तो व्याधात होता ही रहेगा।

तो ध्यान रखना परमात्मा का स्मरण तुम्हारे और कृत्यों में एक कृत्य न हो, नहीं तो व्याधात पड़ेगा। जब तुम दूसरे कृत्यों में उलझोगे, तो परमात्मा भूल जाएगा। यह तुम्हारे जीवन का कोई एक हिस्सा न हो परमात्मा, यह तुम्हारे प्रेरे जीवन को धेर ले, यह तुम्हारे सारे जीवन पे छा जाए। मंदिर में जाओ तो परमात्मा की याद और दुकान पर जाओ तो परमात्मा की याद, नहीं तो किर अखड़ न हो सकेगा स्मरण। मंदिर में जाओ या दुकान पर, मित्र से मिलो कि शब्द से - इससे उसकी याद में कोई फर्क न पड़े, उसकी याद तुम्हें धेरे रहे, उसकी याद तुम्हारे चारों तरफ एक माहील बन जाए, तुम्हारी श्वास-श्वास में समा जाए।

‘जाहिद शराब पीने वे मस्जिद में बैठ कर

या बोह जगह बता जहाँ पर खुदा न हो ।’

फिर तुम शराब भी पियो तो उसी में, मस्जिद में बैठ कर। फिर तुम्हारे सारे कृत्य उसी में लपेटे हुए हो। फिर तुम्हारा कोई कृत्य ऐसा न रह जाए जो उसके बाहर हो। क्योंकि जो कृत्य उसके बाहर होगा, वही व्याधात बन जाएगा।

तो परमात्मा और स्मृतियों में एक स्मृति नहीं है - परमात्मा महास्मृति है। वह और चीजों में एक चीज़ नहीं है - परमात्मा आकाश की तरह सभी चीजों को धेरता है। शराब की बोतल रखो तो भी आकाश ने उसे धेरा। भगवान की मूर्ति रखो तो उसे भी आकाश ने धेरा। परमात्मा तुम्हारा सब कुछ धेर ले। बुरा-भला सब तुम उसी पर छोड़ दो। बुरा भी उसका, भला भी उसका - तुम

बीच से हट जाओ । क्योंकि तुम जब तक बीच में रहोगे, व्याघात पड़ेगा । तुम ही व्याघात हो । तुम्हारी मौजूदगी अखड़ न होने देगी ।

तो अखड़ भजन का अर्थ हुआ तुम मिट जाओ और परमात्मा रहे । तो यह कोई फ़ोरगुल मचाने की बात नहीं है । यह तो बड़ी सूक्ष्म प्रक्रिया है । यह कोई बैड़-बाजे बजाने की बात नहीं है । यह कोई चौबीस घटे का अखड़ कीर्तन कर दिया, इतना सस्ता नहीं है मामला । क्योंकि चौबीस घटा तो दूर, अगर चौबीस पल भी अखड़ कीर्तन हो जाए तो तुम मुक्त हो गये ।

महावीर ने कहा है, अडतालीस सैकड़ अगर कोई व्यक्ति अविच्छिन्न ध्यान में रह जाए तो मुक्त हो गया । अडतालीस सैकड़ अविच्छिन्न ध्यान में रह जाए तो मुक्त हो गया । अविच्छिन्न ध्यान का अर्थ है इस समय में, न एक विचार उठे, न एक वासना जगे — कोरा रह जाए । तुम्हें परमात्मा ऐसा धेर ले जैसा आकाश ने तुम्हें धेरा है । चुनाव न रहे । तुम्हारे सारे कृत्य उसी के समर्पण बन जाए ।

नानक सो गये थे, मक्का के पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके, पुजारी नाराज़ हुए थे । कहा, 'हठाओ पैर यहाँ से । कही और पैर करो । इतनी भी समझ नहीं है साधु हो कर ?'

तो नानक ने कहा, 'तुम हमारे पैर वहाँ कर दो जहाँ परमात्मा न हो ।'

कहानी कहती है कि पुजारियों ने उनके पैर मब दिशाओं में किये, जहाँ भी पैर किये, कावा का पत्थर वही हट के पहुँच गया । कहानी सब हो न हो, पर कहानी में बड़ा सार है ।

'जाहिद शराब पीने वे मस्जिद में बैठ कर

या बोह जगह बता जहाँ पर खुदा न हो ।'

सार इतना ही है कि पुजारी ऐसी कोई जगह न बता सके जहाँ परमात्मा न हो ।

तुम्हारा जीवन ऐसा भर जाए उससे कि ऐसी कोई जगह न बचे जहाँ वह न हो । इसलिए बुरे-भले का हिसाब मत रखना । अच्छा-अच्छा उसे मत दिखाना, अपना बुरा भी उसके लिए खोल देना । तुम्हारे क्रोध में भी उसकी ही याद हो — और तुम्हारे प्रेम में भी उसकी ही याद हो — और तुम तब हैरान होओगे कि तुम्हारा क्रोध क्रोध न रहा, तुम्हारे क्रोध में भी उसकी सुगंध आ गयी, और तुम्हारा प्रेम तुम्हारा प्रेम न रहा, तुम्हारे प्रेम में भी उसकी ही प्रार्थना बरसने लगी ।

तुम जिस चीज़ से परमात्मा को जोड़ दोगे, वही रूपान्तरित हो जातो है ।

तुम अपना सब जोड़ दो — तुम्हारा सब रूपान्तरित हो जाएगा ।

'अखड़ भजन से सम्मत होता है ।'

‘ उम्र-भर रेगते रहने से कहीं बेहतर है
एक लम्हा जो तेरी रुह में वृसवत भर दे ..’

— एक छोटा-सा क्षण भी जो तेरे प्राणों में विशालता को भर दे, विराट को भर दे !

‘ उम्र-भर रेगते रहने से कहीं बेहतर है
एक लम्हा जो तेरी रुह में वृसवत भर दे
एक लम्हा जो तेरे गीत को शोखी दे दे
एक लम्हा जो तेरी लै मे मसरत भर दे ।’

एक क्षण भी काफी है परमात्मा के स्मरण का — ‘ जो तेरी रुह में वृसवत भर दे ’ — जो विराट को तेरे आँगन मे बुला ले, तेरी बूँद में सागर को बुला ले । सीमाएँ टूट जाएँ, ऐसा एक क्षण पर्याप्त है जी लेने का ।

‘ उम्र-भर रेगते रहने से कहीं बेहतर है ।’

फिर अखड़ कीर्तन की तो बात ही क्या, अगर एक लम्हा, अगर एक क्षण विशालता का इतना अदभुत है, तो अखड़ कीर्तन की तो बात ही क्या ! सतत भजन की तो बात ही क्या ! ओठ भी हिलते नहीं सतत भजन में ! भीतर परमात्मा का नाम भी स्मरण नहीं किया जाता । जो किया जाता है, जो होता है, सभी मे उसकी याद होती है । भोजन करो, स्नान करो, तो स्नान में भी जलधार उसी की है । जल गिरे तो परमात्मा ही गिरे तुम्हारे ऊपर ।

मेरे गाँव में बड़ी मुन्दर नदी बहती है और गाँव के लिए वही स्नान की जगह है । सर्दियों के दिन मे लोग, जैसा सदा जाते हैं, सर्दियों के दिन में भी जाते हैं । मैं बचपन से ही चकित रहा कि गर्मियों में कोई भजन-कीर्तन करता नहीं दिखायी पड़ता । सर्दियों मे लोग जब स्नान करते हैं नदी में तो जोर-जोर से भगवान का नाम लेते हैं ‘ भोलेशकर ! भोलेशकर ! ’ तो मैंने पूछा कुछ लोगों से कि गरमी मे कोई भोलेशकर का नाम नहीं लेता, भूल जाते हैं लोग क्या । तो पता चला कि सर्दियों में इसलिए नाम लेते हैं कि वह नदी की ठड़क, और उनके दीच भोलेशकर की आवाज परदे का काम करती है । वे ‘ भोलेशकर ’ चिल्लाने में लग जाते हैं, उतनी देर छुबकी मार लेते हैं-ठड़ भूल गयी ।

लोग नदी से बचने को भगवान का नाम ले रहे हैं । और तब मुझे लगा कि ऐसा पूरी जिद्दी में हो रहा है : भगवान सब तरफ से तुम्हें धेरे हुए है, तुम उससे धिरना नहीं चाहते । तुम्हारे भगवान का नाम भी नुम्हारा बचाव है । परमात्मा का स्मरण करना ही तो नदी को बहने दो, वह उसी की है । वही उसमें बहा है, वह रहा है । तुम छुबकी ले लो । इनना बोध भर रहे कि परमात्मा ने धेरा । ऊपर उठो तो परमात्मा के सूरज ने धेरा । छुबकी लो तो पानी ने, परमात्मा के

जल ने घेरा । भूखे रहे तो परमात्मा की भूख ने घेरा और भोजन सो तो परमात्मा की तृप्ति ने घेरा ।

और यह कोई शब्दों की बात नहीं है कि ऐसा तुम सोचो, क्योंकि तुम सोचोगे तो वही बाधा हो जाएगी । ऐसा तुम जानो । ऐसा तुम सोचो नहीं । ऐसा तुम दोहराओ नहीं । ऐसा तुम्हारा बोध हो । ऐसा तुम्हारा सतत स्मरण हो ।

'लोकसमाज में भी भगवद्गुण-श्रवण और कीर्तन से भक्ति सम्पन्न होती है ।'

'भगवद्गुण-श्रवण' । भगवान के गुणों का श्रवण, और भगवान के गुणों का कीर्तन, उसके गुणों को सुनना और उसके गुणों को गाना ।

सुनने से .. अगर तुमने ठीक-ठीक सुना, अगर तुमने हृदय के पट खोल कर सुना, अगर तुमने कान से ही न सुना, प्राणों से सुना, तो तुम्हारे भीतर, भगवान के गुणों को सुनते-सुनते, उसके स्मरण का सातत्य बनने लगेगा । क्योंकि हम जो सुनते हैं, वही हमारा बोध हो जाता है । जो हम सुनते हैं, वह धीरे-धीरे हम मेरमता जाता है । जो हम सुनते हैं, वह धीरे-धीरे हमारे रोएँ-रोएँ मेरे व्याप्त हो जाता है । जो हम सुनते हैं सतत, वह धीरे-धीरे हमे धेर लेना है, हम उसमे डूब जाते हैं ।

तो उसका श्रवण भी करो और उसके गुणों का कीर्तन भी करो । सुनने से ही कुछ न होगा । क्योंकि सुनना तो निष्क्रिय है और कीर्तन सक्रिय है । निष्क्रियता मेरु सुनो, सक्रियता मेरु अभिव्यक्त करो । अगर बोलो तो उसके गुणों की ही बात बोलो ।

तुम कितनी व्यर्थ की बातें बोल रहे हो ! कितनी व्यर्थ की चर्चाएँ कर रहे हो ! अच्छा हो उसके सौंदर्य की बात करो । अच्छा हो उसके विशाट अस्तित्व की थोड़ी चर्चा करो । उस चर्चा में तुम्हें भी याद आएगा, जिसमें तुम चर्चा करोगे उसे भी याद आएगा । क्योंकि परमात्मा को हमने खोया नहीं है, केवल भूला है । इसलिए श्रवण का और कीर्तन का उपर्योग है । अगर खो दिया हो तो क्या होने वाला है ? जैसे कि तुम्हारे घर में खजाना हो और तुम भूल गये हो कि कहाँ दबाया था, तुम्हारे खोसे मेरीरा रखा हो, और तुम भूल गये हो, तो अगर हीरे की कोई बात करे तो तुम्हें याद आ जाए ।

तुमने कभी खयाल किया, घर से तुम चले थे, चिट्ठी डालनी थी, कोई मित्र मिल गया, तुम भूल ही गये थे दिन-भर, फिर उसने कुछ बात की और उसने कहा कि पत्नी का पत्र आया है—तत्क्षण तुम्हें याद आ गया कि तुम्हें पत्र डालना है । सुन के भूली बात स्मरण हो आयी । जो तुम्हारे भीतर पड़ा था, वह चैतन्य में उठ आया ।

'भगवद्गुण-श्रवण और कीर्तन स... ।'

और फिर जो तुम सुनो, उसे सुन लेना ही काफी नहीं है, क्योंकि तुम फिर-फिर

भूल जाओगे । तुम्हारी नीद का कोई अत नहीं है । उसे याओ भी, गुनगूनाओं भी । रात जब सोने जाओ तो उसके ही गीत को गुनगुनाते सो जाओ, ताकि गुन-गुनाहट तुम्हारी रात-भर तुम्हारे सपनों में बेरे रहे; ताकि गुनगुनाहट रात-भर तुम्हें ऊँधा देती रहे, ताकि गुनगुनाहट रात-भर तुम्हारे चारों तरफ पहरा देती रहे; ताकि तुम्हारी नीद में भी, तुम्हारी गहरी नीद में भी उसकी याद का सातत्य बना रहे ।

ख्याल किया तुमने, जो बात तुम रात को आखिरी सोचते हुए सोते हो, वही बात तुम्हें सुबह पहली याद आती है । न ख्याल किया हो तो कोशिश करना । जो बात तुम्हारे चित्त में आखिरी होती है रात सोते बक्त, वही पहली होती है सुबह उठते बक्त, क्योंकि रात-भर वह बात तुम्हारी चेतना के द्वार पर खड़ी रहती है । अगर तुम परमात्मा का स्मरण करते ही सो जाओ तो सुबह तुम पाओगे आँख खुलते ही उसके स्मरण के साथ उठे हो ।

सारी दुनिया के धर्मों ने रात और सुबह, सोते बक्त और जागते बक्त, परमात्मा के स्मरण पर बहुत जोर दिया है, क्योंकि उस समय चेतना की भूमिका बदलती है जागने से नीद, तो चेतना का गेयर बदलता है, फिर सुबह नीद से जागना, फिर चेतना की भूमिका बदलती है । इन सध्या के क्षणों में, इन बदलाहट के, क्रान्ति के क्षणों में, अगर परमात्मा का स्मरण तुम में व्याप्त होता जाए, तो तुम पाओगे धीरे-धीरे तुम्हारे खून के कतरे-कतरे में परमात्मा की छाप लग गयी । तुम्हारा पूरा अस्तित्व उसे गुनगुनाने लगेगा ।

‘परन्तु भक्ति-साधन मुख्यतया महापुरुषों की कृपा से अथवा भगवद्कृपा के लेशमात्र से होता है ।’

नारद कहते हैं, यह सब ठीक, यह साधन ठीक—लेकिन इन्हें से ही न हो जाएगा । बस्तुत तो महापुरुष की कृपा या भगवत्कृपा से, उसके लेशमात्र से ही जाता है । ये तुम्हारे उपाय है जरूरी, पर इन्हें को ही काफी भत समझ लेना । यही भक्ति का अन्य साधनों से भेद है । अन्य साधन कहते हैं । अगर ठीक से किया तो परमात्मा उपलब्ध हो जाएगा, भक्ति कहती है यह तो मिर्कं तैयारी है, इससे नहीं हो जाएगा, अन्तत तो वह कृपा से ही उपलब्ध होगा—महापुरुषों की, और भगवत्कृपा से ।

‘परन्तु महापुरुषों का सग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है ।’

सद्गुरु को खोजना बड़ा कठिन है ।

सग—दुर्लभ, अगम्य और अमोघ ।

दुर्लभ है, क्योंकि पहले तो जिन्होंने पा लिया सत्य को, ऐसे लोग बहुत कम । किर जिन्होंने पा लिया, उनको तुम पहचान सको, ऐसी पहचानने वालों आँखे

बहुत कम । किर तुम पहचान भी लो, दुलैभता समाप्त हो जाए, तुम पहचान ली किसी को, तो अगम्य । फिर पहचान के बाद सदगुरु तुम्हें ऐसे जगत में ले चलता है जो तुम्हारा पहचाना हुआ नहीं है, अगम्य है, समझ में नहीं आता है । तुम्हारी समझ डगमगाती है, तुम्हारे पैर डगमगाते हैं, तुम धबडाते हो । यह अपरिचित लोक है, नाव ऐसी तरफ ले जाता है, जहाँ तुम कभी गये नहीं, नक्शे भी तैयार नहीं, खतरा ही खतरा है ।

तो पहले तो मिलना कठिन, मिल जाए तो पहचानना कठिन, पहचान में भी आ जाए तो उसके साथ जाना कठिन — अगम्य है । लेकिन अगर तुम साथ चले जाओ तो अमोच है, फिर वह रामबाण है, फिर उसकी जरा-सी भी कृपा पर्याप्त है ।

‘ यू अचानक तेरी आवाज कही से आयी
जैसे परबत का जिगर चीर के झरना फूटे
या जमीनों की मुहब्बत मे तडप कर नागाह
आसमानों से कोई शोख मितारा टूटे ।’
‘ शहद-सा धुल गया तत्खावा-ए-तन्हाई में
रण-सा फैल गया दिल के सियाहखाने में
देर तक य तेरी मस्ताना सदाएं गूंजी
जिस तरह फूल चमकने लगें बीरानों मे ।
यू अचानक तेरी आवाज कही से आयी ।’

सदगुरु का मिलना अचानक है । खोजते रहो, खोजते-खोजते अचानक
अयोकि कोई बैंधे हुए नक्शे नहीं हैं, कोई पता-ठिकाना नहीं है । इसलिए अचानक
कहाँ मिलेगा, इसको बताया नहीं जा सकता ।

सदगुरु कोई जड़वस्तु नहीं है — चैतन्य का प्रवाह है, ठहरा हुआ नहीं है —
गतिमान है, गतिमान है ।

एक सूफी फकीर एक वृक्ष के नीचे बैठा था, एक युवक ने आ के पूछा कि ‘मैं सदगुरु की तलाश मे हूँ, मुझे कुछ कसौटी बताएँगे कि मैं सदगुरु को कैसे पहचानूँ?’ तो उस फकीर ने उसे कसौटी बतायी कि ऐसे-ऐसे वृक्ष के नीचे अगर बैठा हुआ मिल जाए, तो समझना ।

वह युवक गया । उसने बहुत खोजा, कहते हैं, तीस साल । लेकिन वैसा वृक्ष कही न मिला, और न वैसे वृक्ष के नीचे बैठा हुआ कोई सदगुरु मिला । कसौटी पूरी न हुई । बहुत लोग मिले लेकिन कसौटी पूरी न हुई, वह बापस लौट आया । जब वह बापस आया तो वह हैरान हुआ कि यह तो बूँदा उसी वृक्ष के नीचे बैठा था । इसने कहा कि महानुभाव, पहले ही क्यों न बता दिया कि यही वह वृक्ष है । उसने कहा, ‘मैंने तो बताया था, तुम्हारे पास आँख न थी । तुमने वृक्ष देखा ही

नहीं । मैं तब व्याख्या ही कर रहा था वृक्ष की, तब तुम सुने और आगे । यही वृक्ष है, और मैं ही वह आदमी हूँ । और तुम्हारी क्षमाट तो ठीक, मेरी क्षमाट सोचो कि तीस साल भुक्षे बैठा रहना पड़ा, कि तुम एक-न-एक दिन आओगे ।

‘यू अचानक तेरी आवाज़ कही से आयी
जैसे परबत का चिंगर चीर के झरना कृटे
या जमीनो की मुहब्बत मे तडप कर नागाह
आसमानो से कोई शोख सितारा टूटे ।’

—जमीन की मुहब्बत मे तडप कर .. ।
शिष्य तो जमीन जैसा है, गुरु आकाश जैसा है ।

‘या जमीनो की मुहब्बत मे तडप कर नागाह
आसमानो से कोई शोख सितारा टूटे ।’

शहद-सा घुल गया तल्खावा-ए-नन्हाई मे ।
वह जो पीड़ा से भरी हुई तन्हाई थी, अकेलापन था .. शहद-सा घुल गया ।

‘शहद-सा घुल गया तल्खावा-ए-तन्हाई मे
रग-सा फैल गया दिल के सियाहखाने मे ।’

ओधेरी रात थी जैसे दिल मे, वहाँ एक नया रग उगा, एक नयी सुबह हुई ।
‘देर तक यू तेरी मस्ताना भदाएँ गूँजी

जिस तरह फूल चमकने लगे बीरानो मे ।’

—जैसे अचानक मरुस्थलो मे फूल खिल गये हो । इतना ही आश्चर्यजनक है
सद्गुरु का मिल जाना, जैसे मरुस्थल मे अचानक कूल खिल जाएँ, जैसे पत्थर से ✓
टूट के अचानक झरना फूट पड़े, जैसे आसमान से कोई तारा जमीन की मुहब्बत मे
नीचे उतर आये ।

सग दुर्लभ है । लेकिन जो खोजते हैं, उन्हे मिलता है । खोजने वाले चाहिए ।
किसना ही दुर्लभ हो, खोजने वालो को सदा मिला है । इसलिए तुम थक मत जाना
और हार मत जाना । प्यास हो तो तुम्हें जल का झरना मिल ही जाएगा । असल में
परमात्मा प्यास बनाने के पहले जल का झरना बनाता है, भूख देने के पहले भोजन
तैयार करता है । प्यास तो बाद मे बनायी जाती है, झरने पहले बनाये जाते हैं ।
आदमी जमीन पे बहुत बाद मे आया, शील और झरने बहुत पहले आये । आदमी
बहुत बाद मे आया, वृक्षो में लगे फल बहुत पहले आये ।

ध्यान रखना, जिस बात की भी तुम्हारे भीतर खोज है, वह खजाना कहीं-
न-कही तैयार ही होगा, अन्यथा खोज की आकौशा ही नही हो सकती थी । भहा-
पुरुषों का सग दुर्लभ है भाना, मगर निराश मत होना । दुर्लभ इसलिए सूत्र कह
रहा है ताकि खोजने मे जल्दी मत करना, धोरज रखना । और कोई मतलब नहीं

है दुर्लभ का । दुर्लभ का यह भतलब नहीं है कि मिलेगा ही नहीं । मिलेगा, धीरज रखना । धैर्य से खोजना ।

अगम्य है । और जब सद्गुरु तुम्हें अगम्य के मार्ग पर ले जाने लगे, जिसे तुम्हारी बुद्धि न समझ पाये – समझ ही न पाएगी, क्योंकि मार्ग प्रेम का है, अगम्य ही होगा, तकरीत होगा – तो घबड़ाना भत । इतनी हिम्मत रखना और साहस रखना । पागल होने का साहस रखना । दीवाने होने की हिम्मत रखना । भरोसा रखना ।

इसी को श्रद्धा कहा है । श्रद्धा की जरूरत इसीलिए है, क्योंकि जहाँ अगम्य का द्वारा खुलेगा, वहाँ तुम क्या करोगे, अगर श्रद्धा न हुई, वहाँ अगर तुमने कहा, पहले हम समझेगे तब भीतर चलेगे, तो रुकावट हो जाएगी, क्योंकि समझ तो तभी आ सकती है जब तुम भीतर पहुँच जाओ । और तुमने अगर यह शर्त रखी कि हम पहले समझेगे, फिर भीतर चलेगे ।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'सन्यास तो लेना है, लेकिन पहले समझ लें कि सन्यास क्या है ।' मैं उनको कहता हूँ, 'स्वाद लिये बिना तुम कैसे समझेगे ? हुए बिना कैसे समझेगे । हो जाओ, समझ लेना पीछे ।'

वे कहते हैं, 'यह कैसी बात ? पहले समझ ले, सोच लें, विचार लें, फिर हो जाएंगे ।' वे कभी भी न हो पाएंगे । यह मार्ग अगम्य का है, अनजान का है, अज्ञेय का है ।

लेकिन सूत्र बड़ी अमूल्य बात कह रहा है 'दुर्लभ है, अगम्य है, पर अमोघ है ।' एक बार हाथ हाथ में आ गया तो चूक नहीं है, रामबाण है । फिर तीर लग ही जाएगा । फिर तीर छिद ही जाएगा आर-पार ।

'उस भगवान की कृपा से ही महापुरुषों का सग भी मिलता है ।'

यह सग भी, नारद कहते हैं, परमात्मा की कृपा से ही मिलता है । क्योंकि अक्त या सारी धारणा ही कृपा पर लट्ठी है, प्रसाद पर । तुम्हें सद्गुरु भी मिलता है तो भी उसकी ही कृपा से मिलता है, तुम्हारी खोज से नहीं, जैसे सद्गुरु के द्वारा वही तुम्हारे पास आता है, जैसे सद्गुरु में वही तुम्हें मिलता है । तुम अभी इतने तैयार न थे कि सीधा-सीधा मिल सके, तो थोड़े परदे की ओटा से मिलता है । हाथ तो उसी का है – दस्ताने मे है । हाथ तो उसी का है । सद्गुरु के भीतर भी आवाज उसी की है । लेकिन कोरे आकाश से अगर आवाज आये तो तुम समझ न पाओगे, घबड़ा जाओगे ।

समझो कि यहाँ यह खाली कुर्सी हो और आवाज आये तो अभी तुम भाग लड़े हो जाते हो, फिर तो कहना ही क्या, फिर तो तुम लौट के भी न देखोगे । आवाज अभी भी शून्य से ही आ रही है ।

सद्गुरु के द्वारा भी वही पुकारता है, वही बुलाता है, उसके ही हाथ तुम्हारी दरक आते हैं – लेकिन हाथ तुम्हारे जैसे होते हैं, तुम भरोसा कर लेते हो; तुम हाथ हाथ में दे देते हो। देने पे पता चलेगा कि हाथ तुम्हारे जैसे नहीं थे, दिखाई पड़ते थे, खोखा दुआ।

सद्गुरु परमात्मा ही है। इसलिए सूत्र कहता है ‘वह भी उसकी ही कृपा से मिलता है।’

‘जो कुछ है बोह, है अपनी ही रफ्तोर-अमल से बूत है जो बुलाऊं, जो खुद आये तो खुदा है।’

तुम्हारे बुलाने से भी आता है, ऐसा भी नहीं – ‘जो खुद आये खुदा है’। मूर्तियाँ हैं जिन्हे तुम बुलाते हो।

‘बूत है जो बुलाऊं, जो खुद आये तो खुदा है।’

वह आता है अपने ही कारण। तुम जब भी तैयार हो जाते हो, तभी आ जाता है। ठीक से समझो तो ऐसा कहना चाहिए कि आता तो पहले भी रहा था, तुम पहचान न पाए। तुम जब सम्भले तो तुमने पहचाना, आता तो पहले भी रहा था, बुलाता तो पहले भी रहा था, तुमने न सुना, तुम्हारे कान तैयार न थे, तुम कुछ और सुनने में लगे थे।

‘क्योंकि भगवान में और उसके भक्त में भेद का अभाव है।’ इसलिए सद्गुरु में भी वही आता है।

‘क्योंकि भगवान में और उसके भक्त में भेद का अभाव है।’

‘दिले हर कतरा है साजे अनलबहर

हम उसके हैं, हमारा पूछना क्या।’

हर बूँद का एक साज है और साज से निरतर एक ध्वनि निकलती है कि मैं सागर हूँ। हर बूँद का एक साज है, एक गीत है। और हर बूँद निरतर गाती रहती है कि मैं एक सागर हूँ।

‘दिले हर कतरा है साजे अनलबहर

हम उसके हैं, हमारा पूछना क्या।’

बब हमारी तो बात ही क्या कहनी। हम उसके हैं।

तुम भी अगर अपने भीतर आँकोगे तो तुम एक ही आवाज पाओगे, तुम्हारे भी परमात्मा होने की आवाज पाओगे – जैसे हर बूँद में सागर होने की आवाज है। हर बूँद का साज है कि मैं सागर हूँ, और हर चैतन्य का साज है कि मैं परमात्मा हूँ। जिसने पहचान लिया, वह सद्गुरु। जिसने अपनी ही ध्वनि को पहचान लिया, वह सद्गुरु। जिसने अभी नहीं पहचाना है, खोजना है – लेकिन फक्त कुछ भी नहीं है।

‘उस भगवान की कृपा से ही सत्युरुपों का संग मिलता है, क्योंकि भगवान में और उसके भक्त में भेद का अभाव है।’

‘उस सत्संग की ही साधना करो।’

‘तदेव साध्याता, तदेव साध्यताम्।’

उसकी ही साधना करो।

सत्संग की ही साधना करो।

सदगुर की खोज करो।

किन्तु हाथों पे भरोसा करो और हाथ हाथ में दे दो। ऐसे ही तुम परमात्मा के हाथ में अपने की सौंप पाओर्ग। और ऐसे ही परमात्मा तुम्हारे हाथ को अपने हाथ में ले पाएगा।

तो भक्ति की साधना क्या हुई? सत्संग की साधना हुई। सार क्या हुआ?

— कि ऐसे किसी व्यक्ति के साथ हो जाना है जिसने पा लिया हो। क्योंकि है तो तुम्हारे भीतर भी, लेकिन तुम्हारा साज्ज सोया हुआ है। किसी ऐसी वीणा के पास पहुँच जाना है, जिसका साज्ज बज उठा हो, ताकि उसकी प्रतिष्ठन में तुम्हारे तार भी कैप्ने लगे।

सगीतश कहते हैं कि अगर कोई कुशल सगीतश एक वीणा पर बजाए और दूसरी वीणा कमरे में चूपचाप रखी हो तो धीरे-धीरे उसके तार भी झक्त होने लगते हैं। तरंगे जागी वीणा की, सोयी वीणा को भी जगाने लगती हैं ध्वनि की चोट सोयी वीणा को भी खबर देती है कि मैं भी वीणा हूँ। उसके भीतर भी कोई जागने लगता है। उसके तार भी कैप्ने लगते हैं। रोमांच हो आता है उसे भी। दूर की खबर आती है। अपने अस्तित्व का बोध आता है।

सत्संग भक्त की साधना है।

भीरा मिल जाए तो उसके साथ हो लो। चैतन्य मिल जाए, उनके साथ हो लो। तुम्हे अपनी याद नहीं है, उन्हे अपनी याद आ गयी है — उनके साथ तुम्हें भी धीरे-धीरे तुम्हें अपनी याद आ जाएगी। कुछ और करना नहीं है।

सदगुर तो दर्पण है — उसमें तुम्हे अपना चेहरा धीरे-धीरे दिखायी पड़ने लगेगा, भूती-विसरी याद आ जाएगी।

‘उजाले अपनी यादों के हमारे पास रहने दो

न जाने किस गली में जिदगी की शाम हो जाए।’

तो भक्त दूरना ही कहता है अपने गुरु से —

‘उजाले अपनी यादों के हमारे पास रहने दो

न जाने किस गली में जिदगी की शाम हो जाए।’

— न मालूम किस दिन अधकार घेर ले। बस तुम्हारा उजाला हमारे पास हो

तो काफी । याद भी तुम्हारे उजाले भी हमारे पास हो तो काफी, क्योंकि तब हम भी उजाले हो गये । फिर कितना ही धना अँधेरा हो, अमावस की रात हो, कितना ही धेर ले, किर भी हम उजाले ही रहेंगे । '

बुद्धों के पास तुम्हें अपने उजाले की याद आयी ।

तो भक्ति की साधना इतनी ही है कि वह सत्सग खोज ले ।

भक्ति संक्रामक है ।

तदेव साध्यता, तदेव साध्याताम् ।

आज इतना ही ।

हसबाँ प्रवचन

दिनांक २० जनवरी, १९७६, श्री राजसीता आचम, पूरा

परम मुक्ति है शक्ति

पहला प्रश्न मुझे कभी लगता है कि मैंने आपसे बहुत-बहुत पाया और कभी यह भी कि मैं आपसे बहुत चूक रहा हूँ। ऐसा क्यों है?

जितना ज्यादा पाओगे उतना ही लगेगा कि चूक रहे हो। जितनी होगी तृप्ति, उतनी ही और बड़ी तृप्ति की आकॉक्शा जगेगी।

प्यास को जब पहली धूंट जल की, गले से उतरती है तो पहली दफा प्यास का पूरा-पूरा पता चलता है। प्यास का पता चलने के लिए भी जल की धोड़ी चारूरत है।

और परमात्मा की खोज तो ऐसी है कि शुरू होती है, पूरी नहीं होती। पूरी हो जाए तो परमात्मा सीमित हो गया, असीम न रहा। पूरी हो जाए तो परमात्मा का भी अत आ गया, परिधि आ गयी, सीमात आ गया।

इसीलिए तो परमात्मा निराकार है, तुम उसे चुका न पाओगे। तुम चुक जाओगे, परमात्मा न चुकेगा। उतरेगे सागर में ज़रूर, दूसरा किनारा कभी न आयेगा। दूसरा किनारा है ही नहीं। यहीं तो अर्थ है विराट का। अगर तुम दूसरा किनारा भी छू लो, थाह पा लो, फिर विराट कैसा विराट रहा! जो तुम्हारी मुट्ठी में आ जाए वह तो तुमसे भी छोटा हो जाएगा। जो तुम्हारे गले में तृप्ति बन जाए, उसकी सामर्थ्य तुम्हारे गले की सामर्थ्य से ज्यादा न रह जाएगी।

तो ये दोनों घटनाएँ साथ-साथ घटेंगी। तृप्ति भी मालूम होगी, गहन तृप्ति मालूम होगी और अतृप्ति भिटेगी नहीं। यहीं तो खोजी की व्याकुलता है। सरोबर के टट पर छढ़ा है, डुबकियाँ लेता है, जलधार बरसती है; प्यास बुझती भी लगती है, बुझती भी नहीं, प्यास बुझती भी है और बढ़ती भी है। साथ-साथ ऐसा विरोधाभास घटता है।

तुम्हारी अडचन में समझता है। अगर प्यास ही रहे तुम्हें मुझसे कुछ भी न मिले तो भी तर्क को समझ में आ जाए, बात खत्म हो गयी। यह मदिर तुम्हारे लिए नहीं फिर, कहीं और खोजना होगा। यह द्वार तुम्हारे लिए नहीं फिर,

कहीं और खोजना होगा । यह सरोबर तुम्हारे कठ से भेल नहीं खाता, कहीं और खोजना होगा । तो बात साफ हो जाती है ।

या, तृप्ति ही जाए, प्यास बिलकुल खो जाए, तो भी हल हो जाता है । हल इतना आसान नहीं है । और हल ऐसा हो तो दुर्भाग्य है, सोभाग्य नहीं है । क्योंकि अगर तुम्हारी प्यास बिलकुल ही मिट जाए तो तुम्हारे जीवन का अर्थ भी खो गया । फिर जीवन में सार क्या होगा ? फिर जीवन में गीत के अकुरण कैसे होंगे ? फिर नाचोगे कैसे ?

ध्यान रखना, न तो अतृप्त नाच सकता है, क्योंकि नाचने का कोई कारण नहीं । अतृप्त रो सकता है, शिकायत कर सकता है, नाचेगा कैसे ? तृप्त भी नहीं नाच सकता, क्योंकि फिर नाचने का कोई कारण न रहा । अतृप्त और तृप्त के बीच में एक पडाव है, वहाँ नृत्य है; वहाँ आनंद का आविभवि है ।

और जब तुम समझोगे धीरे-धीरे, तो तुम जल के लिए ही परमात्मा को धन्यवाद न दोगे, प्यास के लिए भी धन्यवाद दोगे । तब तुम प्रार्थना करोगे कि जल भी बरसाते जाना और प्यास भी बढ़ाते जाना ।

इन दोनों के मध्य में जीवन है । इन दोनों के मध्य में जीवन का सतुलन है, जीवन की ऊँचाइयाँ हैं, गहराइयाँ हैं ।

अगर जीवन में विरोधाभास न हो तो जीवन मुर्दा हो जाता है । इस किनारे या उस किनारे । धार तो जीवन की मध्य में है । न इस किनारे न उस किनारे । तो इस किनारे से तो तुम्हारी नाव छुड़ा लूंगा । इसलिए धोड़ी तृप्ति होती भालूम पढ़ेगी । अतृप्ति का किनारा दूर हटता जाएगा और तृप्ति का किनारा पास नहीं आएगा । मँझधार में पड़ जाओगे । और जिसने मँझधार में जीना सीखा, उसी ने परमात्मा में जीने की कला जानी ।

किनारे का मोहर भय के कारण है । तृप्ति की आकॉक्सा भी मुर्दादिली का हिस्सा है । वह कोई जिदादिलों की बात नहीं है । जिदादिल आग चाहते हैं, वर्षा भी चाहते हैं – वर्षा ऐसी चाहते हैं कि कैसी भी आग हो तो मिट जाए, और आग ऐसी चाहते हैं कि कैसी भी वर्षा हो तो न बुझ पाये । इन दोनों के बीच में जिसने जीना सीखा उसी ने जीना जाना ।

ठीक पूछते हो । कभी लगेगा, बहुत कुछ पाया और कभी लगेगा, सब चूके जा रहे हो । और इन दोनों में विरोध मत देखना । ये दोनों बातें मैं एक साथ ही कर रहा हूँ । ये दोनों बातें एक साथ ही होनी चाहिए ।

तुम्हारी अडचन भी मैं समझता हूँ, क्योंकि तुम चाहते हो । निपटारा हो, इस पार कि उस पार । या तो सिद्ध हो जाए कि तृप्ति होती ही नहीं, अतृप्ति ही भाग्य है, अतृप्ति ही नियति है, तो ठीक है, उससे ही राजी हो जाएं, सात्वना कर लें, अपने

जर बैठ जाएँ, फिर किसी यात्रा पर जाना नहीं, जड हो जाएँ, और या फिर पक्का हो जाए कि तृप्ति पूरी हो जाती है – तो या तो अतृप्ति पर छहर जाएँ या तृप्ति पर छहर जाएँ ।

छहर जाने का तुम्हारा मन है । और परमात्मा चाहता है तुम चलते ही रहो, चलते ही रहो, क्योंकि चलना जीवन है ।

कब तुम्हे दिखायी पड़ेगा चलने का सौदर्य – चलते जाने का सौदर्य ?

रोज नये-नये अभियान उठें ।

रोज नये शिखरे का दर्शन हो ।

हाँ, पैर में बल मिलता जाए ।

यात्रा से थकान न मिले ।

पैर में बल मिलता जाए और नये शिखर उभरते चले आएँ ।

जिन्होने भी परमात्मा को जाना, वे मुर्दा नहीं हो गये हैं । उनके जीवन में पहली दफा वास्तविक जीवन की ऊर्जा का आविभवि हुआ है ।

पर तुम इसे न समझ पाओगे, क्योंकि तुम्हारे गणित में बड़ी छोटी-छोटी बातें हैं । तुम्हारा गणित ही बड़ा छोटा है । तुम हिसाब ही कौड़ियों का कर रहे हो और यहीं हीरे बरस रहे हैं । तुम हिसाब कौड़ियों का कर रहे हो और तुम्हें कौड़ियाँ दिखायी नहीं पड़ती, तुम बड़ी भूमिकल में पड़ जाते हो । परमात्मा को क्या लेनादेना कौड़ियों से ?

सिक्के मत माँगो – तृप्ति के या अतृप्ति के ।

जीवन की क्राति माँगो ।

जीवन की चुनौती माँगो ।

जीवन का अभियान माँगो ।

हाँ, शक्ति दे और नये शिखर दे ।

पैरों में बल दे और कभी ऐसी घड़ी न आये कि चलने को कोई स्थान न रह जाए ।

नये तल चैतन्य के छते चलो ।

आगे ही आगे जाना है ।

तुम कहोगे, हम तो यही सोचते थे कि जल्दी ही पडाव आ जाएगा, कही रुक जाएँगे ।

तुम्हारी रुकने की इतनी आकांक्षा क्यों है ?

तुम्हारी रुकने की आकांक्षा में ही ईश्वर का विरोध छिपा है ।

ईश्वर अब तक नहीं रुका, तुम रुकना चाहते हो ।

ईश्वर अभी भी बीज में अकुर तोड़ेगा, बूझो में फूल समायेगा ।

अभी भी तारे बनाये चला जाता है नये ।

अभी भी झरने बहाये चला जाता है ।

अभी भी मेघ बनेंगे और बरसेंगे ।

ईश्वर थका नहीं, चलता चला जाता है ।

जो सदा चलता चला जाता है – सदा, सदैव – उसी को तो हम ईश्वर कहते हैं । जो थक जाता है, चुक जाता है, जिसकी सीमा आ जाती है – वही तो मन है, जो जलदी ही बैठ जाना चाहता है, जो कहता है बस बहुत हो गया ।

इस सीमा को तोड़ो ।

परमात्मा के साथ चलना हो तो अनत की यात्रा है । और जिस दिन तुम्हें यह समझ में आएगा, उस दिन तुम पाओगे मजिल नहीं है, यात्रा ही मजिल है, हर कदम मजिल है । तब तुम आनंद से नाचोगे भी, अहोभाव से गीत भी गाओगे, लेकिन बैठ के मुर्दा चट्टान की तरह न हो जाओगे, चलते ही रहोगे ।

और-और नये फूल लगने हैं तुम मे अभी ।

तुम्हें अपनी ही सम्भावनाओं का कुछ पता नहीं । तुम्हें अपने ही होने का कुछ पता नहीं कि तुम कितने ही सकते हो ।

‘एक भौज मचल जाए तो तूफा बन जाए ।’

– एक छोटी-सी लहर भी, अगर मचल जाए

‘एक भौज मचल जाए तो तूफा बन जाए’ क्योंकि छोटी-सी लहर में सागर भी छिपा है ।

‘एक फूल अगर चाहे गुलिस्ता बन जाए ।’

एक छोटा-सा फूल सारी पृथ्वी को फूलों से भर सकता है ।

एक बीज सारी पृथ्वी को हरा कर सकता है फैलता चला जाए एक बीज में करोड़ बीज लगते हैं, करोड़ बीजों में और करोड़ बीज लगेंगे ।

एक बीज मिल जाए पृथ्वी को तो सारी पृथ्वी हरी हो सकती है ।

‘एक भौज मचल जाए तो तूफा बन जाए

एक फूल अगर चाहे तो गुलिस्ता बन जाए ।

एक खून के कतरे में है तासीर इतनी

एक कौम की तारीख का उनमा बन जाए ।’

एक छोटे-से खून के कतरे में इतना छिपा है कि एक पूरी जाति के जीवन का शीर्षक बन जाए, इतिहास का शीर्षक बन जाए ।

तुम्हें अपने होने का पता नहीं, तुम कौन हो । तुमने जहाँ अपने को पाया है, वह तुम्हारे भवन की सीढ़ियाँ हैं, तुम अपने भवन में अभी प्रविष्ट भी नहीं

हुए । तुम जहाँ ठहर गये हो, वहाँ तो द्वार भी नहीं है, सीढ़ियाँ ही हैं, तुमने भवन में प्रवेश भी नहीं किया ।

तुम इस किनारे पर बैठ गये हो — जिसको तुम ससार कहते हो । और अगर कभी तुम्हें कोई जगा देता है इस किनारे से...ऐसे तो तुम जगते नहीं आसानी से, ऐसे तो तुम बड़ी बाधाएँ डालते हो, ऐसे तो तुम हर चेष्टा करते हो, हर उपाय करते हो कि तुम्हारी नीद न टूट जाए — जो तुम्हारी नीद तोड़ा है वह दुश्मन जैसा मालूम पड़ता है ।

लेकिन बुद्ध और क्राइस्ट और कृष्ण जैसे लोग तुम्हारे पीछे यड़े ही रहें, तो तुम आँख खोलते हो । तो तत्काल तुम पूछते हो कि दूसरा किनारा कितनी दूर है, ताकि तुम उस किनारे सो जाओ । यहाँ से तुम हटाये जाओ तो जल्दी ही तुम दूसरे किनारे को यही किनारा बना लेता चाहते हो । जड़ होने की तुम्हारी बादत बड़ी गहरी है ।

जड़ता का मोह मजिल की तलाश है ।

चैतन्य तो प्रवाह है, यात्रा है । चैतन्य की कोई मजिल नहीं ।

पत्थर ठहर जाता है,

फूल कैसे ठहरे ।

फूल को तो जाना है, और होना है ।

फूल को तो करोड़ फूल होना है, अरब फूल होना है ।

एक फूल को तो सारे विश्व पर फैल जाना है ।

फूल रक्के कैसे ।

फूल एक यात्रा है, मजिल नहीं ।

पत्थर पड़ा है ।

फूल खिलते हैं, मुरझा जाते हैं;

आते हैं, जाते हैं,

रुकते हैं क्षण-भर पत्थर के पास, फिर यात्रा पर निकल जाते हैं ।

पत्थर अपनी जगह पड़ा है ।

यह जड़ता ही सासारिक मन है ।

तुमसे इस किनारे को छुड़ाने का सवाल नहीं है — तुमसे किनारा ही छुड़ाने का सवाल है ।

इसे मुझे दोहराने दो ।

इस किनारे को छुड़ाने का सवाल नहीं है । तुमसे दुकान नहीं छुड़ानी है, क्योंकि तुम मकान छोड़ दोगे तो मदिर पकड़ लोगे । तुम खाता-बही छोड़ दोगे तो तुम बेद-कुरान-नीता पकड़ लोगे । तुमसे यह नहीं छुड़ाना है, नहीं तो तुम वह पकड़

लोगे । तुमसे पकड़ छुड़ानी है । तुमसे किनारा नहीं छुड़ाना है, तुम्हारी जड़ता छुड़ानी है, यह बैठ जाने का ढग छुड़ाना है

- ताकि तुम्हें प्रवाह होना आ जाए
- ताकि तुम गत्यात्मक हो जाओ
- ताकि बहने में ही तुम्हारी मजिल हो
- रुकना तुम भल जाओ
- तुम चलते ही रहो ।

धीरे-धीरे आगर तुम ठीक से चलने की कला सीख जाओ तो तुम मिट जाओगे, चलना ही रह जाएगा । तुम भी इसीलिए हो, क्योंकि तुम बैठ जाते हो ।

इसे कभी तुमने ख्याल किया ? तुम कभी तेजी से दौड़े ? अगर तुम तेजी से दौड़ो तो तुम मिट जाते हो, दौड़ना रह जाता है ।

तुम कभी परिपूर्ण रूप से नाचे ? अगर तुम समग्रतया नाच उठो तो तुम मिट जाते हो, नाच रह जाता है ।

जब भी तुम गत्यात्मक होते हो, 'डायनेमिक' होते हो, तब तुम्हारा अहकार मिट जाता है ।

जहाँ तुम बैठे कि अहकार आया ।

जहाँ तुम रुके कि अहकार आया ।

जहाँ तुमने किनारा पकड़ा कि अहकार आया ।

जहाँ तुमने कहा कि बस आ गये, कि अहकार आया ।

जीवन अगर तुम्हारा पूरा गत्यात्मक हो और तुम बैठने की आदत छोड़ जाओ अगर तुम कभी बैठो भी तो इसीलिए कि चलने की तैयारी करते हो ।

कभी-कभी बीज भी विश्राम करता है, वसत की प्रतीक्षा करता है, महीनों पड़ा रहता है । जब बीज विश्राम करता है तो ककड़-पत्थर में और बीज में फक्क करना मुश्किल होगा-लेकिन फर्क तो है ।

ककड़-पत्थर विश्राम ही करते हैं, कही जाते नहीं । बीज कही जाने के लिए तैयारी कर रहा है, साज-सामान जुटा रहा है, ठीक घड़ी-मुहर्त की प्रतीक्षा कर रहा है, ठीक समय और अनुकूल अवसर की बाट जोह रहा है, जाने को तत्पर है ।

जैसे कभी दौड़ की प्रतियोगिता में तुमने देखा हो, दौड़ने वाले लोग खड़े होते हैं लकीर पर, लेकिन खड़े नहीं होते, भागे-खड़े होते हैं घण्टी बजेगी या विसिल बजेगी, और वे दौड़ पड़ेंगे । बिलकुल तत्पर होते हैं ! अगर तुम उन्हे देखो तो तुम यह न कह सकोगे कि वे खड़े हैं, तुम कहोगे वे अब गये, अब गये । वे प्रतीक्षा में हैं, रोआं-रोआं तैयार हैं, क्योंकि एक क्षण भी चूकना खतरनाक है ।

फूल और ककड़ जब पास रखे हो तब भी फूल का जो बीज है वह ऐसे ही

खड़ा है जैसे दोड़ाक, या तैराक तैरने के लिए तत्पर हो, सिर्फ़ प्रतीक्षा है ठीक मुहूर्त की, और दोड़ जाएंगे । ककड़ वही पड़ा रह जाएगा, बीज यात्रा पर निकल जाएगा ।

तुम अगर कभी रुको भी तो सिर्फ़ थकान मिटा लेने को । कोई पड़ाव तुम्हारी मजिल न बने । रात-भर रुके और मुवह चल पड़ो । यह जीवन धारा ही परमात्मा का अनुभव है ।

तो अगर तुम्हें मुझे ठीक-ठीक समझना हो तो तुम तृप्ति और अतृप्ति के संयम में और सयोग में और समीत में ही समझ पाओगे । मैं तुम्हें तृप्ति भी दूँगा तुम्हारे पुराने दुख छिनेगे, तुम्हे नये दुख भी दूँगा । तुम्हारी पूरी पुरानी पीड़ाएँ पिर जाएंगी, तुम्हें नये दर्द भी दूँगा, ताकि तुम उन नये दर्दों को मिटाने में और नये-नये कदम उठाओ ।

परमात्मा प्राप्ति नहीं अकेली, पीड़ा भी है । जिसने ऐसा जाना, उसके लिए हर कदम मजिल हो जाता है ।

और तुम अगर गौर से देखोगे तो तुम परमात्मा को हर जगह गत्यात्मक पाओगे । लेकिन तुमने झूठे परमात्मा खड़े किये हैं । मदिरों में पत्थरों की मूर्तियाँ बना ली हैं, वे ठहरो हैं वही की वही । उनसे तो तुम्हीं थोड़े ज्यादा परमात्मा हो चलते तो हो, उठते-डॉलते तो हो, तुम्हारे जीवन में कुछ गति तो है – सुबह कही, साँझ कही । मदिर का तुम्हारा भगवान तो वही का वही पड़ा है ।

अच्छा हो कि तुम फूलों को पूजो । लेकिन तुम उलटे आदमी हो । तुम जिदा फूलों को तोड़ के मुर्दा परमात्माओं के चरणों में रख आते हो । इससे तो अच्छा होता कि अपने मुर्दा परमात्मा को उठा के फूलों के चरणों में रख देते ।

गति को पूजो, अगति को नहीं ।

अगति जड़ता है ।

प्रवाह को पूजो, पत्थरों को नहीं ।

लेकिन पत्थर से तुम्हारा रास बैठ जाता है, क्योंकि तुम जड़ हो । तुमने अकारण ही पत्थर के भगवान नहीं बना लिये हैं, वे तुम्हारी जड़ता के सूचक हैं, सबूत हैं । तुमने अपनी ही छवि में उनको ढाल लिया है । तुमने अपनी ही प्रतिमाएँ गढ़ ली है – तुमसे भी ज्यादा मुर्दा ।

थोड़ा पहचानो । थोड़ा जागो ।

गत्यात्मक को पूजो ।

देखो जाँद चलता है, सूरज चलता है, तारे चलते हैं । कुछ ठहरा हुआ नहीं है ।

इस जीवन को अगर तुम गौर से देखोगे तो कुछ ठहरी हुई कोई भी चीज़ न पाओगे । यहाँ सब चल रहा है ।

तुम इतनी जल्दी मे क्यों हो ठहर जाने की ?

यह ठहर जाने की आकॉक्षा आत्मधाती है, सुसाइडल है । तुम मरना चाहते हो ।

जियो ! हिम्मत करो जीने की ! और जितनी तुम्हारी हिम्मत बढ़ेगी जीने की उतना बड़ा जीवन तुम्हें उपलब्ध होगा — उसका अर्थ है, उतनी बड़ी चुनौती आएगी, उतनी बड़ी पीड़ा उतरेगी; उतने बड़े पहाड़ों को चढ़ने का अवसर मिलेगा ।

और यह अवमर कभी समाप्त नहीं होता । यह समाप्त हो जाता तो दुर्भाग्य था । क्योंकि अगर ऐसी घड़ी आ जाए जहाँ तुम उस किनारे को पा लो तो फिर क्या करोगे ?

ब्रटोड रसेल ने मजाक में ही कही कहा है कि मैं हिन्दुओं के मोक्ष से डरता हूँ ‘सब पा लिया, फिर ? फिर क्या करोगे ?’

रसेल गत्यात्मक व्यक्ति था, मुर्दा परमात्मा से, मुर्दा मोक्ष से डरे, स्वाभाविक है ।

मोक्ष लेकिन मुर्दा नहीं है । जिन्होने मोक्ष को मुर्दा बना लिया वे खुद मुर्दा होगे, तो उन्होने अपनी प्रतिभावि आरोपित कर ली है ।

सागर की लहरे टकराती ही रहती हैं — अनत काल से, अनत काल तक ! ऐसे ही चेतन्य का सागर लहराता ही रहता है ।

बुद्ध ने तो कहा : ‘है’ शब्द झूठा है । तुम कहते हो नदी है, बुद्ध कहते हैं नदी हो रही है, बह रही है, है नहीं । ‘है’ शब्द झूठ है । तुम कहते हो वृक्ष है । जब तुमने कहा, वृक्ष है, तभी वृक्ष में कुछ नयी कोपलें आ गयीं, कुछ पुराने पत्ते झड़ गये । तुम्हारे कहते-कहते ही तुम्हारा वक्तव्य झूठा हो गया, वृक्ष थोड़ा ऊपर छलाँग लगा गया, नयी जड़ें फट आयीं ।

‘है’ की अवस्था में तो कुछ भी नहीं है । ठहरा हुआ तो कुछ भी नहीं है ।

तुम घड़ी-भर मुझे सुनोगे, घड़ी-भर बूढ़े हो गये । आये थे तुम बैसे ही बापस न आओगे । चाहे तुम न समझ पाओ, लेकिन गगा बहुत बह गयी ! सब बदल गया ! तुम ही नहीं बदल रहे हो, सारा सासार बदल रहा है ।

गति जीवन है । और परमात्मा महाजीवन है तो महागति है ।

तो मैं तुम्हें तृप्ति भी दूँगा, इसीलिए ताकि तुम्हें और अतृप्ति दे सकूँ । मैं तुमसे क्षुद्र की तृप्ति छीन लूँगा और विराट की अतृप्ति दूँगा । मैं तुमसे व्यर्थ की तृप्ति और व्यर्थ की अतृप्ति दूँगा । साथ के दुख तुमसे छीन लिये जाएंगे, तुम्हें परमात्मा की पीड़ा दूँगा ।

पीड़ा भी ठीक और गलत होती है ।

एक आदमी रो रहा है, उसका एक सप्ता खो गया है । यह क्षुद्र की पीड़ा

है। यह हो तो भी ठीक नहीं। इसका रूपया भी मिल जाए तो भी क्या तृप्ति मिलने वाली है। क्षुद्र की ही पीड़ा थी, क्षुद्र की ही तृप्ति होगी। यह अमाना आदमी है रूपया खो गया है, इसलिए रो रहा है। फिर किसी को समझ में आयी कि मैं क्षुद्र ही खो गया हूँ, मेरा ही कुछ पता नहीं चलता, कहाँ हूँ। 'कहाँ हूँ' – अपने को खोजने लगा। बड़ी पीड़ा उठेगी। रूपये की पीड़ा बहुत बड़ी न थी, कोई भी हल कर देता, राह चलता कोई भी राहगीर एक रूपया दया करके दे देता। अब एक ऐसी पीड़ा उठी तुम्हें जो कोई भी हल न कर पाएगा। अब एक ऐसी पीड़ा उठी जो तुम्हें ही हल करनी पड़ेगी। ससार का कोई सिक्का इसे हल न कर पाएगा।) किर किसी दिन इसकी भी झलक मिलनी शुरू हो जाती है कि मैं कौन हूँ। तब एक और नयी पीड़ा उठती है कि यह विराट क्या है। अपने को जान लिया, इतने से क्या होगा – यह बड़ा सागर क्या है। बूँद की पहचान से क्या होगा। अभी बूँद को पहचान भी न पाये थे कि सागर की जिजासा उठने लगी। अभी बूँद को पहचान भी न पाये थे कि सागर ने द्वार पर दस्तक दी कि बैठ भत जाना।

और मैं तुमसे कहता हूँ और भी बड़े सागर हैं। एक को चुकाओगे, दूसरा द्वार खुलेगा। एक द्वार निपटता नहीं कि नये द्वार खुल जाने हैं।

तो मेरे साथ तो केवल वे ही चल सकते हैं, जो तृप्ति और अतृप्ति दोनों को साथ-साथ लेने को तैयार हैं, जो मङ्गधार मे जीने को तैयार है। और इसे ही मैं परमात्म-जीवन कहता हूँ। ऐसे जीवन के धारक को ही मैं सन्यस्त कहता हूँ। तुम उमे तृप्ति भी पाओगे और अतृप्ति भी। जहाँ तक व्यर्थ ससार का सम्बद्ध है, तुम उसे बड़ा तृप्ति पाओगे, और जहाँ तक उस आत्मिक की, अतिम की पुकार है, तुम उसे बड़ा अतृप्ति पाओगे। एक दिव्य असतोष उसमें तुम जलता हुआ पाओगे। ससार की तरफ से तुम उसमें पाओगे बड़ी तृप्ति, सब मिला हुआ है। और परमात्मा की तरफ से पाओगे बड़ी अतृप्ति, कुछ भी मिला हुआ नहीं है।

इसलिए तुम्हे दोनों बातें लगेगी कभी लगेगा, बहुत-बहुत पाया मेरे पास; और कभी लगेगा, बहुत-बहुत चूँके। दोनों ही ठीक हैं। और तुम दोनों के साथ ही राजी रहना, तो ही मेरे साथ, मेरे हाथ में हाथ ढाल के चल सकोगे।

दूसरा प्रश्न आपने कहा . . तब पाओगे कि भक्त ही भगवान है। प्रश्न उठता है कि एक भक्त भगवान होना पसद करे और दूसरा सिर्फ भक्त रहना चाहे, तो दोनों में श्रेष्ठ कौन है?

जो भगवान होना चाहे, वह तो हो न पायेगा। और जो भक्त भक्त ही रहना चाहे वह भगवान हो जाएगा। श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ का सबाल नहीं उठता, क्योंकि एक ही हो पायेगा। जो नहीं होना चाहता वही हो पायेगा। जो होना चाहता है, वह तो

वचित रह जाएगा । वह तो चाह भी अहकार की ही है ।

लेकिन भामला थोड़ा नाजूक है ।

कभी-कभी ऐसा होता है कि विनम्रता भी अहकार की ही होती है । कही तुम्हारी विनम्रता भी अहकार की ही न हो । कही तुम इसलिए ही न कह रहे होओ कि मैं नहीं होना चाहता, क्योंकि तुम जानते हो कि जो इनकार करते हैं वही हो पाते हैं । तो तुम चालाक हो । तो तुम्हारी विनम्रता व्यभिचारी है । तो तुम्हारी विनम्रता शुद्ध नहीं, पवित्र नहीं, कुँआरी नहीं, वेश्या जैसी है ।

जो भगवान होना चाहता है, जिसका यह अहकार है कि भगवान होना है, वह तो पा नहीं सकेगा । लेकिन जो इसलिए विनम्र हो जाता है कि यही तरकीब है भगवान होने की, वह भी न पा सकेगा ।

और तब एक और जाल की बात है, वह भी समझ लेनी चाहिए । यह भी हो सकता है, जैसे कि विनम्र छिपाये हुए अहकार हो सकता है, अहकारी के भीतर छिपी हुई विनम्रता भी हो सकती है । कोई बड़ी सहजता से भी कह सकता है कि मैं भगवान होना चाहता हूँ, इसमें 'मैं' की कोई बात ही न हो । यह चरा कठिन है समझना । इसमें 'मैं' का कोई भाव ही न हो, इसमें शुद्ध पुकार हो अस्तित्व की, यह सीधी-सीधी बात हो, इसमें कही 'मैं' का कोई सवाल न हो, इसमें ऐसे ही हो कि मैं चाहता हूँ कि मुझमें भगवान हो, यह इतना ही हो कि मैं इससे कम पेराजी नहीं हो सकता । 'सब डुबाने को तैयार हूँ, सब गँवाने को तैयार हूँ— लेकिन जब तक भगवान ही मेरे हृदय में वास न करे, जब तक वही मुझे भर न दे, तब तक चैन नहीं ।' यह बड़ी गहरी प्यास हो सकती है, यह अहकार हो ही न ।

मैं तुमसे यह कह रहा हूँ कि अहकार न हो तो ही भक्त भगवान हो पाता है । प्रगट-अप्रगट का सवाल नहीं है — वास्तविक विनम्रता हो ।

कभी-कभी ऊपर से शब्द तो अहकार के दिखायी पड़ते हैं, भीतर बड़ी विनम्रता होती है । और कभी-कभी ऊपर से शब्द तो बड़ी विनम्रता के होते हैं, भीतर बड़ा अहकार होता है ।

इसे तुम भलीभांति खोज ले सकते हो अपने भीतर । दूसरे का कोई प्रयोजन भी नहीं है । अपने भीतर तो तुम जान सकते हो कि तुम्हारी विनम्रता अहकार का ही आभूषण तो नहीं है, या तुम्हारा अहकार केवल वक्तव्य की ही बात हो ।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा 'भामेक शरण द्वज ! तू मेरी शरण आ !' उस शरण में कृष्ण में 'मैं' जैसा कुछ भी नहीं था — 'मैं' था ही नहीं । यह केवल वक्तव्य की बात थी, भाषा की बात थी । कृष्ण के भीतर से परमात्मा बोला, 'मैं' कुछ भी न था वहाँ ।

कभी-कभी तुम कहते हो 'मैं तो कुछ भी नहीं, आपके पैरों की छूल हूँ ।

लेकिन जरा गौर करना । जिसे तुम कह रहे हो, वह अगर मान ले कि बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप, यह तो मैं पहले ही से जानता हूँ कि आप कुछ भी नहीं, पैरों की धूल हैं, तब एक धक्का लगेगा छाती में कि अरे ! छोट लगेगी । अहंकार पीड़ित हो उठेगा, फुकार उठेगा । तुम इस आदमी को कभी माफ़ न कर पाओगे । क्योंकि यह जो कह रहा था वह इसका प्रयोजन न था । यह तो असल में यह कह रहा था कि तुम कहो कि ' अरे आप, और पैर की धूल । आप तो सिर के ताज हैं । ' यह कहलवाने के लिए कह रहा था । यह चालाक है । यह होशियार है । यह गणित समझता है ।

तो तुम अपने भीतर जानना । दूसरे से कोई प्रयोजन भी नहीं है । दूसरे को ठीक-ठीक समझ भी न पाओगे, क्योंकि दूसरे के शब्द ही सुनोरी पड़ेंगे । उसके भीतर क्या धृत रहा है, तुम कैसे जानोगे ? लेकिन तुम अपने भीतर तो जाँच कर ही ले सकते हो ।

अगर तुम्हारी विनम्रता वास्तविक है, तो 'मैं' की उद्घोषणा भी उसे मिटा न सकेगी । और अगर तुम्हारा अहंकार प्रगाढ़ है तो ' मैं आपके पैरों की धूल हूँ', इस तरह का वक्तव्य उसे नष्ट न कर सकेगा ।

लेकिन... भगवान् वही हो पाते हैं जो ' नहीं ' हो जाते हैं ।

और दोनों में कौन श्रेष्ठ है, यह तो पूछना ही मत । क्योंकि दोनों कभी पहुँच ही नहीं पाते । एक ही पहुँचता है । वही पहुँचता है जिसकी विनम्रता प्रमाणिक है । और प्रमाणिक विनम्रता का भाषा से कोई सम्बंध नहीं । प्रमाणिक विनम्रता का हृदय से सम्बंध है, तुम्हारी अन्तरानुभूति से सम्बंध है ।

' मूरठे-नक्षे-रहगुजर आजिजो इक्षियार कर

वर्ण की रफ़अतों पे भर तुम्हाको मुकाम चाहिए । '

अगर आकाश की ऊँचाई पर अपना मुकाम बताना हो तो पदचिह्नों की भाँति विनम्र हो जा । लेकिन ध्यान रखना, इसीलिए मत पदचिह्नों की भाँति विनम्र हो जाना कि आकाश पर मुकाम चाहिए, नहीं तो चूक आओगे । आकाश पर मुकाम चाहने की तो बात ही न हो । पृथ्वी पर पदचिह्नों की भाँति हो जाना, आकाश पे मुकाम अपने से हो जाता है ।

जो मिट जाते हैं, वे हो जाते हैं । जो अपने को छोड़ देते हैं, वे बच जाते हैं । मृत्यु यहाँ जीवन का सूत्र है और मिट जाना पा सेने की कला है ।

तीसरा प्रश्न ' भवत्या अनुवृत्या ' ऐसा कहा है, तो भक्षित साकार ही होनी चाहिए । सूर्य सूर्यलोक में साकार ही है, वैसे ही भगवान् भी साकार क्यों नहीं ?

किसने कहा, भगवान् साकार नहीं है ?

सभी आकार उसी के हैं। भगवान का अपना कोई आकार नहीं है। तुम भगवान का आकार खोज रहे हो, इसलिए सदाल उठता है कि भगवान साकार क्यों नहीं।

वृक्ष में भगवान् वृक्ष है, पक्षी में पक्षी है, ज्ञाने में ज्ञाना है, आदमी में आदमी है, पत्थर में पत्थर है, फूल में फूल है। तुम भगवान का आकार खोज रहे हो, तो चूकते चले जाओगे।

सभी आकार जिसके हैं, उसका अपना कोई आकार नहीं हो सकता। अब यह बड़े मजे की बात है। इसका अर्थ हुआ कि सभी आकार जिसके हैं, वह स्वयं निराकार ही हो सकता है। यह जरा उलटी लगती है बात सभी आकार जिसके हैं वह निराकार।

सभी नाम जिसके हैं उसका अपना नाम कैसे होगा? जिसका अपना नाम है उसके सभी नाम नहीं हो सकते। सभी रूपों से जो जलका है उसका अपना रूप नहीं हो सकता। जो सब जगह है उसे तुम एक जगह खोजने की कोशिश करोगे तो चूक जाओगे। सब जगह होने का एक ही ढग है कि वह कही भी न हो। अगर कही होगा तो सब जगह न हो सकेगा। कही होने का अर्थ है सीमा होगी। सब जगह होने का अर्थ है कोई सीमा न होगी।

तो परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा सभी के भीतर वहती जीवन की धार है। वृक्ष में हरे रंग की धार है जीवन की। वृक्ष आकाश की तरफ उठ रहा है—वह उठान परमात्मा है। वृक्ष छिपे हुए बीज से प्रगट हो रहा है—वह प्रगट होना परमात्मा है।

परमात्मा अस्तित्व का नाम है।

परमात्मा ऐसा नहीं है जैसे पत्थर है। परमात्मा ऐसे नहीं है जैसे तुम हो। परमात्मा ऐसा नहीं जैसा कि चाँद-तारे हैं। परमात्मा किसी जैसा नहीं, क्योंकि फिर सीमा हो जाएगी।

अगर परमात्मा तुम जैसा हो, पुरुष जैसा हो, तो किर स्त्री में कौन होगा? स्त्री जैसा हो तो पुरुष विचित हो जाएगा। मनुष्य जैसा हो तो पशुओं में कौन होगा? और पशुओं जैसा हो तो पौधों में कौन होगा?

इसे समझने की कोशिश करो।

परमात्मा जीवन का विशाल सागर है। हम सब उसके रूप हैं, तरण हैं। हमारे हजार ढग हैं। हमारे हजारों ढगों में वह मौजूद है। और ध्यान रहे कि हमारे ढग पर ही वह समाप्त नहीं है, वह और भी ढग ले सकता है। वह कभी भी ढगों पर समाप्त नहीं होगा। उसकी समावना अनत है। तुम ऐसी कोई स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते जहाँ परमात्मा पूरा-पूरा प्रगट हो गया हो। कितना ही प्रगट होता चला जाए, अनत रूप से प्रगट होने को शेष है।

इसलिए तो उपनिषद कहते हैं उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है । हम कितना ही निकालते चले जाएँ, हमारे निकालने से कुछ कमी नहीं पड़ती । हमारे निकालने से वह कुछ छोटा नहीं होता जाता— पूर्ण का पूर्ण ही शेष रहता है ।

पूछा है 'भक्ति साकार ही होनी चाहिए ।'

भक्ति तो साकार होगी, भगवान साकार नहीं है । योड़ी कठिनाई होगी तुम्हें समझने मे । क्योंकि शास्त्रों से बैंधी हुई बुद्धि को बड़ी अड़चने हैं ।

भक्ति तो साकार है, लेकिन भगवान साकार नहीं है । क्योंकि भवित्व का सम्बद्ध भक्त से है, भगवान से नहीं है । भक्त साकार है, तो भक्ति साकार है । लेकिन भक्ति का अतिम परिणाम भगवान है । प्रथम तो यात्रा शुरू होती है भक्त से, अतिम उपलब्धि होती है भगवान पर । शुरू तो भक्त करता है, पूर्णता भगवान करता है । प्रयत्न तो भक्त करता है, प्रसाद भगवान देता है ।

तुम शुरू करने वाले हो, पूरे करने वाले तुम नहीं हो— पूरा परमात्मा करेगा ।

तो, भक्ति के दो अर्थ हो जाएँगे । जब भक्त शुरू करता है तो वह साकार होती है, फिर जैसे-जैसे भगवान भक्त में उत्तरने लगता है, निराकार होने लगती है । जब भक्त पूरा मिट जाता है, भक्ति शून्य हो जाती है, निराकार हो जाती है । फिर तुम भक्त को बैठ के मंदिर मे घटी बजाते न देखोगे । फिर अहनिश उसके प्राणों की घक-घक ही उसकी घटी है । फिर तुम भक्त को राम-राम चिलाते न देखोगे, क्योंकि अब भक्त जो भी सोचे, वही राम-राम है । अब तुम भक्त को तिलक-टीका लगाते न देखोगे, अब तो भक्त ही स्वयं तिलक-टीका हो गया, वह स्वयं लग गया । अब अपना कुछ बचा नहीं । अब तुम भक्त को भविर जाते न देखोगे । हीं, अगर तुम्हारे पास अंखें हो तो मंदिर को भक्त के पास आते देखोगे । अब तुम भक्त को भगवान को पुकारते न देखोगे, अगर तुम्हारे पास सुनने वाले कान हो तो तुम भगवान को देखोगे कि पुकार रहा है भक्त को ।

भक्त ने शुरू की थी यात्रा, भगवान ने पूरी की । तुम एक हाथ बढ़ाओ, दूसरा हाथ उस तरफ से आता है । इस तरफ का हाथ साकार है, उस तरफ का हाथ निराकार है । इसलिए तुम जिद मत करना कि उस तरफ का हाथ भी साकार हो, अन्यथा छूटा हाथ तुम्हारे हाथ में पड़ जाएगा । फिर तुम्हारे ही दोनों हाथ होने इधर से भी तुम्हारा, उधर से भी तुम्हारा ।

उधर से आने वाला हाथ तो निराकार है, निर्गुण है । निर्गुण का यह भतलब नहीं है कि परमात्मा में कोई गुण नहीं है । निर्गुण का इतना ही भतलब है कि सभी गुण उसके हैं । इसलिए कोई विशेष गुण उसका नहीं हो सकता ।

निराकार का यह अर्थ नहीं कि उसका कोई आकार नहीं है, सभी आकार

जो कभी हुए, जो है, और जो कभी होगे, उसी के हैं। तरल है। सभी आकारों में डल जाता है। किसी आकार में कोई अडचन नहीं पाता।

भक्त की तरफ से तो भक्ति साकार होती, लेकिन जैसे-जैसे भक्त परमात्मा के करीब पहुँचेगा वैसे-वैसे निराकार होने लगेगी। और एक पडाव ऐसा आता है, जहाँ भक्त की तरफ से सब प्रयास समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि प्रयास भी अहकार है। मैं कुछ कहूँगा तो परमात्मा मिलेगा, इसका तो अर्थ हुआ कि मेरे करने पर उसका मिलना निश्चिन्त है। इसका तो यह अर्थ हुआ कि यह भी एक तरह की कमाई है। इसका तो यह अर्थ हुआ कि अगर मैंने सिक्के मौजूद कर दिये तो मैं उसको वैसे ही खरीद के ले आऊँगा जैसे बाजार से किसी और सामान को खरीद के ले आता हूँ पुण्य के सिक्के सही, भक्ति-भाव के सिक्के सही।

नहीं, ऐसा नहीं है। मैं सब भी पूरा कर दूँ तो भी उसके होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। मेरे सब करने पर भी वह नहीं मिलेगा, जब तक कि मेरा 'करने वाला' मौजूद है।

तो भक्त पहले करने से शुरू करता है, बहुत करता है, बहुत रोता है, बहुत नाचता है, बहुत याद करता है, बहुत तड़फता है, फिर धीरे-धीरे उसे समझ में आता है कि मेरी तड़फन में भी मेरी अस्मिता छिपी है, मेरी पुकार में भी मेरा अहकार है, मेरे भजन में भी मैं हूँ, मेरे कीर्तन में भी मेरी छाप है, कर्तृत्व मौजूद है।

जिस दिन यह समझ आती है उस दिन भक्त मिट जाता है, उस दिन जैसे किसी ने दर्पण गिरा दिया और काँच के टुकड़े-टुकड़े हो गये, उस दिन भक्त नहीं रह जाता।

जिस दिन भक्त नहीं रह जाता, भक्ति कीत करे। कौन मदिर जाए। कौन मत्तोच्चार करे। कौन विद्वि-विद्वान पूरा करे। एक गहन सन्नाटा धेर लेता है। उसी सञ्चाटे में दूसरा हूथ उतरता है।

तुम मिटे नहीं कि परमात्मा आया नहीं। तुमने सिंहासन खाली किया कि वह उतरा। तुम्हारी शून्यता में ही उसके आगमन की समावना है।

भक्ति तो साकार है, भगवान निराकार है। और भक्ति के सम्बन्ध में हम क्या कहे? भक्त अपने को साकार समझता है, वह उसकी ध्राति है, जिस दिन जानेगा, अपने को भी निराकार पायेगा। भक्त अपने को भक्त समझता है, यह भी उसकी ध्राति है, जिस दिन जानेगा उस दिन अपने को भगवान पायेगा।

सब आकार स्वप्नवत् हैं। निराकार सत्य है, आकार स्वप्न है। लेकिन हम जहाँ खड़े हैं, वहाँ आकारों का जगत है। हम अभी स्वप्न में ही पड़े हैं। हमें तो जागना भी होगा तो स्वप्न में ही थोड़ी यात्रा करनी पड़ेगी।

भक्ति साकार ही होनी चाहिए - होती ही है। निराकार भक्ति हो नहीं

सकती, क्योंकि निराकार में करने को क्या रह जाता है, करने वाला नहीं रह जाता ।

भक्ति तो साकार ही होगी, लेकिन भगवान निराकार है। इसलिए एक-न-एक दिन भक्ति भी जानी चाहिए। भक्ति की पूर्णता पर भक्ति भी चली जाती है। प्रार्थना जब पूर्ण होती है तो प्रार्थना भी चली जाती है। ध्यान जब पूर्ण होता है तो ध्यान भी व्यर्थ हो जाता है – हो ही जाना चाहिए। जो चौंक भी पूर्ण हो जाती है वह व्यर्थ हो जाती है। जब तक अधूरी है तब तक ठीक है मंदिर जाना होगा, पूजा करनी होगी। करना, लेकिन याद रखना, कहीं यह न भूल जाए कि यह सिर्फ शुरुआत है। यह जीवन की पाठमाला की शुरुआत है, अत नहीं है। यह बारहखड़ी है, क ख ग है।

छोटे बच्चों की किताबे देखी हैं। कुछ भी समझाना हो तो चित्र बनाने पड़ते हैं, क्योंकि छोटा बच्चा चित्र ही समझ सकता है। आम तो छोटे में लिखो, आम का बड़ा चित्र बनाओ। पूरा पन्ना आम के चित्र से भरो, कोने में आम लिखो। क्योंकि पहले वह चित्र देखेगा, तब वह शब्द को समझेगा।

ऐसा ही भक्त है। भगवान ! 'भगवान' तो कोने में रखो, बड़ी मूर्ति बनाओ, खूब सजाओ। अभी भक्त बच्चा है। अभी उस खाली कोने में जो भगवान है वह उसे दिखायी न पड़ेगा।

तुमने कभी गौर किया ? मंदिर गये हो ? – जहाँ मूर्ति है वहाँ तो भगवान है; लेकिन खाली जगह जो मूर्ति को धेरे हुए है, वहाँ भगवान दिखायी पड़ा ? वहाँ भी भगवान है, तुम्हें नहीं दिखायी पड़ा, क्योंकि तुम्हे मूर्ति चाहिए। बचपन है अभी। मंदिर में भगवान दिखायी पड़ा, मंदिर के बाहर कौन है ? मंदिर की दीवालों को कौन छू रहा है ? सूरज की किरणों में किसने मंदिर की दीवालों पर थाप दी है ? हवाओं में कौन मंदिर के आमपास लहरें ले रहा है ? मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए भक्तों के भीतर कौन सीढ़ियां चढ़ रहा है ? वहाँ तुम्हें अभी नहीं दिखायी पड़ा। अभी बचकाना है मन। अभी चित्र चाहिए, मूर्ति चाहिए।

साकार से शुरुआत करनी होती है, लेकिन साकार पे रुक मत जाना। मैं यह नहीं कहता हूँ कि साकार की शुरुआत ही मत करना। नहीं तो बच्चा भाषा कभी सीखेगा ही नहीं। वह सीखने का ढंग है, बिलकुल ज़रूरी है। अडचन वहाँ शुरू होती है जहाँ तुम पहले पाठ को ही अतिम पाठ समझ के बैठ जाते हो।

सीख लेना और मुक्त हो जाना ।

जो भी सीख लो, उससे भूक्ति हो जाती है ।

आगे चलो !

मूर्ति में देख लिया – अब अमूर्त में देखो ।

आकार में देख लिया – अब निराकार में देखो ।

शब्द में सुन लिया – अब नि शब्द में सुनो ।

शास्त्र में पढ़चान लिया – अब मौन में, शून्य में चलो ।

पर जल्दी भी मत करना । अगर मंदिर में न दिखा हो तो मंदिर के बाहर तो दिख ही न सकेगा । जल्दी भी मत करना ।

आदमी का मन अति पर बड़ी आसानी से चला जाता है ।

तो इस देश में तो बड़ी अतियाँ हुईं । इसमें एक तरफ लोग हैं जो कहते हैं – परमात्मा निराकार है । वे किसी तरह की मूर्ति को बरदाश्त न करेंगे, किसी तरह की पूजा को बरदाश्त न करेंगे ।

मुसलमानों ने यही रुख पकड़ लिया, तो मूर्तियों को तोड़ने पे उतारू हो गये ।

अब थोड़ा सोचो पूजा के योग्य तो मूर्ति नहीं है, लेकिन तोड़ने के योग्य है ।

इतने में तो पूजा ही हो जाती । जब परमात्मा की कोई मूर्ति ही नहीं है तो तोड़ने का भी क्या प्रयोजन, तोड़ने में भी क्यों श्रम लगाते हो ?

अति होती है या तो पूजा करेंगे, या तोड़ेंगे ।

समझ नहीं है अति के पास कोई ।

तो एक तरफ है जो जिद्द किये जाते हैं कि परमात्मा निराकार है । ठीक कहते हैं, बिलकुल ठीक ही कहते हैं परमात्मा निराकार है । लेकिन आदमी उस जगह नहीं है अभी, जहाँ ने निराकार से सबध जुड़ सके । आदमी अभी निराकार के योग्य नहीं है । होगा बुद्ध के लिए, पर आदमी बुद्ध कहाँ ? होगा महावीर के लिए, लेकिन किससे बातें कर रहे हो ? जिससे बातें कर रहे हो, उसकी भी तो सोचो । दया करो उस पर । तुम परम स्वस्थ लोगों की बातें अस्पताल में पढ़े बीमारों से कर रहे हो ! बुद्ध को ज़रूरत नहीं है, लेकिन जिसको तुम समझा रहे हो, उसको ? उस पे ध्यान करो, करणा करो थोड़ी ।

निराकार की बाते करने वाले बड़े दयाहीन हैं । करणा उनके मन में चरा भी नहीं है । इसलिए उनकी निराकार की बातें सब थोथी, पांडित्य हैं, शास्त्रीय हैं ।

फिर दूसरी तरफ साकार की बात करने वाले लोग हैं, उनके मन में आदमी के प्रति दया तो है, लेकिन सत्य की निष्ठा नहीं । ठीक कहते हैं : इस आदमी का ले जाना है । जिसका सारा चित्त मूर्तियों से भरा है, जिसके चित्त में सब आकार ही आकार हैं, उससे निराकार की अभी पहचान नहीं हो सकती, आकारों से ही सम्बद्ध जुड़ाना होगा, फिर धीरे-धीरे छुड़ा लेंगे, सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ा लेंगे । छलांग न हो सकेगी, सीढ़ी-सीढ़ी यात्रा हो जाएगी ।

ठीक कहते हैं कि परमात्मा साकार है । लेकिन फिर जिद्द पैदा होती है । फिर जिद्द यह पैदा होती है कि परमात्मा साकार है, यह कोई अतिम सत्य है । तो

फिर लोग मूर्तियों से ही बैधे रह जाते हैं। कुछ मूर्ति-भजक हैं, मूर्तियाँ तोड़ने में जीवन गँवाते हैं, कुछ मूर्ति-पूजक हैं, मूर्तियों को सजाने में जीवन गँवाते हैं।

मेरी तुम पूछते हो तो मैं तुमसे कहूँगा। मुझे दोनों की बातों में सार है और दोनों की बातों में खतरा भी दिखायी पड़ता है। सार है दोनों की बातों में और खतरा भी दोनों की बातों में। तुम सार-सार चुन लेना और खतरे से बच जाना।

मेरा कोई मजहब नहीं है, मेरा कोई सम्प्रदाय नहीं है। इसलिए मुझे कोई अड्डचन भी नहीं है, किसी से भी सत्य, जहाँ भी सत्य हो, वहाँ देखने में मुझे कोई अड्डचन नहीं है। मेरा कोई आग्रह नहीं है। मेरे पास कोई कसौटी नहीं है जिस पे मैं तौलूँ। मैं सीधा देख पाता हूँ।

जो साकार की बात कहते हैं, वे ठीक कहते हैं, आधी मजिल तक वे तुम्हारे साथ हो सकेंगे — बस आधी मजिल तक। उसके बाद निराकार की बात तुम्हारे लिए महत्वपूर्ण होने लगेंगी। तब तुम विरे मत रह जाना, गिरफ्त में मत रह जाना। तब तुम यह मत कहना कि हम तो साकार की पूजा करते रहे अब तक, आकार को भीतर न प्रवेश करने देंगे। अँख बद मत कर लेना जब निराकार पुकारे। यह मत कहना कि यह मेरी धारणा में नहीं है, यह तो हमारा शास्त्र नहीं है, हम तो मानने वाले साकार के हैं। अँख बद मत कर लेना। पीठ मत फेर लेना। क्योंकि तुम्हारा साकार ही वहाँ ले आया है, उसको तो तुम अपनी साकार की सफलता मानना कि तुम्हारी पूजा पूरी हुई, तुम्हारी प्रार्थना सुनी गयी। तो तुमने फायदा भी ले लिया, तुम खतरे से भी बच गये।

साकार से तुम चलो, निराकार पर तुम पहुँचो।

ऐसा अगर तुम्हारे जीवन में सतुलन हो तो कोई खतरा नहीं है।

तो, दूसरी तरफ लोग हैं, वे कहते हैं, 'जब निराकार ही है अखीर में तो हम पहले से ही निराकार क्यों न माने?' वे चल ही नहीं पाते। वे उन लगड़े लोगों की तरह हैं जो बैसाखियों का सहारा लेने को राजी नहीं।

तुमने देखा! — पैर पे चोट लग गयी हो, ऐसीडैंट हो गया हो, तो डॉक्टर कहता है, बैसाखियों का सहारा ले लो। साल छह महीने बैसाखियों के सारे चलो, फिर धीरे-धीरे शक्ति वापस लौट आएगी। फिर धीरे-धीरे बैसाखियाँ छोड़ देना, पैरों पे चलना।

तुम डॉक्टर से यह नहीं कहते कि 'जब अखीर में पैरों पे ही चलना है तो अभी से हम बैसाखियों से क्यों चलें?' नहीं, हम बैसाखियाँ छुएंगे भी नहीं।' तुम कहते हो, 'ठीक है, बैसाखियों का उपयोग कर लेंगे।'

सब धर्म तुम्हारे उपयोग के लिए हैं। तुम उनका उपयोग कर लेना और तुम

किसी के भी गुलाम भत बनना । कोई धारणा इतनी बड़ी न हो जाए कि सत्य को ओट कर ले ।

चीथा प्रश्न आशीर्वाद क्या है ? और गुरु जब शिष्य के सिर पर हाथ धरता है, तब क्या प्रेषित करता है ? और क्या आशीर्वाद लेने की भी क्षमता होती है ?

आशीर्वाद गुरु तो अकारण देता है, बेशर्त देता है, लेकिन तुम ले पाओगे या न ले पाओगे, यह तुम पे निर्भर है । इतना ही काफी नहीं है कि कोई दे और तुम ले लो, तुम्हें उसमें कुछ दिखायी भी पड़ना चाहिए, तभी तुम लोगे । वर्षा हो और तुम छाते की ओट में छिप के खड़े हो जाओ, तो तुम न भीगोगे । आशीर्वाद बरसे, और तुम अहकार की ओट मे, अहकार के छाते में छिप जाओ, तो तुम न भीगोगे । वर्षा हो जाएगी, मेघ आएंगे और चले जाएंगे, और तुम सूखे के सूखे रह जाओगे ।

तो, तुम्हारी तैयारी चाहिए । तुम्हारा स्वीकार का भाव चाहिए । ग्रहण करने की क्षमता चाहिए । चातक की भाँति मुँह खोल के आकाश की तरफ, प्रार्थना से भरा हुआ हृदय चाहिए । स्वाति की बैंद तुम्हारे बद मुँह में न गिरेगी – मुँह खुला होना चाहिए, आकाश की तरफ उठा होना चाहिए, प्रतीक्षातुर होना चाहिए, तो ही । ।

तो, जब तुम गुरु के पास झुको, तब वस्तुतः झुकना चाहिए । कही ऐसा न हो कि सिर ही झुके और हृदय बिना झुका रह जाए, तो आशीर्वाद बरस जाएगा और तुम अछूते रह जाओगे ।

समझने की बात यह है कि गुरु यह नहीं कह रहा है कि तुम्हारी कोई पात्रता होगी तो आशीर्वाद दूँगा, लेकिन तुम्हारी पात्रता न होगी तो दिया आशीर्वाद तुम तक न पहुँच पायेगा, व्यर्थ चला जाएगा ।

गुरु आशीर्वाद देता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं, गुरु से आशीर्वाद बरसता है, ऐसा ही कहना ठीक है । जैसे दीये से रोशनी झरती है, फूल से गध बहती है, ऐसा गुरु कुछ करता है, प्रेषित करता है, ऐसा नहीं, तुम्हें कुछ देता है विशेष रूप से, ऐसा नहीं – कर ही रहा है । वह उसके होने का छा है । उसने कोई कँचाई पायी है, जिस कँचाई से अरने तीव्र की तरफ बहते ही रहते हैं । अगर तुम तैयार हो तो तुम नहा लोगे । तुम अगर तैयार हो तो तुम्हारे मार्ग के काटि हट जाएंगे और फूलों से भर जाएगा मार्ग ।

लेकिन आशीर्वाद लेने की कला, झुकने की कला है । वह अहकार को हटाने की कला है । वह स्वीकार-भाव है ! आस्तिकता है ! श्रद्धा है ! आस्था है ! प्रेम है ।

तो पहली तो बात यह है कि गुरु देता है, ऐसा नहीं; गुरु आशीर्वाद का दान है, देता नहीं है। गुरु के होने में ही समाया है ।

तो अगर तुम मुझसे पूछो कि गुरु की परिभाषा क्या है तो यही परिभाषा है जिससे आशीर्वाद ज्ञारते हों। तुम मांगो-न-मांगो, तुम लेने आये हो न लेने आये हो, तुम ज्ञाको-न-ज्ञाको — इससे कोई भेद नहीं पड़ता, जिससे आशीर्वाद तुम पर ज्ञारते ही हो, प्रसादरूप बरसते हो ।

ऐसा भी मत समझना कि वह तुम्हारे लिए कुछ विशेष रूप से कर रहा है। कोई भी न हो, एकात में भी दीया जले, तो भी रोशनी जलती रहती है, तो भी प्रकाश पड़ता रहता है। बीरान में, निर्जन में फूल खिले, कोई राह से न निकले, कोई नासापुट पास न आएं, किसी को कभी कानोकान खबर भी न होगी शायद, निर्जन में खिले फूल की किसको खबर होगी, लेकिन सुगंध तो ज्ञारती ही रहेगी, सुगंध तो भरती ही रहेगी हवाओं में, हवाओं पर पव्य फैलाती रहेगी, सुगंध तो दूर-दूर की यात्रा पर निकलती ही रहेगी। फूल तो अपने को लुटा देगा, इससे क्या फक्क पड़ता है कि कोई था या नहीं! किसी का होना-न-होना सयोग है। फूल खिल गया है तो सुगंध का विखरना नियत है।

गुरु वही है जिससे आशीर्वाद ऐसे ही बिखरता है, जैसे खिल गये फूल से गध बिखरती है। सयोग की बात है कि कोई ले ले, छोल ले। सयोग की बात है कि कोई अपने नासापुटों को भर ले। सयोग की बात है कि इन किरणों को कोई सम्हाल से अपने हाथों में और अपने अधेरे रास्ते पर चिराग जला ले। यह सयोग की बात है।

आशीर्वाद दिया नहीं जाता, गुरु के होने का डग आशीर्वाद है, वह प्रसादरूप है।

आशीर्वाद क्या है?

आशीर्वाद जैसे मैंने कहा, फूल जब खिलता है तो गध बिखरती है — गध क्या है? बीज में छिपी थी, फूल में प्रगट हुई, बीज में बद थी, फूल में खिली। लम्बी यात्रा करनी पड़ी, बीज अकुर बना, कितनी कठिनाइयाँ थीं, कितने पत्थर रोड़े थे राह में बीज के, जमीन को फोड़ कर ऊपर आया, कितना कोमल था और कितना सधर्ष था, हजार उपद्रवों को छेल कर बचा — बृक्ष बना, फूल खिले, गध बिखरी।

गुरु — तुम्हारे भीतर जो कल होने वाला है, तुम्हारा जो भविष्य है, वह गुरु का वर्तमान है। तुम अगर बीज हो तो वह गध हो गया है। तुम अगर बद ज्ञारने हो, राह नहीं खोज पा रहे हो, तो वह सागर से मिल गया है। वह तुम्हारा भविष्य है।

गुरु में तुम अपने होने की आखिरी संभावना का दर्शन पाते हो।

आशीर्वाद का अर्थ है : गुरु के सामित्र्य में तुम्हारे वर्तमान और तुम्हारे भविष्य का मिलन होता है, तुम्हारा भविष्य तुम्हारे वर्तमान पै ज्ञारता है।

गुरु माध्यम है, तुम जो नहीं हो वभी और हो सकते हो, उसकी खबर है। अगर तुम ठीक से छुक जाओ तो उसका आशीर्वाद तुम्हारे लिए एक उत्त्वेयात्रा बन जाएगी। वह तुम्हारे ऊपर उतरेगा, बरसेगा। जैसे आकाश से वर्षा होती है, जमीन में छिपे बीज तक पहुँचती है, ऐसा वह तुम तक पहुँचेगा। आकाश से वर्षा होती है, जमीन में छिपे बीज तक पहुँचती है और तत्क्षण बीज का अकुरण हो जाता है और बीज आकाश की तरफ उठने लगता है।

आशीर्वाद में गुरु तुम तक पहुँचेगा, उतरेगा, उसका अस्तित्व तुम्हारे अस्तित्व को छुएगा, तुम्हारी भूमि में, अँधेरे में दबे हुए बीज पर उसकी वर्षा होगी – और तत्क्षण तुम ऊपर की धात्रा पर निकल जाओगे।

आशीर्वाद का अर्थ है गुरु ने तुम्हारे शून्य में, तुम्हारी रिक्तता में अपने को भरा, ताकि तुम्हारे भीतर जो दबा है, उसे पुकार मिल जाए, उसे आह्वान मिल जाए, चुनौती मिल जाए, सुगंधिगाहट पैदा हो, तुम्हारे भीतर जो बीज है वह भी अकुरित होने लगे, उसे खबर मिल जाए कि मैं क्या हो सकता हूँ।

इसलिए भक्ति-आस्त्र सत्सग की महिमा गाता है।

तुम करीब आओ, तुम छुको, तो गुरु तुम्हारे करीब आ पाता है। तुम छुको तो वह तुम में उत्तर पाता है अवतरण।

हर आशीर्वाद में परमात्मा अवतरित होता है। हर आशीर्वाद अवतार है।

हमने उन्हीं व्यक्तियों को अवतार कहा है जिनके कारण बहुत-से व्यक्तियों के भीतर, अनेकों के भीतर सीधी हुई सम्भावनाएँ सजग हो गयी, वास्तविक बनी। हमने उन्हीं व्यक्तियों को अवतार कहा है जो हमारे भीतर उस गहराई तक उत्तर सके जहाँ तक हम भी नहीं पहुँच पाए और जिन्होंने हमारी गहराइयों को छू दिया, तिलमिला दिया, जगा दिया, जिन्होंने हमारी नीद तोड़ दी।

तो आशीर्वाद अवतरण है – ऊँचाइयों का, तुम्हारी गहराइयों में, भविष्य का, तुम्हारे वर्तमान में, सभावना का, तुम्हारी वास्तविकता में, तुम्हारे तथ्यों के जीवन में सत्य की पुकार है।

और आशीर्वाद अनूठी बात है, क्योंकि गुरु दिये जा रहा है। उसे कुछ करना नहीं पड़ रहा है। कोई श्रम नहीं है जो उसे करना पड़ रहा है। तुम न भी लोगे तो भी यह गध हवाओं में लुटानी ही पड़ेगी। मेघ जब भर जाएँगे, तो बरसेंगे ही। बीज अकुरित हो या न हो, मेघ जब भर जाएँगे तो बरसेंगे ही – बरसना ही पड़ेगा।

तो गुरु मेघ है, बरस रहा है।

बुद्ध ने तो उस अवस्था को मेघ-समाधि कहा है – जब समाधि बरसती है। वही गुरु की दशा है। जब समाधि बरसने लगती है – तब आशीर्वाद, तब प्रसाद।

पर तुम ले सको तो ही ले पाओगे।

मुक्तने की कला सीखो, मिटने की कला सीखो, तो तुम्हारे होने का सूत्रपात्र होता है ।

पौचाली प्रश्न कल के प्रवचन में अचानक कुछ बटा । सुनते-सुनते ध्यान दो वाक्यों के बीच भौन पर केन्द्रित हो गया और बड़ी गहरी और शीतल शाति का अनुभव हुआ । प्रणाम स्वीकार करें ।

मुझ हुआ । उस तरफ ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान को ले जाएं, ताकि यह घटना, केवल एक स्मृति न रह जाए, ताकि यह घटना धीरे-धीरे तुम्हारे जीवन की शैली बन जाए ।

जैसे दो शब्दों के बीच में ध्यान रुका, ऐसे ही जीवन के हर पहलू में जहाँ-जहाँ अभिव्यक्ति है, वहाँ-वहाँ दो अभिव्यक्तियों के बीच में ध्यान देना ।

स्त्री और पुरुष हैं—ये अभिव्यक्तियाँ हैं । अगर तुम पुरुष ही रहोगे तो ससार में रहोगे, स्त्री ही रहोगे तो ससार में रहोगे । दोनों के बीच में कही मोक्ष है ।

रात और दिन अभिव्यक्तियाँ हैं । अगर तुम दिन से बैंधे रहे तो रात से ढेरे रहोगे । अगर रात से बैंधे रहे तो दिन से परेशान रहोगे । रात और दिन के बीच में सध्या का काल है । इसलिए तो हमने इस देश में सध्या को प्रार्थना का समय चुना है— बीच में, ठीक मध्य में ।

दुकान से ही मत बैंधे रहना और मंदिर से भी मत बैंध जाना । मंदिर और दुकान के बीच में कही सन्यास है । हर दो अभिव्यक्तियों और विरोधों, अतिथियों के बीच में मध्य को खोजते रहना, तो तुम्हारे जीवन में समय का फूल खिलेगा ।

और यह घटना स्मृति न बन जाए, क्योंकि बहुत बार ऐसी घटना घटती है । हम ऐसे अभागे हैं कि घट भी जाती है, जलक भी मिल जाती है, तो भी कलक को गहराते नहीं । पकड़ में भी आ जाते हैं सूत्र तो आ-आ के खो जाते हैं । कई बार तुम्हारे हाथ में आँचल आ गया है वस्त्र का और छिटक गया है, तुम फिर क्षपकी लेने लगते हो, फिर याद भूल जाती है, फिर होश खो जाता है ।

मुझ हुआ । सौभाग्य हुआ । प्रसाद का क्षण मिला । उसे गहराना । उसे जितना ज्यादा जहाँ-जहाँ खोज सको, खोजना, ताकि धीरे-धीरे वह तुम्हें हर जगह दिखायी पड़ने लगे । उसी शून्य और शाति से तुम्हें परमात्मा के पहले दर्शन होंगे । उसी शून्य से निराकार का हाथ तुम तक आएगा । हाथ तैयार ही है आने को । तुम बस जरा एक कदम चलो, परमात्मा हजार कदम तुम्हारी तरफ चलता है ।

आखिरी प्रश्न एक परम्परा कहती है कि देवर्षि नारद परम सूक्ष्मित को उपलब्ध नहीं थे । दूसरी परम्परा उन्हें सप्तशृंखि में एक मानसी है, जिनका गुण

और परोक्ष कार्य सदा चलता रहता है। क्या व्यक्तिसूत्र के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

जान कर ही नारद की कोई बात मैंने नहीं की। सोच कर ही छोड़ा। व्योक्ति भक्त का कोई कर्तृत्व नहीं होता और न व्यक्तित्व होता है। भक्त तो एक मौन है, एक शून्य निवेदन है।

भक्त कुछ करता नहीं, इसीलिए कोई कर्तृत्व नहीं होता।

भक्त तो एक आनंद है। एक गीत है। एक नृत्य है। एक अहोभाव है। बड़ा सूक्ष्म है भक्त का अस्तित्व।

न तो कोई कर्तृत्व है, न कोई व्यक्तित्व है, व्योक्ति भक्त तो एक खाली बाँस की पोशारी है, व्यक्तित्व क्या। खाली जगह है, जहाँ से भगवान को जगह देता है, जहाँ से भगवान उससे बहने लगते हैं।

नारद पर इसीलिए मैंने कुछ कहा नहीं। और इसीलिए नारद के सम्बन्ध में न मालूम कितनी कथाएँ प्रचलित हैं। नारद के व्यक्तित्व को समझा ही नहीं जा सका। समझने के लिए जगह नहीं है। समझने के लिए आधार नहीं है।

एक परम्परा कहती है कि वे परम मुक्ति उपलब्ध नहीं हुए। क्यों?—व्योक्ति नारद में बुद्ध जैसा व्यक्तित्व दिखायी नहीं पड़ता, न महावीर जैसा व्यक्तित्व दिखायी पड़ता है। नारद ऐसे सुलझे हुए मालूम नहीं होते जैसे बुद्ध सुलझे हुए मालूम होते हैं। नारद बड़े उलझे मानूम होते हैं। कथाएँ कहे चली जाती हैं कि पृथ्वी और स्वर्ग के बीच में न केवल बुद्ध उलझे हैं, दूसरों को भी उलझाते रहते हैं।

नारद का व्यक्तित्व साफ-साफ नहीं है। बुद्ध साफ-साफ उस पार हैं, समझ में आते हैं। नारद न इस पार न उस पार, कहीं बीच में डोलते हैं।

कितनी कथाएँ हैं। नारद स्वर्ग जा रहे हैं, बैकुण्ठ जा रहे हैं, बैकुण्ठ से जमीन पर आ रहे हैं—दो लोकों के बीच में। मेरे लिए उतना ही इगित है कि दो किनारों के बीच में।

व्यक्तित्व बड़ा उलझा हुआ मालूम पड़ता है। एक ही किनारे पे इतनी उलझन है। दो सासारों के बीच में जो जिये—एक पैर यहाँ रखे, एक बैकुण्ठ में रखे—उसकी उलझन तुम समझ सकते हो। लेकिन वही मेरे लिए परम सन्यास का रूप है, जो दो अतियों के बीच अपने को सम्हाल ले।

एक किनारे पे बस गये, वह भी कोई सुलझाव, सुलझाव हुआ? या दूसरे किनारे पे हट गये, वह भी कोई सुलझाव, सुलझाव हुआ? सेतु बनना चाहिए, जिस पे दोनों किनारे जुड़ जाएँ।

नारद सेतु हैं। इस तरफ से देखो तो बिलकुल ससारी हैं। और उस तरफ

से तुम देख न मिलोगे, उस तरफ से मैं देख रहा हूँ। उस तरफ से देखो तो परम वीनराग हैं।

इसी तरफ से देखा गया है। इसी किनारे पे खड़े हुए लोग देखते हैं कि यह सेतु तो यही जुड़ा है, इसी किनारे पर जुड़ा है, दूसरा किनारा तो दिखायी नहीं पड़ता।

तो नारद सासार से जुड़े मालूम पड़ते हैं, सासारिक मालूम पड़ते हैं। उनके आसपास रची गयी कथाएँ इस किनारे के लोगों ने रची हैं। 'मैं तुमसे उस किनारे से कह रहा हूँ कि नारद सेतु है।

नारद बड़े अनूठे रहस्यपूर्ण व्यक्ति हैं। उनका अनूठापन यही है, उनकी अद्वितीयता यही है कि वे एकतरफा नहीं हैं, एकाग्री नहीं हैं। महान समन्वय उनमें मिलता हुआ है।

फिर सारी कथाएँ कहती हैं कि वे कुछ उलझाव का ताना-बाना बनते रहते हैं। लोकमानस में उनकी जो प्रतीति है वह कुछ चुगलखोर जैसी है। यह भी अकारण नहीं बन गयी होगी, क्योंकि कोई भी बात बनती है तो उसके पीछे कुछ-न-कुछ कारण होता है। हजारों साल तक करोड़ों लोग जब ऐसी कहानियाँ गहरे रहते हैं, तो उसके पीछे कही-न-कही कोई सूत्रपात होगा, कही-न-कही कोई आधार होगा। आधार है।

जब भक्त अपने को परमात्मा के हाथ में सौंप देता है, तो 'वह' जो करवाये वह करता है। फिर वह यह भी नहीं कहता कि यह बात जँचती नहीं, यह करना ठीक न होगा। फिर वह असगतियाँ भी करवाये तो असगति भी करता है। छोड़ने का अर्थ ही होता है पूरा छोड़ना। फिर उसमें हिसाब नहीं रखता। वह क्षूठ भी बुलवाये तो भी भक्त यह नहीं कह सकता, 'मैं न बोर्डूगा।' क्योंकि भक्त ही ही नहीं। वह कहता है, 'तेरा क्षूठ, तो तेरा क्षूठ मेरे सब से भी बड़ा है।'

इसे थोड़ा समझना। 'मेरा सब भी तेरे क्षूठ से छोटा होगा।' तेरा क्षूठ भी मेरे सब से बड़ा होगा। फिर तू करवा रहा है तो जरूर कोई कारण होगा। फिर तू ही जान, यह हिसाब कौन रखे।'

तो नारद के व्यक्तित्व में सगति नहीं है यहाँ की बात वहाँ कह रहे हैं, बड़ा-चड़ा के कह रहे हैं, कभी घटा के कह रहे हैं, कभी जोड़ के कह रहे हैं। इसलिए स्वभावत लोकमानस को यह लगता है कि यह व्यक्ति और 'मुक्त'। तो थोड़ी अड़चन मालूम होती है।

'मुक्त' के सम्बन्ध में हमारी धारणाएँ हैं कुछ, नारद सब धारणाओं को तोड़ देते हैं, क्योंकि नारद अपने को सब भौति समर्पित कर देते हैं। परमात्मा की इस विराट लीला में, इस बड़े खेल में, इस बड़े नाटक में, वे अपना कोई व्यक्तित्व ले के नहीं चलते, वे 'वह' जो करवाता है करते हैं। इतना ही इग्नित है। 'वह'

अगर झूठ भी बुलवाये तो झूठ भी बोल देने हैं। लेकिन नारद ने झूठ नहीं बोला है, परमात्मा की लीला के अश हो गये हैं।

इस बात को लोकमानस न समझ पाये, यह भी स्वाभाविक है। लेकिन इतना बड़ा सूत्र, इतना बड़ा नाटक जलता हो तो उसमे नारद जैसे व्यक्तित्व की भी ज़रूरत है। वह भी कोई कमी पूरी करता है। नारद के बिना कथाएँ अधूरी रह जाएँगी। नारद के बिना नाटक सूना-सूना होगा। नारद कुछ महस्तपूर्ण सूत्र का काम पूरा करते हैं।

पर नारद के व्यक्तित्व की बात इन्ही ही है कि उन्होने छोड़ दिया है 'वह' जो करवाये।

उनका रूप जो लोकमानस में है वह यह है कि वे अपना एकतारा लिये इस लोक से उस लोक के बीच डोलते रहते हैं। उनका वाञ्छ उनके साथ है। उनका सगीन उनके साथ है। उनके भीतर की सगीतपूर्ण दशा उनके साथ है।

ज्यादा कुछ उनके सम्बन्ध में कहा नहीं जा सकता, कहने की कोई ज़रूरत 'भी नहीं है। उनका एकतारा ही उनका प्रतीक है। भीतर उनके एक ही स्वर बज रहा है, वह भक्ति का है, एक ही स्वर बज रहा है, वह समर्पण का है, एक ही स्वर बज रहा है, वह श्रद्धा का है। फिर परमात्मा जो कराये, जो 'उसकी' मर्जी।

नारद की अपनी कोई मर्जी नहीं है। अपने व्यक्तित्व को बनाने में भी उनकी कोई आचरणगत धारणा नहीं है। महावीर की मर्जी है, वे पैर भी फूँक-फूँक के रखते हैं, उनके पास एक आचरण है। बुद्ध की मर्जी है, एक शील है, नारद के पास अपना उतना भी दावा नहीं है।

इसलिए अगर तुम मुझसे पूछते हो तो मैं तुमसे कहना हूँ कि यही परम मुक्ति है।

आज इतना ही।

